Hindi Discourses

Translated by
Dr Kedar Nath Dwivedi
Heddington, 2015

ये सभी प्रवचन मां सयामा जी के स्वर्गीय पति, सया जी ऊ चित तिन द्वारा अंग्रेजी में रचित तथा डॉ० विलियम प्रूइट द्वारा संपादित किये गये थे ।

कालान्तर में इन्हें श्री रॉजर विशॉफ द्वारा पुनर्नियोजित तथा मेरे, अर्थात डॉ० केदार नाथ द्विवेदी द्वारा हिन्दी में अनूदित किया गया है ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस्स.

(उस अर्हत, सम्यक संबुद्ध, भगवान को नमन)

प्रथम दिवस, प्रातः प्रवचन

अपना व्यवहार ऐसा करें जिससे आपके विवेक में बृद्धि हो

योगा वे जायती भूरि, अयोगा भूरि संखयो । एवं द्वेधा पथं ञत्वा, भवाय विभवाय च।
तथात्तानं निवेसेय्य, यथा भूरि पवड्ढति ।।

ध्यान (के अभ्यास) से प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसके अभाव से प्रज्ञा का क्षय होता है । उत्पत्ति और विनाश के इन दो प्रकार के मार्गों को जान कर अपने आप को इस प्रकार विनियोजित करें जिससे प्रज्ञा की भरपूर वृद्धि हो ।

—----धम्मपद, गाथा २८२

हम यहाँ एक साधना शिविर में एकत्रित हुए हैं । आप ने पूरे दसदिन का एक शिविर (कोर्स या अध्ययन पाठ्यक्रम) करने का संकल्प लिया है । जिस प्रकार भगवान बुद्ध के समय आर्यजन ऐसी साधना करते थे, उसी प्रकार आप भी अपना घर, अपना काम, अपनी व्यस्त गतिविधियों और अपने प्रिय परिवार को छोड़ कर यहाँ जागृति प्राप्त करने की आशा से एकान्तवास के लिये आए हैं ।

त्रिरत्न की शरण

कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग त्रिरत्न की शरण लेने की कुछ प्रारंभिक औपचारिकता है, जिसके द्वारा साधकों का सम्यक जागृति (बुद्ध) की ऊर्जा एवं शक्तियों से संगत या संपर्क हो सके । त्रिरत्न का अर्थ तीन रत्न है :- प्रथम बुद्ध या जागृत, द्वितीय बौद्ध धर्म या सत्य, तथा तृतीय संघ या वह समुदाय जो उनके प्रशिक्षण को जीवित रखे हुए है । प्रशिक्षण काल में सुरक्षा एवं मार्गदर्शन के लिए, भगवान बुद्ध एवं आचार्य को हमारे स्वयं के समर्पण द्वारा, इस संगत या अनुकूलन की सतत निरंतरता बनी रहती है ।

अतः हम अपने शिविर (कोर्स) का प्रारंभ बुद्ध (जागृत) की, धर्म (पालि में, धम्म या बुद्ध द्वारा सिखाये सिद्धांत) की, तथा संघ (उन लोगों के समुदाय, जो इस शिक्षा का पालन कर रहे हैं, और जिन्होंने पचीस शताब्दियों से अधिक तक इस प्रथा को बनाए रखा है) की शरण लेकर करते हैं । हम अपने संरक्षण तथा मार्ग दर्शन के लिए स्वयं को बुद्ध एवं आचार्य को समर्पित करते हैं । हम नैतिक शिक्षापद या शील ग्रहण करते हैं । अंत में हम आचार्य से आनापान

साधना सिखाने का अनुरोध करते हैं।

प्रथम रत्न बुद्ध हैं । बुद्ध शब्द का अर्थ है जागृत, जिसके अंतर्गत स्वत:जागृत का भाव भी समाया है । तथा बुद्ध जागृत अवस्था के साकार रूप हैं । गौतम तब तक साधना करने में सक्षम रहे जब तक उन्होंने अपना सारा अज्ञान नष्ट नहीं कर दिया और विश्व की चरम वास्तविकता को समझ नहीं लिया ।

यह चरम वास्तविकता (धम्म अर्थात परम सत्य) दूसरा रत्न है – सत्य बुद्ध के प्रशिक्षण में चार आर्य सत्यों के रूप में अभिव्यक्त है ।

भगवान बुद्ध ने गवेषणा की कि सभी संस्कार (पालि में संखार, अर्थात अनुबद्धित स्थितियाँ) असंतोषजनक हैं; इसके पीछे एक कारण है; इनका विकल्प असंस्कारित (पालि में, असंखत अर्थात अननुबद्धित अवस्था) है; तथा इस असंतोषजनक स्थिति से मुक्ति का मार्ग विद्यमान है ।

तीसरा रत्न संघ है । संघ का अर्थ आर्यसंघ या आर्य पुरुषों के समुदाय से है । आर्य का अर्थ है वे व्यक्ति जिन्होंने मुक्ति प्राप्त कर ली है, अर्थात जिन्होंने मुक्ति के चारों मार्ग पद एवं चारों फल पद को प्राप्त कर लिया है । इसके अंतर्गत सम्मुति संघ भी सम्मिलित है, अर्थात उन भिक्षुओं का समुदाय जो इन शिक्षाओं का पालन कर रहे हैं, इन्हें जीवित रक्खे हुए हैं, और जो भी अपने दुख से बाहर निकलने के मार्ग की तलाश में है उन्हें उपलब्ध कराते हैं ।

हम चाहते हैं कि इस कार्यक्रम में हमारा दृष्टिकोण एक सत्य की खोज कर रहे शोध वैज्ञानिक की तरह हो । प्रारंभ में वैज्ञानिक कोई कार्यवाही (कामचलाऊ) सैद्धांतिक परिकल्पना करता है और उसके पश्चात ऐसे प्रयोग निर्धारित करता है जिनसे वह परिकल्पना सिद्ध या असिद्ध हो सके । उन प्रयोगों से ऐसे परिणाम निकलेंगे जिनसे उसकी परिकल्पना या तो सिद्ध हो जाएगी या ग़लत साबित होगी । अतः आपको यहाँ बताई हुई बातों पर विश्वास करने की आवश्यकता नहीं है । यहाँ आपसे केवल यही अनुरोध रहेगा कि आप अपने प्रयोग सही तरीके से करें जिससे उसके परिणाम आपके लिए लाभदायक हों । यदि कोई वैज्ञानिक अपने काम में सतर्क न हो और अपने प्रयोग सही तरीके से न करे तो उसे कभी पता ही नहीं चलेगा कि उसकी परिकल्पना सही थी या ग़लत ।

कालामा सुत्त में बुद्ध ने कहा है :-

> 'हे कालामाओं, आओ! तुम किसी बात को केवल इसलिए मत स्वीकार कर लो कि यह बात अनुश्रुत है, परंपरागत है, इसी तरह कही गयी है, हमारे धर्मग्रन्थ के

> अनुसार है, तर्क संगत है, न्याय सम्मत है, इसका आकार प्रकार सुंदर है, यह हमारे मत के अनुकूल है, इसे कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है, कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है । यदि तुम स्वयं जान जाओ कि ये बातें कुशल हैं, ये बातें दोषहीन हैं, इन बातों की बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसा होती है; जब इन बातों को व्यवहार में लाया जाता है तथा इनका पालन किया जाता है तो ये कल्याण एवं सुख के लिए अनुकूल होती हैं; तब कालामाओं तुम्हें उनका अभ्यास कर, उनके अनुसार जीना चाहिये ।'

----------अंगुत्तर निकाय, तिक निपात, महावाग्ग, केसमुत्तिसुत्तं ६५

उसी प्रकार, सयाजी ऊ बा ख़ीं ने अपने संबोधन 'बौद्ध धर्म है क्या' (What Buddhism is) में कहा है :- 'तो, जब भी मैं दार्शनिक विषयों पर कुछ कहता हूँ, कृपया आप मुझ पर तब तक विश्वास न करें जब तक मेरी बात पूर्णतः तर्कसंगत न लगे अथवा आप व्यावहारिक रूप से आश्वस्त न हो जांय ।'

इसीलिए हमारा भी यही कहना है कि जब तक हमारी बात व्यावहारिक न लगे अथवा इससे लाभ का अनुभव न हो, तबतक आप हम पर विश्वास न करें । फिर भी, प्रारंभ तो आचार्य बुद्ध में कुछ श्रद्धा या विश्वास के साथ ही करना होगा । हम एक कार्यवाही परिकल्पना करते हैं कि जागृति संभव है, कि सत्य का ज्ञान प्राप्त हो सकता है तथा, कि ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्होंने सत्य के ज्ञान को जीवित रखा है, जिससे अन्य लोग लाभान्वित हो सकें । तब हम अपने प्रयोग निर्धारित करते हैं । पहला प्रयोग पाँच या आठ शिक्षापदों (शील) का पालन करना है । बुद्ध ने पाया कि यदि हम किसी प्राणी की हत्या, चोरी, यौन दुर्व्यवहार, झूठ तथा अन्य प्रकार की अनुचित वाणी और मादक द्रव्यों के सेवन से बचें, तो हमारा चित्त शांत और स्थिर होने लगेगा । अतः हम पंचशील का पालन बड़ी ईमानदारी से करते हैं जिससे कि हम देख सकें कि इस नैतिकता या शील के अभ्यास से हमारे मस्तिष्क में क्या प्रतिक्रिया होती है । दूसरे प्रयोग का उद्देश्य चित्त को केवल एक ही आलम्बन प्रदान करना है । तथा हमारे लिए यह आलम्बन श्वास है । यदि हम अपना ध्यान बारंबार, सम्भवतः हज़ारों बार, श्वास पर वापस लाते रहें, तो हमारा चित्त धीरे धीरे इस जागरूकता या संज्ञान पर स्थिर होने लगेगा । जैसे ही मन एक विषय से दूसरे विषय पर भटकना बंद कर देता है, वैसे ही वह स्थिर होने लगता है और अंततः संभवतः अल्प अवधि के लिए ही सही, एकाग्र-चित्त भी ।

जैसे जैसे हम इस काम में आगे बढ़ेंगे, वैसे वैसे हमें जागृत अवस्था में पहुँचने के मार्ग पर प्रगति करने के लिए उपयुक्त ज्ञान भी प्राप्त होता रहेगा । किंतु लक्ष्य को प्राप्त करने के बाद

ही हमारा विश्वास परिपूर्ण हो सकेगा।

अतः जब हम बुद्ध, धम्म और संघ की शरण लेते हैं, तो हम उनसे संबंधित गुणवत्ताओं की शरण लेते हैं, अर्थात् जागृत स्थिति की गुणवत्ता की, जो पूर्ण शान्तिमय एवं आनन्दमय है; चार आर्य सत्यों की गुणवत्ता की, जिनके द्वारा हमें मुक्ति मिलती है; तथा बुद्ध के सिखाए हुए मार्ग पर चल कर जो निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, उनके समुदाय के अच्छे, सही और विवेकपूर्ण आचरण की गुणवत्ता की, शरण लेते हैं।

आचार्य

तीन रत्नों की शरण लेने के अतिरिक्त, हम स्वयं को इस प्रशिक्षण काल तक के लिये बुद्ध एवं आचार्य के संरक्षण में डालते हैं। यदि हम वैज्ञानिक से तुलना की बात करें, तो हम एक ऐसे शोध वैज्ञानिक की तरह हैं जो प्रशिक्षण में है। हमें एक ऐसे आचार्य की आवश्यकता है, जो हमें दिखाये कि कैसे एक कार्यवाही परिकल्पना रची जाय, कैसे कोई प्रयोग निर्धारित किया जाय, और कैसे परिणामों का मूल्यांकन किया जाय। यदि हमें सीखना है तो हमें सही तरीके से काम भी करना होगा, और सही तरीके से काम करने लिए, हमें ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो हमें उचित सलाह दे सके और हमारे प्रश्नों का उत्तर भी। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप को अंध-भक्त होने के लिए कहा जा रहा है। आप से कुछ भी अनुचित करने के लिए नहीं कहा जाएगा। किन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि आचार्य हमें वही शिक्षा दे रहे हैं, जिसका असंख्य लोगों ने अभ्यास किया है और उसे दुःख से मुक्ति के लिए उपयुक्त पाया है। तथा आचार्य हमसे ऐसा कुछ भी करने के लिए नहीं कह रहे हैं, जो परीक्षित व विश्वशनीय न हो।

तब हमने नैतिक शिक्षापद (पंचशील या अष्टशील) लिये। आनापान सिखाने के लिए औपचारिक अनुरोध भी किया। बुद्धत्व प्राप्त करने के तुरंत बाद बुद्ध ने सारे विश्व का सर्वेक्षण किया और पाया कि जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था उसे दूसरों को सिखाना सरल नहीं था। एक जागृत व्यक्ति के रूप में वे सारी इच्छाओं से परे थे, और यद्यपि उनमें सभी दुःखी प्राणियों के लिए असीम करुणा और अनुकंपा थी, किंतु यह शिक्षा दूसरों को दी जाय या नहीं, इसपर बुद्ध को हिचकिचाहट हुई। हमारे सौभाग्य से उसी समय ब्रह्मा सहँपति उनके पास पहुँचे, और उनसे अनुरोध किया कि वे धम्म की शिक्षा दें। उस क्षण के पश्चात पुनः वे कभी भी नहीं हिचकिचाये। बुद्ध ने उस प्रत्येक व्यक्ति को प्रशिक्षित किया, जिसने उनसे हार्दिक अनुरोध किया। यही कारण है कि आपसे भी वही करने के लिए कहा गया।

आप ने देखा कि हमने 'हार्दिक अनुरोध' की बात कही। सयाजी ऊ बा ख़ीं बर्मा (म्यंमा) में

एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। जब बर्मा को ४ जनवरी १९४८ में स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तो सयाजी ऊ बा ख़ीं महालेखाकार (Accountant General) नामान्वित हुए। उन्होंने अपने कार्यालय में काम करने वाले उन सभी व्यक्तियों को ध्यान लगाने की विधा में प्रशिक्षित किया, जिन्होंने उनसे इसका अनुरोध किया। किंतु उन्हें पता था कि कई लोग सचमुच में ध्यान लगाना सीखने के लिए नहीं, अपितु इसी बहाने उनकी कृपादृष्टि द्वारा कुछ लाभ प्राप्त करने की आशा से अनुरोध करेंगे। अतः क्या वे वास्तव में ध्यान लगाना सीखने के इच्छुक हैं या नहीं, इसका पता लगाने के लिए उन्होंने उनको परखने का एक तरीका निकाला। उन्होंने कहा कि वे ऐसे छात्रों की परीक्षा लेंगे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि भावी छात्रों को बताया जाय कि उन्हें महालेखाकार कार्यालय के चारों ओर दौड़ना होगा। यह दूरी लगभग एक किलोमीटर की थी। कुछ को एक, कुछ को दो और कुछ को तीन चक्कर लगाने होंगे। यह उनकी गंभीरता (ईमानदारी) की परीक्षा थी। यदि वे ऐसा करने के लिए तैयार हों तो इससे इस बात का संकेत मिलेगा कि उनमें अत्यधिक अहंकार नहीं है और काम करने के लिए जिस लचीलेपन की आवश्यकता है, उसके साथ वे तैयार हैं। किंतु सयाजी ऊ बा ख़ीं को कभी किसी को दौड़ाना नहीं पड़ा क्योंकि, जब यह बात फैल गयी तो वे लोग जो गलत उद्देश्यों से वहाँ आने के इच्छुक थे, उन्होंने न आने का ही निर्णय लिया।

पोट्ठिल थेर की कथा

सयाजी ऊ बा ख़ीं प्रायः बुद्ध के समय के पोट्ठिल स्थविर (जो अत्यधिक स्वाभिमान से ग्रसित थे) की कथा सुनाते थे। पोट्ठिल एक अत्यंत विद्वान भिक्षु थे[१]। पिछले जन्मों को मिलाकर, वे सात बुद्धों की छत्रछाया में प्रकांड पण्डित भिक्षु की तरह रहे तथा गौतम बुद्ध के समय उन्होंने पाँच सौ भिक्षुओं को धर्मग्रन्थ पढ़ाया। बुद्ध ने देखा कि स्थविर (पालि में, थेर) अब अपनी अंतिम मुक्ति हेतु परिश्रम के लिए तैयार हैं। किंतु उन्हें यह भी पता चला कि स्थविर पोट्ठिल ने दुःख से मुक्ति हेतु कार्य करने के विषय में कभी विचार भी नहीं किया था। अतः उन्हें उकसाना पड़ेगा। तत्पश्चात् उन्होंने उनको तुच्छ (अनाड़ी, बुद्धिहीन) पोट्ठिल कह कर बुलाना प्रारंभ किया। बुद्ध उनसे कहते :- 'आओ तुच्छ पोट्ठिल', 'वन्दना करो तुच्छ पोट्ठिल', 'बैठो तुच्छ पोट्ठिल', 'जाओ तुच्छ पोट्ठिल'।

पोट्ठिल ने अपने मन में सोचा, ' मुझे बुद्ध के सभी उपदेशों (त्रिपिटक) तथा उनकी टीकाओं का ज्ञान है; मैं भिक्षुओं को प्रशिक्षित करता हूँ; फिर भी बुद्ध मुझे तुच्छ पोट्ठिल कह कर बुलाते हैं।' अतः उन्होंने निर्णय लिया कि अब वन में प्रवेश कर स्वयं को साधना में

समर्पित करने का समय आ गया है। किंतु, इस हेतु उन्हें ध्यान के लिए एक कर्मस्थान (पालि में, कम्मथ्थान) अर्थात आलम्बन या विषय वस्तु की आवश्यकता थी, तथा किसी से उसकी पद्धति सिखाने के लिए निवेदन करना था। अतः वे एक वन विहार में गये जिसमें ३० भिक्षु रहते थे। औपचारिकता के अनुसार, उन्होंने संघ स्थविर (श्रेष्ठतम भिक्षु) को प्रणाम किया और कहा, 'भन्ते, कृपया मुझे अपनी शरण में लीजिए।'

किंतु महास्थविर ने उत्तर दिया, 'आयुष्मान, आप स्वयं एक उपदेशक हैं। यह तो मैं हूँ जिसे आप से सीखना चाहिए।' तब पोट्ठिल ने कहा, 'भन्ते, कृपया ऐसा मत कीजिए। कृपया मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।'

ऐसा था कि इस विहार में सभी तीस भिक्षु पूरी तरह जागृत अर्थात् अर्हत थे और वे भी पोट्ठिल की समस्या को समझने में सक्षम थे। अतः महास्थविर ने सोचा, 'अपने ज्ञान के कारण इस भिक्षु में अत्यधिक गर्व है'। अतः उन्होंने पोट्ठिल को अपने अनुस्थविर के पास भेजा जो वरिष्ठता में द्वितीय थे। द्वितीय भिक्षु ने पोट्ठिल को अपने से कनिष्ठ भिक्षु के पास भेजा, और इसी तरह यह सिलसिला तबतक चलता रहा जबतक अंत में वे एक सातवर्षीय श्रामणेर के पास नहीं पहुँच गये, जो अपने दिवाकक्ष में बैठे कुछ सिलाई कर रहे थे। प्रत्येक अस्विकृति पोट्ठिल के स्वाभिमान पर बहुत बड़ा प्रहार थी। यहाँ तक कि सातवर्षीय श्रामणेर ने भी, जो स्वयं अर्हत थे, पोट्ठिल का अनुरोध पहले अस्वीकार कर दिया, किंतु अंत में बोले, 'भन्ते, यदि आप धैर्यपूर्वक अनुशासन सहन करें, तो मैं आपको शरण प्रदान करूंगा।'

पोट्ठिल का उत्तर था, 'सत्पुरुष, मैं वैसा ही करूँगा। यदि आप मुझे आग में प्रवेश करने के लिये कहेंगे तो मैं उसमें भी प्रवेश करूँगा'।

श्रामणेर ने देखा कि पोट्ठिल बहुत ही मूल्यवान वस्त्र पहने हुए हैं और उनसे बोले, 'भन्ते, आप अपनी पूरी पोशाक में इस पानी के सरोवर में कूद जांय।' पोट्ठिल तब पानी में कूद गये। जब श्रामणेर ने देखा कि स्थविर के वस्त्र से पानी टपक रहा है, तो उन्हें अपने पास बुलाया। पोट्ठिल परीक्षा में सफल हो गये थे और उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि उनका मन अब निर्देशों को समझने तथा उनके पालन के लिए पर्याप्त लचीला हो गया था।

श्रामणेर ने कहा, 'भन्ते, यदि कोई छ छेद वाली वल्मीक (बांबी) हो और जिसके किसी छेद से एक गोधा (गोह) अंदर चली गयी हो तथा कोई व्यक्ति उस गोधा को पकड़ना चाहता हो, तो वह पाँच छेदों को बंद कर एक छेद खुला रखेगा। इस प्रकार वह गोधा को पकड़ सकेगा। आप को भी इंद्रियों के छ द्वारों से निपटने के लिए वही करना चाहिए। छ में से पाँच द्वारों को बंद कर, अपना ध्यान मन के द्वार पर समर्पित कर दीजिये।'

पोट्ठिल ने कहा, 'महोदय, इतना पर्याप्त है।' चूँकि वे इतने विद्वान थे कि श्रामणेर के शब्द उनके लिए किसी के दीप प्रज्ज्वलित करने के समान थे। अतः उन्होंने अपने शरीर में ध्यान केंद्रित करना शुरू कर दिया। भगवान बुद्ध ने पोट्ठिल को ध्यान लगाने का अभ्यास करते देखा और अपने मन में सोचा, 'इस भिक्षु को स्वयम् को इसमें स्थापित करना होगा, जिससे कि वह महान ज्ञानी बन सके।' बुद्ध ने अपना एक जगमग प्रतिरूप भेजा और वह गाथा कही जो इस प्रवचन के आरंभ में दी गयी है। इस गाथा से पोट्ठिल के हौसले में अथाह बृद्धि हुई, जिसकी उनको अत्यंत आवश्यकता थी। गाथा के समापन पर वे पूर्णरूपेण जागृत, अर्थात् अर्हत हो गये।

तो हम इस कथा से देख सकते हैं कि छात्र के लिए विनम्रता कितनी महत्वपूर्ण है। और यह भी देख सकते हैं कि एक योग्य आचार्य प्राप्त करना भी कितना आवश्यक है। इस कथा में आचार्य एक सातवर्षीय श्रामणेर थे, किंतु वे पूर्णरूपेण जागृत थे और चूँकि वे जागृत थे, इसलिए उनमें किसी अत्यंत शिक्षित भिक्षु से भी अधिक समझ थी।

विश्वास पर एक टिप्पणी

इन प्रवचनों से संबंधित यहां हम एक टिप्पणी जोड़ना चाहते हैं। भगवान बुद्ध के जीवन की घटनाओं से संबंधित हम आपको कई कथायें सुनाएँगे, और ऐसी अनेक घटनाएँ होंगी जिन पर आपके लिए विश्वास करना कठिन हो। जैसे एक अमरीकी शिष्या को, उच्चतम ब्रह्मलोक से लेकर निम्नतम नरक तक के ३१ लोकों के विषय में समझाते हुए, सयाजी ऊ बा ख़िं ने बताया था, 'जब मैं इन लोकों के विषय में बात करता हूँ तो मेरा अर्थ यह नहीं होता कि आप इन में विश्वास करें। हो सकता है कि आप स्वर्ग एवं नरक के अस्तित्व पर विश्वास करती हों। किंतु जब आपकी मानसिक शक्ति उस स्तर तक विकसित हो जाएगी कि आप द्वार खोल कर सभी ३१ लोकों के प्राणियों को देख पाएँगी, तब आप को मेरे विवरण पर विश्वास हो ही जाएगा। मैंने कई व्यक्तियों को ऐसा देखने के लिए प्रशिक्षित भी किया है। आप समझ रही हैं न? तब आप को विश्वास होगा।'

सयाजी ऊ बा ख़िं ने यह भी कहा, "जब तक उन्हें स्वयं अनुभव न हो या जब तक उन्हें साक्षात दिखाई न पड़ जाय तब तक मैं किसी से किसी बात पर विश्वास करने के लिए नहीं कहता। अतः आप यहाँ मेरे ऊपर विश्वास करने के लिए नहीं हैं। बुद्ध ने कहा है: 'मुझ पर भी विश्वास मत करो।' आप स्वयं अनुभव करें। और पता लगाएँ कि क्या आपका अनुभव अच्छा है तथा आपके लिए कल्याणकारी है। यदि यह आपके लिए कल्याणकारी है, तो आप इसे ग्रहण

कर सकते हैं। यदि आपके लिए कल्याणकारी नहीं है, तो आप इसे नहीं ग्रहण करेंगे। अतः यहाँ पर सारा प्रशिक्षण अनुभव के माध्यम से ही होगा।" सयाजी ऊ बा ख़ीं ने इसी प्रकार लोगों को प्रशिक्षित किया तथा उसी प्रकार हम भी यहाँ लोगों को प्रशिक्षित करते हैं। किंतु यह आवश्यक है कि शिक्षा सही तरीके से हो और बुद्ध ने जो सिखाया उसके प्रति हम निष्ठावान बने रहें। इसीलिए, धर्मग्रंथों की कथाओं के दृष्टाँतों द्वारा प्रवचनों को स्पष्ट करते समय, हम यथासंभव उनके मूल स्वरूप के प्रति निष्ठावान बने रहेंगे। यदि हम उनके कुछ भागों को केवल इसलिए निकालने लगें कि हमें भय है कि छात्र हर बात पर विश्वास नहीं करेंगे, तो हम इन शिक्षाओं को विकृत कर देंगे।

पुक्कुसाति की कथा

यह एक और कथा है जो आचार्य तथा शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण को चरितार्थ करती है। धातुबिभंग सुत्त पर टिप्पणी करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने सम्राट बिंबिसार के समकालीन, तक्षशिला अर्थात गांधार के राजा पुष्करसरिन (पालि में, पुक्कुसाति) का विवरण प्रदान किया है।[२] इन दोनों नरेशों के बीच एक मैत्रीपूर्ण गठबंधन स्थापित हो गया था और एक समय पुक्कुसाति ने उपहार स्वरूप अमूल्य आभूषणों से भरी, रोगन की हुई आठ मंजूषाएं अर्थात पेटियां भेंजी। चूँकि, बिंबिसार के विचार में भेजने युक्त कोई भी अन्य सामग्री उतनी मूल्यवान नहीं थी, उन्होंने पुक्कुसाति को इस विश्व में त्रिरत्न (बुद्ध, धम्म और संघ) के उदय से परिचित कराने की कल्पना की। उन्होंने ४ बाहु लंबे और एक बित्ता चौड़े स्वर्णपट पर त्रिरत्न तथा बुद्ध की शिक्षा के अन्य सिद्धांतों जैसे, सति (जागरूकता) पर प्रवचन, अष्टाँगिक आर्य मार्ग, जागृति के ३७ घटक (बोधि पक्खिय धम्मा) का वर्णन खुदवाया। जब राजा पुक्कुसाति ने उस स्वर्णपट पर इन शिलालेखों को पढ़ा, तो वे असीम आनंद से गदगद हो गये और उन्होंने संन्यास लेने का निर्णय लिया। अपना सर मुड़वा कर, और संन्यासी के पीले वस्त्र पहन कर, उन्होंने अपना महल छोड़ दिया। फिर उन्होंने श्रावस्ती तक की एक लंबी यात्रा जेतवन द्वार के बाहर बाहर तंय की, क्योंकि उन्होंने अपने मित्र के पत्र से यह समझा था कि बुद्ध राजगृह (पालि में, राजगह, आधुनिक राजगिर) में होंगे। इसीलिए वे जेतवन में पूछे बिना ही राजगह के लिए चल पड़े।

पुक्कुसाति ने, जो विधिवत उपसंपदा प्राप्तकर पूर्णरूप से भिक्षु नहीं बने थे, एक रात एक कुम्हार की झोपड़ी में बिताई। बुद्ध अपने दौरे पर थे और उन्होंने उसी झोपड़ी में रहने की अनुमति माँगी। उन्हें भी अनुमति मिली। बुद्ध को लगा कि यह युवा व्यक्ति सुहावने

व्यवहार वाला है, तथा उससे पूछा कि उसने संन्यास क्यों लिया और उसके आचार्य कौन थे । पुक्कुसाति ने कहा कि उन्होंने अपना गार्हस्थ्य जीवन गौतम बुद्ध के कारण त्याग दिया था । बुद्ध ने पुक्कुसाति से पूछा कि क्या वे गौतम बुद्ध से कभी मिले हैं और पुक्कुसाति ने कहा 'नहीं'। तब बुद्ध ने उनसे पूछा कि यदि वे बुद्ध से मिलें तो क्या उन्हें पहचान पाएँगे । पुक्कुसाति ने उत्तर दिया 'नहीं'। बुद्ध ने अपने मन में विचार किया, 'एक सम्मानित परिवार से इस युवा व्यक्ति ने मेरे कारण संन्यास लिया है । मानो, मैं इसे धर्म की शिक्षा देता हूं?' अतः उन्होंने उनसे कहा, 'भिक्खु, मैं आपको धर्म की शिक्षा दूँगा । कृपया मन लगाकर ध्यान से सुनिए, मैं बोलता हूँ ।' और पुक्कुसाति ने कहा, 'अच्छा मित्र'।

बुद्ध ने पुक्कुसाति को एक विस्तृत धर्मोपदेश दिया, और उस उपदेश के अंत में पुक्कुसाति को महसूस हुआ कि वे स्वयं बुद्ध को ही सुन रहे थे । उन्होंने बुद्ध को नमन किया और उनसे कहा कि वे कृपया उनकी क्षमा याचना स्वीकार करें कि उन्होंने उनको (बुद्ध को) 'मित्र' (जिससे तात्पर्य निकलता है कि वे दोनों समान स्तर के हैं) शब्द से संबोधित करने की त्रुटि की थी । पुक्कुसाति अब ऐसी ग़लती दुहराने से बचेंगे । बुद्ध ने इसे स्वीकार किया ।

पुक्कुसाति ने तब बुद्ध की उपस्थिति में उपसंपदा प्राप्त करने (भिक्षु बनने) का अनुरोध किया । यदि पुक्कुसाति ने अपने अतीत में अपने आप को परिपूर्ण कर लिया होता, तो बुद्ध उन्हें 'एहि भिक्खु' ('भिक्षु, आओ') कह कर उपसंपदा दे देते और संघ में सम्मिलित कर लेते । किंतु पुक्कुसाति के पास प्रवज्या के लिए चीवर तथा पात्र नहीं था, अतः बुद्ध ने पहले इन सामग्रियों को प्राप्त करने के लिए कहा । जब वे इनकी तलाश कर रहे थे, एक गाय ने उन्हें मार डाला । कई भिक्षुओं ने बुद्ध से पूछा कि मृत्यु के बाद पुक्कुसाति का क्या हुआ, तो बुद्ध ने कहा, चूँकि वे जागृति के तीसरे (अनागामी) चरण में पहुंच गये थे, पुक्कुसाति अब उच्चस्तरीय लोकों में से एक में थे और उस लोक से कभी भी वापस आए बिना ही, वे पूर्ण जागृति (निर्वाण, पालि में निब्बाण) प्राप्त कर लेंगे ।

आप देखेंगे कि पुक्कुसाति को यह जानने की आवश्यकता नहीं थी कि उनसे कौन बात कर रहा था । उन्होंने एक खुले दिमाग़ से, पूरा ध्यान देकर, सत्य और धम्म के विषय में सुना और स्वयं सत्य का साक्षात्कार करने में सक्षम हो गये । ऐसा ही दृष्टिकोण आप का भी होना चाहिए । हमारे काम में अंध-विश्वास के लिए कोई स्थान नहीं है । जब हम श्रद्धा की बात करते हैं, तो हमारा भाव आत्मविश्वास से होता है और हमारा आत्मविश्वास हमारे अनुभव पर निर्भर करता है । प्रारंभ में हमें कम से कम उतने आत्म-विश्वास की आवश्यकता है जिससे हम इस तकनीक का निष्पक्ष परीक्षण कर सकें । और शीघ्र ही हमें स्वयं पता चल जाएगा कि यह

शिक्षा सच्ची, कल्याणकारी एवं लाभदायक है या नहीं ।

हम चीज़ों पर प्रायः सूचक पत्र (लेबल) लगा देते हैं, जिससे उन्हें ठीक से जानने में कठिनाई होती है । धार्मिक विषयों में ऐसा विशेष रूप से होता है । किंतु सभी धर्म नैतिकता की आवश्यकता को स्वीकारते हैं, यहाँ तक कि जो लोग किसी धर्म में प्रशिक्षण की अपेक्षा व्यक्तिगत दर्शन के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे भी नैतिकता की आवश्यकता को समझते हैं । धर्मों में ध्यान के विकास की आवश्यकता भी मानी जाती है, जिससे चित्त को एकाग्रता एवं समभाव की अवस्था प्राप्त हो सके । जैसा कि, सयाजी ऊ बा ख़ीं ने 'बौद्ध धर्म है क्या' ('What Buddhism Is') में कहा है:

> यहाँ चित्त सभी नीवरणों या बाधाओं से मुक्त होकर शुद्ध, शांत तथा भीतर और बाहर, दोनों ओर से प्रकाशित हो जाता है । ऐसी अवस्था में मन शक्तिशाली एवं उज्ज्वल हो जाता है ।.....यह प्रकाश जो मन की आँखों के समक्ष पूर्ण अंधेरे में परिलक्षित होता है, वह पवित्रता, शांति तथा मन की धीरता की अभिव्यक्ति है । इसे प्राप्त करने के लिए हिंदू अति अथक परिश्रम करते हैं, क्योंकि प्रकाश से शून्य में जाकर वापस आना, वास्तव में ब्राह्मीय है । 'न्यू टेस्टामेंट' ('New Testament') के 'बुक ऑफ मैथ्यू' ('Book of Matthew') में 'प्रकाश से पूर्ण शरीर' की बात कही गयी है । रोमन कैथोलिक पादरियों को इस चमत्कारी प्रकाश के लिए नियमित रूप से ध्यान लगाने के बारे में भी हम सुनते हैं । क़ुरान भी 'दिव्य प्रकाश की अभिव्यक्ति' को प्रमुखता प्रदान करता है । प्रकाश का यह मानसिक परिलक्षण अंतर्मन की पवित्रता का द्योतक है, और मन की पवित्रता ही धार्मिक जीवन का सार है, चाहे कोई भी हो, बौद्ध, हिंदू, ईसाई या मुसलमान । 'मन की पवित्रता' ही वास्तव में सभी धर्मों का सबसे बड़ा आमभाजक (हर, denominator) है ।

शमथ (पालि में, समथ) या प्रशांति एवं अंतर्दृष्टि

चूँकि हमने नैतिकता के अभ्यास का संकल्प लेकर एक पहला कदम उठाया है, हमारे काम के दो पहलू हैं :- समथ ध्यान तथा अंतर्दृष्टि या विवेकपूर्ण ध्यान या भावना । मानसिक विकास की ये दो शाखाएँ हैं । इन दो प्रकार के ध्यान से हमें उत्कृष्ट लाभ मिल सकता है । एकाग्रता एवं समथ से हम अपना मानसिक विकास करते हैं; और जब हमारा मानसिक विकास होता है, तो हम सारी लालसा या तृष्णा का परित्याग कर देते हैं । अंतर्दृष्टि ध्यान के माध्यम से हम विवेक का विकास करते हैं और विवेक के विकास से हम अज्ञान का त्याग करते हैं ।

प्रशांति (समथ) मन की एक स्थिर, शांतिपूर्ण तथा आभायुक्त अवस्था है, जो उच्च कोटि

की चित्त एकाग्रता द्वारा प्राप्त की जाती है। पहले पाँच दिनों में हम इसी के लिए काम कर रहे हैं। अंतर्दृष्टि के विकास के लिए उच्च स्तर की शांत एकाग्रता अपरिहार्य है। इनका उपयोग समाधि या ध्यान (पालि में, झान) में प्रवेश करने के लिए संभव है, किंतु यह झान हमारे लिये आवश्यक नहीं है। जब हमारा चित्त पर्याप्त रूप से शांत एवं केंद्रित अवस्था तक पहुँच जाता है, तब हम अंतर्दृष्टि का विकास कर सकते हैं। यह समथ या प्रश्रब्धि (पालि में, पसद्धि) मन को दोष एवं आंतरिक बाधाओं से मुक्त करती है तथा उसे अपार वेधक शक्ति प्रदान करती है। समथ में ऐसी शक्ति है जिससे हमारा चित्त एकाग्र तथा स्थिर हो जाता है, क्योंकि हम सभी कामच्छन्द एवं द्वेष से मुक्त हो जाते हैं। यह हमें प्रकाश के बोध की ओर, तथ्यों (प्रक्रियाओं) की परिभाषा की ओर, तथा ज्ञान एवं आनंद की ओर अग्रसर करता है, और हमें उच्चस्तरीय ध्यान लगाने के लिए तैयार करता है।

अंतर्दृष्टि अर्थात् विपश्यना (पालि में 'विपस्सना') प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से नश्वरता या अनित्य (पालि में, अनिच्च), असंतोष (दुःख), तथा अस्तित्व के सभी भौतिक एवं मानसिक तथ्यों (प्रक्रियाओं) में अनात्म (पालि में, 'अनत्ता') की भेदक जानकारी है। यह अंतर्दृष्टि ही है जो जागृति की इन्द्रियातीत या पारलौकिक अवस्थाओं में प्रवेश के लिए एवं अंतिम मुक्ति के लिए अग्रसर करती है। किंतु हम इन प्रवचनों में आगे चल कर अंतर्दृष्टि (विपस्सना) के विषय में और विस्तार में जाएँगे। इस समय हमारी प्राथमिकता एकाग्रता के विकास की है।

शिक्षा तथा आचार्य के प्रति उचित दृष्टिकोण के दृष्टांत के लिए हमने पुक्कुसाति का संक्षिप्त विवरण दिया; और हमने देखा कि बुद्ध द्वारा दिए गये एक विस्तृत प्रवचन को सुनने के बाद, वे 'फल' पद के तीसरे (अनागमी) चरण में स्थापित हो गये। किसी भी व्यक्ति के लिए 'फल' पद की अवस्थाएं प्राप्त करना तब तक आसान नहीं है, जब तक कि अतीत में जागृति की सभी आवश्यक तैयारियाँ पूरी न कर ली गयी हों।

संदर्भ सूची

१. कथा के लिये **धम्मपद (खुद्दक निकाय) अट्ठकथा, २०: मग्गवग्गो, ७: पोट्ठिलत्थेरवत्थु अथवा अंग्रेजी में** 'Buddhist Legends III (XX:7): 157-159' देखिये।

२. मज्झिम निकाय टीका (३. उपरिपणास टीका), ४: विभंग वग्गो, १० धातु विभंग सुत्त (on the web, translation by Thanissaro Bhikkhu 1997)

– संक्षिप्त कथा के लिए 'माज्झिम निकाय' की टीका 'पपंच सूदनी' II, 979f देखिए ।

– Dictionary of Pali Proper Names में 'पुक्कुसाति' के अंतर्गत विस्तृत कथा वर्णित है ।

– बुद्ध से भेंट के विषय में The Middle Length Sayings III 285-294 पढ़ सकते हैं.

प्रथम दिवस, सायं प्रवचन,

सब्ब पापस्स अकरणं, कुसल्लस्स उपसंपदा
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं

बुराई से बचना, अच्छे कर्मों की संपदा संचित करना, (पाँच नीवरणों से) अपने चित्त को परिशुद्ध करना -- बुद्धों की यही शिक्षा है.

---धम्मपद, गाथा १८३

नैतिकता, एकाग्रता, एवं अंतर्दृष्टि

बुद्ध की शिक्षाओं का संक्षिप्त सार धम्मपद की इस गाथा में प्रस्तुत है । हम इस संक्षिप्त कथन का विस्तार कर इसमें जागृति पथ अर्थात् अष्टाँगिक आर्यमार्ग को सम्मिलित कर सकते हैं । अष्टाँगिक आर्यमार्ग तीन भागों में विभाजित है: नैतिकता (शील, पालिमें, 'सील'), एकाग्रता (समाधि), एवं विवेक या अंतर्दृष्टि (प्रज्ञा, पालि में, 'पञ्ञा') ।

"बुराई से बचना" अर्थात् बुरे कामों को करने से बचना है । यही नैतिकता है, नैतिक शिक्षापदों (पालि में, सिक्खापदों) अर्थात् शील का पालन ।

"अच्छा करने" का अर्थ है अपने अंदर की अच्छाई को उभारना, उसे उगाना, विकसित करना तथा अपने आप को अच्छाई से भरे रखना । ऐसा करने के लिए हमें अपने मन को लाभहीन अवस्थाओं से मुक्त रखना होगा । मन लाभहीन अवस्थाओं से तभी मुक्त होता है जब ध्यान केंद्रित हो, अर्थात चित्त एकाग्रता (समाधि) प्राप्त हो । जब मन पूरी तरह से केंद्रित हो जाता है, तो वह पवित्र दशा में होता है । ऐसे समय में हम संवेदनात्मक (कामावचर) स्तर से परे और अकुशल या नकारात्मक शक्तियों से मुक्त होते हैं । यह मन की ध्यान (पालि में, झान) में समावेश (समाधि) की स्थिति है ।

"चित्त को परिशुद्ध करने" का अर्थ है, ऐसा अभ्यास जिससे समुचित ज्ञान, समुचित समझ या समुचित दृष्टिकोण प्राप्त हो सके । यही बुद्धिमत्ता, विवेक या अंतर्दृष्टि (पञ्ञा) है । हम यहाँ नैतिक जीवन या शील द्वारा चित्त-एकाग्रता (समाधि) और उसके द्वारा विवेक (पञ्ञा) पर आधारित प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए आए हैं । हम दस दिनों तक यह अभ्यास करेंगे, और परिणाम प्राप्त करने के लिए यह अवधि पर्याप्त है । इस प्रशिक्षण को 'उच्च नैतिकता में प्रशिक्षण', 'उच्च मानसिक विकास में प्रशिक्षण', और 'उच्च विवेक में प्रशिक्षण' (अधिसील सिक्खा, अधिचित्त सिक्खा, अधिपञा सिक्खा) के रूप में भी जाना

जाता है ।

दूसरे शब्दों में, हम अष्टाँगिक आर्यमार्ग पर चलने का अभ्यास करने जा रहे हैं; वही मार्ग जिसे गौतम बुद्ध ने पचीस हज़ार वर्ष पहले अपने प्रथम उपदेश - जिसे पालि में 'धम्म चक्क पवत्तन सुत्त' (धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र) के नाम से जानते हैं - में निर्धारित किया था । उन्होंने यह प्रवचन उन पाँच तपस्वियों को दिया जो उनके जागृति प्राप्त करने के लिए छ वर्षों के संघर्ष में उनके साथ थे । यह अष्टाँगिक आर्यमार्ग उद्देश्य प्राप्ति का माध्यम है; और उद्देश्य दुख का अंत है । इस अष्टाँगिक आर्यमार्ग के सार को नैतिकता, एकाग्रता, और विवेक के तीन चरणों में अभिव्यक्त किया गया है । छात्र को इसी मार्ग का लगन एवं कड़ाई से पालन करना चाहिए ।

एक समय बुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ देश की यात्रा कर वापस लौटे । ये भिक्षु श्रावस्ती के सभागार में बैठ कर उन मार्गों की चर्चा कर रहे थे जिन पर वे चल कर आए थे[१] । वे कह रहे थे, 'अमुक अमुक गाँव का रास्ता अच्छा है, तथा अमुक अमुक गाँव का मार्ग ऊबड़ खाबड़ है ।' वे कंकड़ से भरे तथा कंकड़ से मुक्त रास्तों के बारे में बात कर रहे थे । यह समझ कर कि ये भिक्षु पूर्ण जागृति अर्थात अर्हत्व के लिए तैयार हैं, बुद्ध उस सभागार में पहुँचे और उन्होंने अपना स्थान ग्रहण किया । उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि वे क्या बात कर रहे थे तो भिक्षुओं ने उन्हें बताया । तब बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, यह मार्ग हमारे हित के परे है । एक भिक्षु को आर्य मार्ग पर चलना चाहिए, क्योंकि सभी दुखों से मुक्ति प्राप्त करने का वही एक मार्ग है ।' और उन्होंने निम्नलिखित गाथायें कहीं :-

मग्गानट्ठंगिको सेट्ठो, सच्चानं चतुरो पदा ।
विरागो सेट्ठो धम्मानं, द्विपदानंच चक्खुमा ।।

मार्गों में अष्टाँगिक मार्ग, सच्चाइयों में चार आर्य सत्य, धर्मों में वीतरागता, (देव, मनुष्य आदि)
द्विपदों में चक्षुमान बुद्ध श्रेष्ठ हैं ।

एसेव मग्गो नत्थञ्ञो, दस्सनस्स विसुद्धिया ।
एतञ्हि तुम्हे पटिपज्जथ, मारस्सेतं पमोहनं ।।

दर्शन की विशुद्धि (ज्ञान की प्राप्ति) के लिये यही मार्ग है, (कोई) दूसरा नहीं । तुम इसी पर आरूढ़ होओ, यह मार (मुक्ति में बाधक) को हक्का बक्का करने वाला, किंकर्तव्यविमूढ़ बनाने वाला है ।

एतञ्हि तुम्हे पटिपन्ना, दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वो मया मग्गो, अञ्ञाय सल्लकन्तनं ।।

इस मार्ग पर आरूढ़ होकर तुम दुःख का अंत कर लोगे। लालसा रूपी तीर को (शल्य द्वारा) निकाल फेंकने का ज्ञान स्वयं प्राप्त करने के बाद मैंने इस मार्ग का तुम्हारे लिए आख्यान किया है.

तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारो तथागता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति, झायिनो मारबन्धना॥

इस मार्ग पर चलना (तपस्या, अभ्यास या परिश्रम करना) तो तुम्हे ही पड़ेगा, तथागत तो मात्र मार्ग आख्यात (मार्ग दर्शन) करते हैं। इस मार्ग पर आरूढ़ होकर ध्यान करने वाले मार के बंधन से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

– धम्मपद, गाथा २७३-२७६

इन गाथाओं के समापन पर पाँच सौ भिक्षुओं ने अर्हत्व प्राप्त किया। ऐसा इसलिए नहीं कि जागृति प्राप्त करना आसान है, किंतु इसलिए कि वे पहले ही पर्याप्त साधना कर चुके थे, और उन्हें लक्ष्य प्राप्त करने के लिए केवल थोड़े से अतिरिक्त प्रोत्साहन की आवश्यकता थी।

अष्टाँगिक आर्य मार्ग[२]

तो, अष्टाँगिक आर्य मार्ग क्या है? पहले तीन चरण नैतिक शील के हैं:--

१. सम्मा वाचा या समुचित वाणी।

२. सम्मा कम्मन्तो या समुचित कर्म।

३. सम्मा आजीवो या समुचित जीविका।

उसके पश्चात अगले तीन चरण चित्त एकाग्रता (समाधि) के आते हैं:--

४. सम्मा वायामो या समुचित प्रयास।

५. सम्मा सति (संस्कृत में स्मृति) या समुचित संज्ञान अथवा ध्यान।

६. सम्मा समाधि या समुचित समाधि, तन्मयता अथवा एकाग्रता।

अंतिम दो चरण विवेक या अन्तर्दृष्टि (पञ्ञा) के हैं:--

७. सम्मा संकप्पो या समुचित संकल्प, चिंतन अथवा विचार।

८. सम्मा दिट्ठि या समुचित दृष्टि अथवा समझ।

अब आइए, मार्ग के इन चरणों को और विस्तार से जाँचें। नैतिकता के अंतर्गत समुचित वाणी, समुचित कर्म, तथा समुचित जीविका हैं।

समुचित वाणी का अर्थ है सत्य एवं लाभकारी वचन:-- न तो दूषित और न दुर्भावना

पूर्ण। इसे चार भागों में विभाजित कर सकते हैं:

१. झूठ बोलने से विरति या परहेज।

२. चुगली, बदनामी तथा मिथ्या दोषारोपण से विरति।

३. अपमान जनक, कठोर तथा दूसरों के लिए हानिकारक भाषा का प्रयोग करने से विरति।

४. व्यर्थ बातों जैसे, किंवदंतियों, दंतकथा तथा बकवास या बेकार बातों से विरति।

इन दस दिनों की साधना अवधि में, आर्य मौन हमें समुचित वाणी के प्रति आश्वस्त रखेगा। आप देखेंगे कि समुचित वाणी परिभाषित करते समय हमने भाषण के वे पहलू बताए हैं जिनसे हमें बचना है। यदि हम अनुचित भाषण से बचें, तो शेष वाणी समुचित होगी। यदि हम आर्य मौन का पालन कर रहे हैं तो हमें इस बात की चिंता नहीं करनी पड़ेगी कि हमारी वाणी समुचित है या नहीं।

समुचित कर्म के लिए भी हमारे पास एक परिभाषा है, जो बताती है कि किन प्रकार के कार्यों से बचना है:-- हम हत्या करने, बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करने, तथा व्यभिचार से बचें।

आइए, हम हत्या से विरति के विषय को थोड़ा और विस्तार से देखें, जिससे यह समझ सकें कि इसमें क्या क्या समाहित है[३]। किसी सचेतन प्राणी की हत्या के अंतर्गत क्या आता है? सबसे पहले तो वह एक सचेतन प्राणी होना चाहिए। यह एक सचेतन प्राणी है, इसकी जानकारी होनी चाहिए और उसकी हत्या का उद्देश्य भी। फिर इस हेतु प्रयास; जिसके अंतर्गत स्वयं कार्यवाही करना या किसी को प्रोत्साहित करना सम्मिलित है। और अंततोगत्वा प्राणी की मृत्यु। अतः हम देख सकते हैं कि मानसिक कारक (पहलू) कितना महत्वपूर्ण है। यदि हमारा पैर बगीचे में अकस्मात किसी कीड़े पर गलती से पड़ जाय, तो हमें इस बारे में दोषी नहीं महसूस करना चाहिये। किंतु होश में किसी की हत्या -- जूँ या कीड़े के अंडे की हत्या से लेकर गर्भपात अथवा मानव समेत किसी भी जीवित प्राणी का बध करना -- अनुचित कार्य है।

बिना दी हुई चीज़ लेने से बचने का अर्थ यह है कि चोरी के इरादे से किसी दूसरे की सजीव या निर्जीव संपत्ति को उसके स्वामी की अनुमति के बिना या तो स्वयं के शारीरिक प्रयास से या किसी और को उकसा कर हटाने या अपनाने से परहेज करना है।

यौन दुराचार से बचने का अभिप्राय है; ऐसे किसी भी यौन कर्म से परहेज जिससे दूसरों को पीड़ा या दुःख हो। उदाहरण स्वरूप, व्यभिचार दांपत्य जीवनों के विघटन का कारण बनता है।

इसमें बलात्कार तथा किसी पुरुष का किसी ऐसी लड़की से जो अपने माता, पिता या किसी अन्य के संरक्षण में हो, अनुचित यौन संबंध भी सम्मिलित है। किसी अल्पवयस्क से ग़लत संबंध या किसी ऐसे भी से इस प्रकार का संबंध, जो पति या पत्नी न हों, अनुचित है। इस संयम में अन्य वासनाएँ भी सम्मिलित हैं, अर्थात हमें मादक द्रव्यों, ताश के पत्ते या पासे से जुआ खेलने, इत्यादि से बचना चाहिए।

नैतिक कर्मों का तीसरा भाग समुचित आजीविका है. समुचित आजीविका का अर्थ ऐसे व्यवसाय द्वारा जीवन यापन से है जिससे किसी भी अन्य प्राणी की पीड़ा में बृद्धि न हो। इसका अर्थ है कि हम दस्युओं के व्यापार, शस्त्रों के विनिर्माण, तथा मादक द्रव्यों या दवाओं के व्यापार न करें। ऐसी अनुचित आजीविका के चार प्रकार होते हैं:-- (१) एक वह जो गलत आचरण पर आधारित हो, (२) एक वह जो अनुचित साधनों या तरीकों पर आधारित हो, (३) एक वह जो दूसरों को धोखा देने (छल-कपट) पर आधारित हो, और (४) एक वह जो निम्न अथवा अयोग्य कला या पेशे पर आधारित हो।

अनुचित आचरण के अंतर्गत वे सभी अनुचित कार्य एवं वाणी सम्मिलित हैं जिनकी चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। हमें संवेदनशील प्राणी की हत्या करने से बचना चाहिए, इत्यादि। झूठ तथा अन्य प्रकार की अनुचित वाणी द्वारा अपनी जीविका चलाने से बचना चाहिए। ऐसे पाँच प्रकार के उत्पाद हैं – हथियार, प्राणी, मांस, मादक द्रव्य, और विष – जिन्हें बेचने से बचना चाहिए। जब हम इस प्रकार की अनुचित आजीविका से बचते हैं, तो समुचित आजीविका का पालन होता है।

बौद्ध भिक्षुओं या अन्य वैरागियों, जैसे भारत वर्ष और बर्मा में शिष्यों के एक वर्ग ऋषि या 'इसि', को जिन अनुचित आजीविका का पालन नहीं करना चाहिए उन्हें 'अनुचित साधनों' के अंतर्गत वर्णित है। निम्न, अयोग्य कला या प्रथायें विशेष रूप से भिक्खुओं पर लागू होती हैं, किन्तु गृहस्वामियों पर भी लागू की जा सकती हैं। इसके अन्तर्गत हस्तरेखा शास्त्र तथा शरीर के अन्य चिह्नों की व्याख्या द्वारा भविष्यवाणी, ज्योतिष, और अन्य ऐसी सांसारिक कलाएं हैं, जो भिक्षुओं के धर्म पालन के विपरीत हैं।

बुद्ध ने भिक्षुओं को तथा गृहस्थ लोगों को शील (पालि में, सील) पालन में मार्ग दर्शन के लिए नियम दिए। भिक्षुओं के लिए २२७ नियम हैं। किंतु हम यहाँ भिक्षु नहीं हैं और हमें यहाँ इस साधना में उन्हें जानने की आवश्यकता भी नहीं है। हम गृहस्थ लोगों को पाँच या आठ शिक्षापदों (पालि में, सिक्खापदों) का पालन करना चाहिए। नये छात्रों के लिए पंचशील पर्याप्त हैं। पुराने छात्रों को तीन अतिरिक्त शिक्षापदों का पालन करना चाहिए।

आइए, अब पंचशील के बारे में देखें :--

१. **पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** सचेतन प्राणी की हत्या से परहेज़ । यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका हैं । किसी भी प्राणी के लिये उसका जीवन ही सर्वाधिक मूल्यवान है । इससे करुणा के विकास में सहायता मिलती है ।

२. **अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** बिना दी हुई वस्तु को लेने से बचना । यह संपत्ति के लिए अनुचित इच्छाओं को रोकने में सहायक होता है ।

३. **कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** यौन दुराचार से परहेज़ । सुषुप्त (अथवा जागृत) काम वासना सभी के भीतर होती है । लगभग प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस पर विजय प्राप्त कर पाना कठिन होता है । इसलिए, अनुचित यौन अभिव्यक्ति से बचना है ।

४. **मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** झूठ बोलने से परहेज़ । सत्य के सार को वाणी द्वारा निभाने के लिए यह शिक्षापद सम्मिलित किया गया है ।

५. **सुरा-मेरय-मज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** मादक द्रव्यों से विरति । जब हम नशे में होते हैं, तो मन को स्थिर रखने की एवं विचार शक्ति की क्षमता खो देते हैं ।

यही वे सील हैं जिनके पालन करने का बीड़ा हम सभी ने उठाया है । हमारी एक दूसरे की जान ले लेने की संभावना तो नहीं है, किंतु हमें यह याद रखना चाहिये कि यदि कोई मच्छर हमें तंग कर रहा हो तो उसे मारें नहीं । हमारी आवश्यकताएं बहुत अधिक नहीं हैं । हमारा भोजन उपलब्ध है । अत: जो हमारा नहीं है, उसे लेने से बचना आसान होना चाहिए । इन दस दिनों तक, हम किसी भी प्रकार की यौन अभिव्यक्ति से बचेंगे, अत: हमें इस बारे में भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है । आर्य मौन रखने के कारण हम यह जानते हैं कि हमारी वाणी अनुचित नहीं होगी । और हमें मस्तिष्क को भ्रमित करने वाली कोई भी नशीली दवा या पेय के सेवन से बचना चाहिए । दूसरी तरफ ऐसी भी दवाएं हो सकती हैं, जो हमारे जीवन और सुरक्षा के लिए आवश्यक हों ।

पुराने छात्रों को पालन करने के लिये तीन और सील हैं :--

६. **विकाल भोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** कुसमय भोजन से परहेज़ ।

७. **नच्च-गीत-वादित-विसूकदस्सन-माला-गंध विलेपन धारण-मण्डन-विभूसनट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** नाचने, गाने, बजाने, अश्लील प्रदर्शन देखने से, तथा माला-इत्र-विलेपन-अंजन-आभूषण इत्यादि शरीर को सुशोभित करने वाले पदार्थों के प्रयोग से बचना ।

८. **उच्चासयन-महासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ।** उच्च एवं विलासमय आसनों या शैय्या से परहेज़ । इनसे आलस्य एवं अभिमान हो सकता है ।

कुसमय भोजन से परहेज़ का अर्थ है अपराह्न में भोजन न करना । ये आठ शिक्षापद वही हैं जिनका बौद्ध लोग एक चंद्र मास में चार बार अर्थात चांद के चार चरणों से संबंधित चार दिन पालन करते हैं । इन्हें उपोसथ दिवस, अनुपालन अथवा उपवास के दिन, कहते हैं; इस अर्थ में कि दोपहर के बाद कोई ठोस भोजन नहीं किया जाता ।

बुद्ध के समय पांच सौ गृहस्थ शिष्य ऐसे थे जो पूरे पंचशील का भी पालन नहीं कर रहे थे [४] । वे सोचते थे कि केवल एक शिक्षापद के पालन करने का प्रयास ही पर्याप्त था ।अत: कुछ हत्या करने से बचते, अन्य झूठ बोलने से, इत्यादि । कौन सा सील सबसे कठिन है, इस विषय पर एक दिन उनमें बहस छिड़ गई । "यह बहुत कठिन है, मैं जिस शील का पालन कर रहा हूं, उसका पालन अत्यन्त ही कठिन है" । अंत में वे बुद्ध के पास गये जिससे कि बुद्ध उन्हें सबसे कठिन शिक्षापद के बारे में बता सकें । किन्तु बुद्ध ने किसी भी सील को नहीं चुना । उन्होंने कहा, "किसी भी सील का पालन कठिन है" और उन्हें निम्नलिखित गाथायें सुनायी :--

योे पाणमतिपातेति, मुसावादञ्च भासति ।
लोके अदिन्नमादियति, परदारञ्च गच्छति ।।
सुरामेरयपानञ्च, यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं, मूलं खणति अत्तनो ।।

जो संसार में हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्री गमन करता है, मद्यपान (सुरा एवं मेरय का पान) करता है, वह व्यक्ति यहीं --इसी लोक में -- अपनी जड़ खोदता है

एवं भो पुरिस जानाहि, पापधम्मा असञ्ञता ।
मा तं लोभो अधम्मो च, चिरं दुक्खाय रन्धयुं ।।

हे पुरुष! ऐसा जान कि अकुशल धर्म पर संयम करना आसान नहीं है । तुझे लोभ (राग) तथा अधर्म (पाप, अकुशल धर्म) चिरकाल तक दु:ख में न रांधते (पकाते) रहें ।

धम्मपद, गाथायें २४६-२४८

अत: हमें सभी सिक्खापदों के पालन का प्रयास करना चाहिए । यदि हम इनमें से किसी को भी तोड़ेंगे, तो बाद में वही हमारे पीड़ित होने का कारण बनेगा ।

महाधन की कथा

हमारे लिये यह समझना कठिन है कि हम कितने भाग्यशाली हैं, क्योंकि हमें मनुष्य जीवन एवं ध्यान की साधना का अवसर प्राप्त हुआ है, तथा इसके माध्यम से सभी दुखों का अंत कर देने की

संभावना भी। '*The Real Values of True Buddhist Meditation*' (सच्चे बौद्ध ध्यान के वास्तविक मूल्यों) में सया जी ऊ बा ख़ीं ने बताया है कि जागृति प्राप्त करने के लिये हमें कितनी अवधि तक परिश्रम करना होगा। अर्हत होने के लिये हमें लगभग एक सौ से लेकर एक हज़ार कल्पों (विश्व चक्रों) तक परिश्रम करना होगा। हम उतने लंबे समय तक काम कर सकते हैं, किन्तु यदि हम मुक्ति के लिये परिश्रम करने का अवसर आने पर उसे गंवा दें, तो सारे किये पर पानी फिर जायेगा। महाधन -- जो बुद्ध के समय एक कोषाध्यक्ष के पुत्र थे -- के साथ भी ऐसा ही हुआ [५]। महाधन का वाराणसी के एक अत्यंत समृद्ध परिवार में जन्म हुआ था। उनके माता-पिता ने निर्णय लिया कि चूंकि वे इतने धनी थे, उनका बेटा मनचाहा आनंद उठा सकता है, और अध्ययन के नाम पर उसने केवल कुछ वाद्ययंत्र बजाने ही सीखे। उसने उतने ही समृद्ध परिवार की एक लड़की से शादी की। उसकी पत्नी ने भी नाचना और गाना सीखा था, किन्तु अन्य कुछ नहीं।

नगर के एक युवा वर्ग ने महाधन को भ्रष्ट करने का निर्णय लिया। उन्होंने एक ऐसे स्थान पर बैठ कर नशीले पेय पीना और भोज करना प्रारंभ किया जहां उनका महल को जाने वाले रास्ते पर से दिखाई पड़ना सुनिश्चित था। महाधन ने अपने सेवक से पूछा कि वे क्या पी रहे थे। क्या वह अच्छा पेय था ? सेवक ने उत्तर दिया, 'स्वामी, विश्व में इस पेय की तुलना में कोई दूसरा पेय नहीं'। तो चखने के लिये उन्होंने उसे थोड़ा सा मंगवाया। उसके बाद फिर थोड़ा और; इस तरह शीघ्र ही यह उनकी आदत बन गयी। युवक उनके आसपास मंडरा कर उनका सारा धन भोजन, पेय, पुष्प, एवं इत्र पर खर्च करने में उनकी मदद करते रहे। जब उनका अपना धन समाप्त हो गया तो उन्होंने अपनी पत्नी का भी सारा धन खर्च कर दिया। अपनी सारी संपत्ति बेच कर वे रंक हो गये। अंत में, वे और उनकी पत्नी अन्य लोगों की रसोइयों में से बचे खुचे भोजन करने पर मजबूर हो गये।

एक दिन, बुद्ध ने उन्हें देखा और मुस्कुराये। ऐसा है कि, जब भी कोई बुद्ध मुस्कराते हैं तो उसका अवश्य कोई कारण होता है, अत: उनके परिचर आनंद ने उनसे पूछा कि वे क्यों मुस्कुराये थे। उन्होंने उत्तर दिया 'ज़रा महाधन को देखो। उसने दोनो भाग्य गंवा दिया, और अब वह और उसकी पत्नी भीख माँग रहे हैं। यदि उसने अपना धन नहीं गंवाया होता, अपितु अपने जीवन के उत्कर्ष में स्वयं को व्यवसाय में लगाया होता, तो वह मुख्य कोषाध्यक्ष बन गया होता। यदि वह एक भिक्षु बना होता तो उसे पूर्ण जागृति या अर्हत्व प्राप्त हो गया होता, तथा उसकी पत्नी जागृति के तीसरे चरण, अनागामी तक पहुँच जाती। यदि वह अपने जीवन के मध्य में स्वयं को व्यवसाय में लगाता, तो वह द्वितीय कोषाध्यक्ष बन गया होता, या

यदि वह एक भिक्षु बना होता तो उसे जागृति के तीसरे चरण, अनागामी का फल प्राप्त हुआ होता, तथा उसकी पत्नी जागृति के दूसरे चरण सकृदागामी (पालि में सकदागामी) में स्थापित हो जाती। यदि वह अपने जीवन के तीसरे भाग में स्वयं को व्यवसाय में लगाता, तो वह तृतीय कोषाध्यक्ष बन गया होता, या यदि वह एक भिक्षु बना होता तो उसे जागृति के दूसरे चरण सकदागामी का फल प्राप्त हुआ होता।' तथा उसकी पत्नी जागृति के पहले चरण श्रोतापन्न (पालि में, सोतापन्न) में स्थापित हो जाती। और बुद्ध ने निम्नलिखित गाथायें सुनायीं :--

अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चाव झायन्ति, खीणमच्छेव पल्लले॥

ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना (अथवा) यौवन में धन कमाये बिना (लोग बृद्धावस्था में) मत्स्यहीन जलाशय में बूढ़े (जीर्ण) क्रौंच पक्षी के समान घुट-घुट कर मरते हैं।

अचरित्वा ब्रह्मचरियं, अलद्धा योब्बने धनं।
सेन्ति चापातिखीणाव, पुराणानि अनुत्थुनं॥

ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना (अथवा) यौवन में धन कमाये बिना (लोग) बृद्धावस्था में धनुष से छोड़े गये बाण की भांति पुरानी बातों को याद कर अनुताप करते हुए बिलखते हुए सोते हैं।

धम्मपद, गाथा १५५-१५६

बुद्ध ने महाधन के विषय में जो टिप्पणी की उससे हम देख सकते हैं कि उसने और उसकी पत्नी ने जागृति तक पहुँचने के लिये जो भी आवश्यक था वह सब कर लिया था। किन्तु उन्होंने अपने अनैतिक आचरण के कारण अपना अवसर गंवा दिया। अत: हमें अपना अवसर नहीं गंवाना चाहिये और कार्यरत रहने में कोई समय नहीं खोना चाहिए। जितना ही शीघ्र हम प्रारम्भ करेंगे उतना ही अच्छा हम काम कर सकेंगे और उतना ही अच्छा परिणाम होगा।

बुद्ध ने पाटलिगाम के शिष्यों को बताया कि जो लोग शील का उल्लंघन करते हैं उनके लिये पाँच संकट प्रतीक्षा कर रहे हैं तथा जो लोग उनका पालन करते हैं उनके लिये पाँच आशीर्वाद[६]। जो पांच संकट चरित्रहीन व्यक्तियों की प्रतीक्षा करते हैं, वे हैं :- असावधानी के कारण धन की हानि, बुरी प्रतिष्ठा, जन समूह – चाहे वह आर्यों, पुजारियों, गृहस्थों या तपस्वियों का हो – में सम्मिलित होते समय संकोच एवं कायरता, तथा मृत्यु के समय विभ्रान्त चित्त; मृत्यु के पश्चात शरीर के विघटन पर निम्न, पीड़ालिप्त, दुख लोक अर्थात नरक में जन्म।

जो पाँच आशीष एक सदाचारी व्यक्ति को प्राप्त होते हैं, वे हैं :- अपने परिश्रम के माध्यम से धन की बड़ी वृद्धि, अच्छी प्रतिष्ठा, किसी जनसभा में लोगों के बीच जाते समय आत्म-विश्वास, शांत मृत्यु, तथा मरणोपरान्त शरीर विघटन पर सुखद स्वर्गीय लोक में जन्म ।

हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सदाचरण से समुचित चित्त-एकाग्रता संभव होती है । यदि हम बुरे कर्मों की चिंता से मुक्त हैं, यदि हम मनबहलावी (ध्यान विकर्षण या ध्यान भंग करने वाली) गतिविधियों में लिप्त नहीं है, तो हम अपने चित्त को शांत कर सकते हैं तथा हमारा मन प्रशांति प्राप्त कर सकता है ।

समाधि

अब हम अष्टांगिक आर्य मार्ग के दूसरे भाग में आते हैं । इसमें समुचित प्रयास, समुचित संज्ञान (स्मृति या पालि में 'सति') तथा चित्त-एकाग्रता सम्मिलित हैं

समुचित सति प्राप्त करने के लिये हमें सही प्रयास या परिश्रम करना होगा । जब तक हम अपने चंचल एवं अस्थिर मन के विचारों की सीमा को सीमित करने का दृढ़ प्रयास नहीं करते तब तक हम उस मानसिक सजगता की आशा नहीं कर सकते जो समुचित केन्द्रण द्वारा चित्त एकाग्रता एवं समभाव की मनोदशा प्राप्त करने में सहायक होती है । जब मन पूर्ण एकाग्रता की स्थिति में होता है तो वह नीवरण (विघ्न) मुक्त, शुद्ध, शान्त, तथा बाहर और भीतर से ज्योतिर्मय होता है । ऐसी स्थिति में मन शक्तिशाली और उज्ज्वल हो जाता है । बाहरी तौर पर इसका निरुपण प्रकाश द्वारा होता है, जो मात्र एक मानसिक प्रतिबिंब है । इस प्रकाश की मात्रा एक सितारे के प्रकाश से लेकर सूर्य के प्रकाश तक घट बढ़ सकती है । यह आलोक जो पूरे अंधेरे में मन की आंखों के सामने परिलक्षित होता है, वह मन की पवित्रता, शांति, और धीरता की एक अभिव्यक्ति है ।

इन शिविरों में साधकों को ध्यान की शक्ति विकसित कर चित्त एकाग्रता तक ले जाने के लिये उन्हें नाक के नीचे, ऊपरी होंठ के एक बिन्दु स्थल पर ध्यान केंद्रित करने, तथा श्वास के अन्दर आने और बाहर जाने के साथ साथ उसका मौन संज्ञान लेते रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । चाहे हम मानते हों कि जीवन पिछले कर्मों का परिणाम है या मानसिक शक्तियों (संस्कारों, पालि में, संखारों) का परिणाम है, अथवा हमारा विश्वास हो कि जीवन किसी ईश्वर से उपहार स्वरुप प्राप्त हुआ है, जीवन का प्रतीक एक ही है और वह है मनुष्य में ताल, धड़कन या कंपन । वास्तव में, जीवन के इस प्रतीक का एक प्रतिबिंब श्वास है । आनापान ध्यान, जिसका हम अब अभ्यास कर रहे हैं, इस पद्धति का सबसे बड़ा लाभ

यह है कि श्वास न केवल एक स्वाभाविक शारीरिक कृया है, यह हमें हर समय उपलब्ध भी होती है । हम अपने श्वास के संज्ञान के माध्यम से किसी भी समय, अन्य सभी विचारों का बहिष्कार कर, श्वास पर अपना ध्यान टिका सकते हैं ।

दृढ़ प्रयास द्वारा हम अपने विचारों की सीमा को संकीर्ण करते हैं । सबसे पहले, हम अपनी नाक के आसपास के क्षेत्र में, आती जाती प्रत्येक श्वास को जानते हुए, अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं । धीरे - धीरे श्वास छोटी और कम होने लगती है, और हमारा ध्यान ऊपरी होंठ पर एक संकुचित स्थान तक सीमित हो जाता है । हम श्वास को बाहर छोड़ते समय गर्म हवा का, तथा अन्दर लेते समय ठंडी हवा का अनुभव करते हैं । ऐसा कोई कारण नहीं है कि ध्यान भावना का एक साधक कुछ दिनों के प्रशिक्षण द्वारा चित्त एकाग्रता सुरक्षित करने में सक्षम न हो सके ।

प्रज्ञा (पालि में, पञ्ञा)

अष्टांगिक आर्य मार्ग का अंतिम भाग विवेक (प्रज्ञा, पालि में 'पञ्ञा') है । विवेक या ज्ञान तीन प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है :--

(१) दूसरों को सुनने या पढ़ने के माध्यम से,

(२) चिंतन, मंथन तथा विश्लेषण से,

(३) व्यक्तिगत अनुभव से ।

वास्तव में, हम इन शिक्षाओं का स्थायी रूप से तभी पालन कर सकते हैं जब हमारा ज्ञान व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से आता है । किन्तु जब हम अपनी साधना के दूसरे चरण में पहुंचेंगे तब हम विवेक के विषय में अधिक विस्तार में जायेंगे ।

आनापान का अभ्यास

इन पहले कुछ दिनों में हमारा उद्देश्य आनापान का अभ्यास है । जो तीन बातें हमें जाननी हैं, वे हैं :- (१)आश्वास अर्थात नाक में प्रवेश करती श्वास, (२) प्रश्वास अर्थात नाक से बाहर जाती श्वास, (३) और ऊपरी होंठ पर नाक के आधार पर बिन्दु स्थल । यह बिन्दु स्थल ही हमारा ध्यान का केन्द्र बिन्दु या संदर्भ बिंदु है । श्वास लेते समय आप को पता होना चाहिए कि आप श्वास ले रहे हैं । श्वास छोड़ते समय पता होना चाहिए कि आप श्वास छोड़ रहे हैं । अपने मन को स्थिर करने के लिए, कभी कभी, श्वास लेते समय मन ही मन 'अन्दर', तथा श्वास छोड़ते समय मन ही मन 'बाहर' सोचने की आवश्यकता पड़ सकती है ।

हो सकता है कि समय-समय पर आप भ्रमित हो जांय तथा सही टिप्पणी न कर पायें। जब ऐसा होता है तो आप पुन: प्रारंभ करें। सतर्कता के साथ साभिप्राय श्वास लें। एक सतत, दृढ़ प्रयास करें। इसके लिये इस बारे में पढ़ना, बात करना या विचार करना आवश्यक नहीं है। बस इसे करना मात्र है। पढ़ने, बात करने या सोचने का अर्थ है अपना ध्यान हटाकर समय गंवाना, और वह आप की समाधि में बाधक होगा। यदि आप बहुत ज्यादा बात करते हैं या बहुत ज्यादा सोचते हैं, तो ध्यान लगाने की कोशिश करते समय आप पायेंगे कि आपकी बातचीत और विचार फिर से वापस आ रहे हैं।

अत:, यदि आप प्रगति करना चाहते हैं तो केवल श्वास संज्ञान (आनापान भावना) के विकास पर ध्यान केंद्रित करें। यह शिविर केवल दस दिन का है, इसलिए इस अवधि के दौरान आप को बात करने या सोचने से बचना चाहिए।

कई वर्षों पूर्व, अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र (International Meditation Centre), यंगॉन, बर्मा में जब सयाजी ऊ बा ख़ीं वहां आचार्य थे, तो आदरणीय वेबू सयादॉ असीम अनुकंपा कर, वहां आये। ऐसी मान्यता है कि आदरणीय वेबू सयादॉ पूर्ण शांति एवं परम आनन्द के उच्चतम स्तर पर पहुंच गये थे। उन्होंने शिष्यों से पूछा कि वे सोने से क्या प्राप्त करते हैं। उत्तर था 'कुछ भी नहीं'। तब उन्होंने पूछा, 'तो फिर तुम सोते क्यों हो?' उनके कहने का तात्पर्य था कि जो समय हम नींद में व्यतीत करते हैं, यदि उसका ध्यान लगाने में उपयोग किया जाय, तो वह अधिक लाभप्रद होगा। उनके अनुसार हम काफ़ी लंबे समय तक सो चुके हैं और अब हमें उस पर बिताए समय को कम करना चाहिए। बर्मा में ऐसे कई ध्यान केन्द्र हैं जहां भिक्षु अर्धरात्रि तक ध्यान लगाने का अभ्यास करते हैं, फिर प्रात: ४ बजे उठ भी जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र , यंगॉन की समय सारिणी की तरह यहां की समय सारिणी भी अत्यंत तनाव मुक्त है। अत: आप को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि आप इस समय सारिणी का पालन कर रहे हैं।

कई साल पहले, दो अमरीकी महिलाएं आई. एम. सी. (अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र) - यंगॉन में आईं। जब वे वहां पहुंचीं तो सयाजी ऊ बा ख़ीं ने उन्हें ध्यान के कार्यक्रम के बारे में बताया और यह भी कि उन्हें प्रात: ४ बजे जागना होगा। एक महिला ने उत्तर दिया कि वह ८ बजे के पहले नहीं जाग सकती। तो, सयाजी ऊ बा ख़ीं ने उससे कार्यक्रम का अनुसरण करने का प्रयास करने के लिये कहा। महिला का उत्तर था कि वह इतना जल्दी नहीं उठ सकती तथा उसे लोगों के आदेशों का पालन करने की आदत नहीं थी, विशेष कर पुरुषों के।

सयाजी ऊ बा ख़ीं ने उसे बताया कि उनका उद्देश्य वहाँ जो भी आये उसे धर्मफल प्रस्तुत करने का था और वह उस केन्द्र पर जो प्रस्तुत था उसे प्राप्त करने के लिए आई थी। अत:,

यह उसके ऊपर था कि वह उसे ग्रहण करे या छोड़ दे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि कार्यक्रम इस प्रकार से बनाया गया था कि जिससे छात्रों को अधिकतम लाभ मिल सके। उसका अनुसरण न करने से उसी की हानि होगी।

तब सयाजी ऊ बा ख़ीं ने एक और दृष्टान्त दिया। एक बार एक बृद्ध अमरीकी महिला थी, जो वहां रात में पहुंचने के पहले बीस घंटे हवाई जहाज में काट चुकी थी। वह बहुत ही थकी अनुभव कर रही थी। इसके बावजूद, प्रात: ४ बजे उठ कर उसने अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। आप भी, दूर देशों से आकर इस अमरीकी महिला की परिस्थितियों में हो सकते हैं।

आप देखेंगे कि जिस व्यक्ति में पारमिताओं (पालि में,पारमियों) या अतीत में किए गए अच्छे कर्मों, की पर्याप्त मात्रा थी, उसे अनुनय (समझाने बुझाने) की आवश्यकता नहीं पड़ी। समय सारिणी के अनुसरण का परिणाम यह हुआ कि उसने अपने ध्यान में अच्छी प्रगति की, अर्थात उसे अच्छी मात्रा में शांति और सुस्थिरता प्राप्त हुई।

धर्म (पालि में, धम्म) पीड़ा को समाप्त कर, शांति और सुस्थिरता प्रदान करता है। हमने कई ऐसे उदाहरण देखे हैं, जहां छात्रों ने इस सारणी के नियमों और विनियमों का पालन कर कुछ हद तक ऐसा प्राप्त किया है। सभी नियमों और विनियमों में, सबसे महत्वपूर्ण दस दिनों के दौरान आर्य मौन का धारण है। छात्रों में परस्पर कोई भी वार्तालाप नहीं होना चाहिए। किन्तु, यदि आपकी कोई आवश्यकता है, तो आप प्रबंधक या आचार्य से संपर्क कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

१. कथा के लिये Buddhist Legends III (125?) 149 देखिये

२. और विस्तार के लिए Ledi Sayadaw, *The Noble Eightfold Path (The Wheel)*, nos. 245–247 देखिए

३. Sayagyi U Tint Yee, “What Have You Gained by Your Meditation?” (*The Anecdotes of Sayagyi U Ba Khin*, p. 48) तथा Ledi Sayadaw “The Manual of the Constituents of the Noble Path (Magganga-dipani),” *The Manuals of Buddhism*, p. 244 (“Five conditions of Panatipata”) देखिये।

४. कथा के लिये Buddhist Legends III 125 देखिये

५. कथा के लिये Buddhist Legends II (XI-9) pp. 346–348 देखिये।

६. *Dialogues of the Buddha* II 89–91 देखिये। इसका अनुवाद *The Life of the Buddha* (Kandy: Buddhist Publication Society, 1978 में भी उपलब्ध है।

द्वितीय दिवस, सायं प्रवचन

मन का वशीकरण

भगवान बुद्ध ने कहा है :-

> भिक्खुओं, मैं ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जानता जिसे नियंत्रित करना उतना ही कठिन हो, जितना अदम्य मन को नियंत्रित करना। वास्तव में, अदम्य मन को नियंत्रित नहीं किया जा सकता।
>
> भिक्खुओं, मैं ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जानता जिसे नियंत्रित करना उतना ही आसान हो, जितना वशीभूत मन को नियंत्रित करना। वास्तव में, वशीभूत मन को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।
>
> भिक्खुओं, मैं ऐसी कोई भी अन्य वस्तु नहीं जानता, जो उतनी ही हानिकारक हो जितना अनियंत्रित या अदम्य मन। वास्तव में, अदम्य मन अत्यंत हानिकारक होता है।
>
> भिक्खुओं, मैं ऐसी कोई भी अन्य वस्तु नहीं जानता, जो उतनी ही लाभदायक हो जितना कि वशीभूत मन। वास्तव में, वशीभूत मन अत्यंत लाभदायक होता है।
> भिक्खुओं, मैं ऐसी कोई भी अन्य वस्तु नहीं जानता, जो उतनी ही शोकदायी हो जितना कि एक अदम्य, अनियंत्रित, असुरक्षित एवं असंयमित मन। वास्तव में, ऐसा मन अत्यंत शोकदायी होता है।
>
> भिक्खुओं, मैं ऐसी कोई भी अन्य वस्तु नहीं जानता, जो उतनी ही आनन्ददायी हो जितना कि एक वशीभूत, नियंत्रित, सुरक्षित एवं संयमित मन। वास्तव में, ऐसा मन परम आनन्ददायी होता है।
>
> अंगुत्तर निकाय, १, ४-५ (अंगुत्तर निकाय १. एककनिपात ४. अदन्तवग्गो)

क्रमिक प्रशिक्षण

एक बार गणक मौद्गल्यायन (पालि में, मोग्गल्लान) नामक एक गृहस्थ ब्राह्मण भगवान बुद्ध के पास गये, जब भगवान श्रावस्ती के पास माँ विशाखा द्वारा निर्मित विहार में रह रहे थे[1]। गणक मोग्गल्लान के पास पूछने के लिए एक प्रश्न था। उन्होंने पहले यह कहा कि इस जीवन में बहुत सी बातें है, जो धीरे - धीरे चरणबद्ध तरीके से की जाती हैं। माँ विशाखा के महल का निर्माण

अंतिम सोपान तक चरणबद्ध तरीके से हुआ। ब्राह्मणों को क्रमश: प्रशिक्षित किया जाता है, जब वे अपने पवित्र ग्रंथ अर्थात तीन वेदों को सीखते हैं। धनुर्विद्या सीखने वाले अपने कौशल को सीखने तथा अभ्यास करने का कार्य क्रमश: करते हैं। व्यापारी अंशों में गणना करना सीखते हैं। अत: उन्होंने भगवान बुद्ध से पूछा "तो क्या यह संभव नहीं है, हे गौतम! कि आपके सिद्धान्तों एवं अनुशासन के विषय में भी उसीप्रकार एक क्रमिक प्रशिक्षण, एक क्रमिक कार्यक्रम तथा एक क्रमिक अभ्यास निर्धारित हो?'

भगवान बुद्ध ने उन्हें उत्तर दिया, 'ऐसा संभव है; जैसे एक निपुण अश्व प्रशिक्षक, जब उसके पास कोई सुंदर एवं कुलीन अश्व होता है तो सबसे पहले वह उसे लगाम पहनने की आदत डालता है, और तब उसे आगे का प्रशिक्षण देता है। उसी प्रकार, तथागत जब किसी व्यक्ति को प्रशिक्षण के लिये स्वीकार करते हैं, तो सबसे पहले उसे अनुशासित करते हैं।'

और भगवान बुद्ध ने धम्म में प्रशिक्षण के विभिन्न चरणों को गणक मोग्गल्लान को स्पष्ट किया। बुद्ध ने कहा 'सबसे पहले, जिसे प्रशिक्षित होना है उसे नैतिक आदतें डालनी होंगी।' नैतिकता विकसित हो जाने पर बुद्ध ने इंद्रियों पर नियंत्रण सिखाया। उन्होंने कहा 'आँखों से कोई रूप देख कर उसके साधारण या विशेष स्वरूप से सम्मोहित न हों। क्योंकि, यदि आपकी दृष्टि अनियंत्रित है, तो इच्छा और निराशा का प्रवेश हो सकता है; अशुभ एवं अकुशल मनोदशाएं अन्दर घुस सकती हैं। इसी प्रकार का नियंत्रण अन्य इंद्रियों, अर्थात श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श, तथा मन पर बनाए रखना चाहिए।

तत्पश्चात बुद्ध ने भोजन में संयम सिखाया। भोजन में संयम पा लेने के बाद सतर्कता की बात आती है। दिन में चलते और बैठेते समय, तथा रात में लेटते समय, अर्थात हर समय, मन को बाधक मनोदशाओं से परिशुद्ध करना चाहिए। सोते जाते समय, व्यक्ति में विश्राम के पश्चात उठने के विचार का अभिप्राय होना चाहिए।

सतर्कता विकसित करने के बाद, व्यक्ति को, वह जो भी कर रहा है, उसका स्पष्ट संज्ञान और जागरूकता बनाये रखने के लिये काम करना चाहिए। जागरूकता उपलब्ध हो जाने के बाद उसे पाँचों नीवरणों या बाधाओं पर विजयी होना चाहिए। जागरूकता के माध्यम से, हम लोभ और दुर्भावना से मन को शुद्ध कर सकते हैं। दुर्भावना से मुक्त, हम सभी के प्रति अनुकम्पावान तथा दयालु होंगे। और हम आलस्य एवं तंद्रा को समाप्त करते हैं। प्रकाश का अनुभव होने से हम आलस्य एवं तंद्रा से मुक्त हो जाते हैं। हम व्याकुलता एवं खेद को समाप्त करते हैं, जिससे हमारा मन शांत हो जाय। और संदेह से छुटकारा पाकर हम लाभदायक मनोदशाओं के प्रति

आश्वस्त हो जाते हैं ।

पाँचों नीवरणों के उन्मूलन के साथ, समाधि अर्थात ध्यान (पालि में, झान) की अवस्था का विकास संभव है । यह विशेष रूप से भिक्खुओं के लिये है, जिनका जीवन अधिक शुद्ध होता है । अपनी महान पवित्रता के कारण, वे चित्त एकाग्रता के इन उच्च स्तरों को प्राप्त करने में सक्षम होते हैं । हम गृहस्थ लोगों के लिए एकाग्रता का केवल एक अच्छा स्तर प्राप्त करना ही पर्याप्त होता है ।

बुद्ध ने अपने उपदेश के समापन में कहा कि वे लोग जो अभी तक पूर्ण जागृति नहीं प्राप्त कर पाये थे, वे अभी भी विद्यार्थी थे और मुक्ति प्राप्त करने की आशा से काम कर रहे थे; तथा जो लोग पूर्ण जागृति प्राप्त कर चुके थे, वे सुख-शान्ति से अभी और-यहीं, अर्थात वर्तमान में रह रहे थे ।

मार्ग पर चलने की आवश्यकता

प्रवचन के समापन पर, गणक मोग्गल्लान के पास एक और प्रश्न था । उन्होंने पूछा कि इस क्रमिक प्रशिक्षण के बाद क्या प्रत्येक व्यक्ति सर्वोच्च लक्ष्य, निर्वाण, पालि में निब्बान प्राप्त कर लेता है । बुद्ध ने उत्तर दिया कि कुछ तो लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं और कुछ नहीं । तो गणक मोग्गल्लान ने पूछा क्यों, चूंकि निब्बान विद्यमान है, उसे उपलब्ध करने के लिए मार्ग विद्यमान है, और मार्गदर्शन के लिये बुद्ध भी हैं, तो फिर क्यों, कुछ लोग लक्ष्य तक पहुँचते हैं और कुछ नहीं?

बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या उन्हें राजगृह (पालि में, राजगह, आधुनिक राजगिर) का मार्ग पता है । तो उत्तर था, हां । तब बुद्ध ने समझाया कि यदि कोई व्यक्ति उनसे राजगह जाने का मार्ग पूछे, और गणक मोग्गल्लान द्वारा मार्ग निर्देश दिये जाने के बाद भी, बताये हुए मार्ग पर न जाय, तो वह गलत मार्ग पर चला जायेगा । कोई दूसरा व्यक्ति, जिसने उस मार्ग निर्देश का अनुसरण किया है, वह राजगह पहुंच जायेगा । अत:, राजगह है, वहां जाने का मार्ग है, और कोई मार्ग निर्देश करने वाला भी है । तो ऐसा क्यों है कि कोई सही मार्ग पर जाता है और कोई गलत? गणक मोग्गल्लान ने कहा 'मैं क्या कर सकता हूं? मैं तो मात्र मार्ग दर्शक हूं' ।

भगवान बुद्ध ने कहा, 'इसी प्रकार, निब्बान विद्यमान है, निब्बान के लिए अग्रणी मार्ग विद्यमान है, और एक सलाहकार के रूप में मैं विद्यमान हूं । किन्तु, मेरे द्वारा निर्देश दिए जाने के

बाद, मेरे कुछ शिष्य परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं, और अन्य शिष्य इसे प्राप्त नहीं कर पाते। मैं क्या कर सकता हूं? मैं तो केवल मार्ग दर्शक हूं?'

और यह बात गणक मोग्गल्लान समझ गये। उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, 'ऐसे लोग जिनके पास जीविका का कोई साधन नहीं है; जो बिना श्रद्धा के भिक्खु बन जाते हैं; जो, धूर्त, कपटी और विश्वासघाती हैं; जो असंतुलित और अहंकारी हैं; जो कुटिल, अपमानजनक और मुंहफट हैं, जिन्हें अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं है; जो भोजन में संयमी नहीं हैं; जो जागरूकता के प्रति निष्ठावान नहीं हैं, किन्तु साधना के प्रति उदासीन हैं और प्रशिक्षण के लिए उत्सुक नहीं हैं; जिन्हें प्रचुरता पसंद है; जो पतित एवं आचार-भ्रष्ट हैं तथा एकान्तवास से जी चुराते हैं; जो आलसी, क्षीण ऊर्जावान, भ्रमित, जागरूकताविहीन, एकाग्रतारहित चंचल मन के हैं; जो क्षीणविवेकवान तथा बकवासी हैं – उनमें बुद्ध की समानता के योग्य कुछ भी नहीं है। जो इसके विपरीत अच्छे गुण वाले हैं, वे ही बुद्ध की संगत में हैं।' और उन्होंने बुद्ध की शिक्षा की सराहना उच्चतम शिक्षा के रूप में की तथा त्रिरत्न में शरण लेने के लिए अनुरोध किया।

तो हम इस प्रवचन से देख सकते हैं कि भगवान बुद्ध ने चरणबद्ध तरीके से काम करने तथा स्वयं काम करने के महत्व पर जोर दिया। कोई दूसरा हमारा ध्यान हमारे लिए केंद्रित नहीं कर सकता, कोई दूसरा हमारे लिए हमारा मन शुद्ध नहीं कर सकता। एक आचार्य केवल यह बता सकते हैं कि हमें क्या करना है। अपना काम हमें स्वयं करना होगा।

गणक मोग्गल्लान से अपने प्रवचन में, बुद्ध ने कहा कि वे अपने शिष्यों को सति (अर्थात जागरूकता) सिखाते थे, किन्तु उस समय सति के विषय में उन्होंने पूर्ण निर्देश नहीं दिये। ये निर्देश बुद्ध के अन्य उपदेशों में उपलब्ध है, जैसे कि, आनापानसति सुत्त[२] अर्थात श्वास संज्ञान प्रवचन में।

श्वास संज्ञान

जब बुद्ध ने प्रशिक्षण देना प्रारंभ किया तो अनेक लोग उनकी ओर आकर्षित होने लगे, और शीघ्र ही सिखाने के लिये अनेक भिक्खु हो गये। जो साधना द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त कर चुके थे वे अवस्मिक अर्थात नवदीक्षित भिक्खुओं को प्रशिक्षित करने लगे। वे नये भिक्खुओं को नैतिक प्रशिक्षण में स्थापित करते, तत्पश्चात् उन्हें कैसे प्रश्रब्धि अर्थात शांति तथा अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो, यह सिखाते। एक बार, अनेक भिक्खु बुद्ध के पास एकत्रित हुए। उन्होंने उस पूरे भिक्खु समुदाय को देखा और बोले, 'भिक्खुओं, यह परिषद निरर्थक शब्दों से रहित है, इस सभा का कोई भी शब्द

व्यर्थ नहीं है। यह शुद्ध मार्ग पर स्थापित है। जैसा भिक्खु संघ यह है, वैसा भिक्खु संघ श्रद्धा, सम्मान, उपहार, तथा 'यह विश्व के लिये एक अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है' ऐसे भाव के साथ लोगों द्वारा करबद्ध अभिवादन के योग्य है। भिक्खुओं, ऐसा भिक्खु संघ जैसा यह है, उसे यदि थोड़ा दिया जाय तो अधिक हो जाता है; और अधिक दिया जाय तो अत्यधिक हो जाता है।' उन्होंने घोषणा की कि उस संघ में ऐसे भी भिक्खु थे जो लक्ष्य के सभी चार चरणों में स्थापित हो गये थे, तथा अन्य भिक्खु लक्ष्य तक पहुंचने के लिये सही प्रकार से साधना कर रहे थे। और उन्होंने साधना का विस्तृत विवरण भी दिया।

आश्वास तथा प्रश्वास के संज्ञान की हमारी इस साधना में जो विवरण उपयोगी हैं, वे इस प्रकार हैं। तैयारी के लिए हम अच्छा मानसिक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं। विकसित करने के लिए बुद्ध ने चार मनोभावों का वर्णन किया है :- मैत्री (पालि में मेत्ता), करुणा, मुदिता अर्थात परोपकार में आनन्द, तथा समभाव या उपेक्षा (पालि में उपेक्खा)। बौद्ध देशों में रहने वाले लोग अपने दैनिक जीवन में इनको विकसित करने का प्रयास करते हैं, और हम भी वही कर सकते हैं। काम करते समय या खेलते समय, जब भी हम दूसरों के प्रति निष्काम प्रेम, दूसरों के प्रति करुणा, दूसरों की सफलता पर आनन्द की सहानुभूति तथा एक संतुलित, शांत, समभावयुक्त मन का अनुभव करते हैं, तब हम नैतिक जीवन जीने के लिए तैयार होते हैं तथा हमारे लिये ध्यान केंद्रित करना सरल हो जाता है।

यहाँ हमारे लिए, जबकि हम श्वास संज्ञान की साधना कर रहे हैं, बुद्ध द्वारा दिये गये अगले निर्देश अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। बुद्ध ने कहा, 'आन (अर्थात आश्वास) एवं अपान (अर्थात प्रश्वास) का संज्ञान जब विकसित हो जाता है, तथा बारंबार उसका अभ्यास किया जाता है, तो वह महान प्रतिफल एवं लाभ लाता है। तो, यह कैसे किया जाता है?'

'एक भिक्खु किसी वन में, एक वृक्ष के अधार पर, या किसी एकान्त स्थान पर, पालथी मार कर बैठता है तथा शरीर को सीधा रखते हुए अपने समक्ष अपना ध्यान केन्द्रित करता है। ध्यान के साथ वह श्वास लेता है तथा ध्यान के साथ वह श्वास छोड़ता है।.....वह अच्छी तरह जानता है, 'विचारों की गतिविधियों को शांत करते हुए मैं श्वास ले रहा हूं, विचारों की गतिविधियों को शांत करते हुए मैं श्वास छोड़ रहा हूं'। इस प्रकार वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है। ' चित्त को एकाग्र करते हुए मैं श्वास ले रहा हूं, चित्त को एकाग्र करते हुए मैं श्वास छोड़ रहा हूं।..... नश्वरता का पर्यवेक्षण करते हुए अर्थात समझते हुए मैं श्वास ले रहा हूं, नश्वरता समझते हुए मैं श्वास छोड़ रहा हूं।' इस प्रकार वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है। तो भिक्खुओं, इस प्रकार आन

एवं अपान का बोध जब विकसित हो जाता है, तथा बारंबार उसका अभ्यास होता है, तो उससे महान पुरस्कार एवं लाभ आते हैं ।

आइये हम उन महत्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित करते हैं, जिनका श्वास संज्ञान के माध्यम से एकाग्रता का विकास करते समय स्मरण होना चाहिये । यह भगवान बुद्ध के एक दूसरे महत्वपूर्ण प्रवचन, सतिपट्ठानसुत्त पर आधारित है[३] ।

ग्रंथ में लिखा है **'स सतो वा अस्ससति, सतो वा पस्ससति'** अर्थात 'वह सति के साथ श्वास लेताहै, सति के साथ श्वास छोड़ता है' । इसका अर्थ है कि ध्यानी को अपने आनापान के अभ्यास में, प्रत्येक आन, अन्दर आने वाली श्वास तथा अपान, बाहर जाने वाली श्वास के प्रति जागरूक रहना चाहिए । बिना जागरूकता या संज्ञान के कोई भी श्वास आने या जाने नहीं देना चाहिये ।

परिमुक्खम सतिम् उपट्ठपेत्वा - ध्यानी अपना ध्यान अपने समक्ष लाता है । उपट्ठपेत्वा क्रिया का शाब्दिक अनुवाद 'वर्तमान बनाता है' भी हो सकता है । यह सक्रियता से वर्तमान क्षण के, एवं ध्यान के विषय वस्तु के संज्ञान के महत्व को रेखांकित करता है । हमें अपना ध्यान सामने नासिका द्वार पर रखना है, और सीधे आन पर, अपान पर तथा उस स्थान पर जहां हवा का स्पर्श होता है, मन को किसी अन्य विषय पर बिना भटकने देते हुए, ध्यान लगाना है । ध्यान सदैव नाक के निचले भाग पर या ऊपरी होंठ पर रखा जाता है ।

हमारी सति बिना किसी बाधा के निरंतर बनी रहनी चाहिए **'सतिम् अविजाहन्तो'**, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति भुलक्कड़ है या पूरी तरह से अवगत नहीं है तो, श्वास संज्ञान का विकास असंभव है । ध्यान की साधना सफलतापूर्वक नहीं हो सकती ।

हमें सति के नेतृत्व में विवेक द्वारा पर्यवेक्षण करना चाहिये, **'पञ्ञया सल्लक्खेतब्बम्'** । इसका अर्थ है कि प्रत्येक आश्वास एवं प्रश्वास को भलीभांति जानना ।

आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि आश्वास और प्रश्वास, लंबी नाक वाले व्यक्ति के नाक में नीचे, तथा छोटी नाक वाले व्यक्ति के ऊपरी होंठ पर प्रहार करते हैं । स्मरण रखने के लिए, हमारे लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस बिंदु या स्थान पर हवा का स्पर्श स्पष्ट है, वहीं हमें अपनी मानसिक एकाग्रता को स्थापित करना है ।

मानसिक संस्कृति, मानसिक प्रशिक्षण या ध्यान की साधना के लिए पालि शब्द है 'भावना' । जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, ध्यान के दो प्रकार होते हैं :- शमथ (पालि में समथ) या शांति का विकास जो एकाग्रता के साथ होता है, तथा अंतर्दृष्टि या विवेक का विकास ।

बुद्ध ने कहा, 'भिक्खुओं, रोग दो प्रकार के होते हैं'[४] । "कौन दो? शरीर का रोग तथा मन का रोग । भिक्खुओं, ऐसे प्राणी हो सकते हैं जो, शारीरिक रोग की पीड़ा से एक वर्ष के लिए मुक्त हों, ... (या यहां तक कि) सौ वर्ष तक मुक्त हों । किन्तु, भिक्खुओं, जो विकारमुक्त हो चुके हैं अर्थात अर्हत हैं, उनके अतिरिक्त इस विश्व में ऐसा कोई भी प्राणी जो एक पल के लिए भी मानसिक रोग से मुक्त हो, ढूंढने से भी पाना कठिन है ।'

आनापान की साधना, जो एकाग्रता एवं शांति की ओर ले जाती है, एकमात्र बौद्ध धर्म में ही नहीं है । बुद्ध शासन, अर्थात वह काल जिसमें बुद्ध की शिक्षाओं की साधना पायी जाती है, उस अवधि के बाहर भी इस प्रकार की साधना जानी जा सकती है । बौद्ध ग्रंथों में इस प्रकार की साधना के लिए चालीस विधियां बताई गई हैं । और इनके द्वारा साधक उच्चतम समाधि या ध्यान (पालि में, झान) की अवस्था में पहुँच सकते हैं । किन्तु ये अवस्थाएं चाहे कितनी भी शुद्ध और उच्च स्तर की क्यों न हों, वासतव में ये मात्र मानसिक रचनायें हैं । वे मन द्वारा निर्मित, अनुबंधित एवं संयोजित हैं । वे परम सत्य नहीं हैं । और वे निब्बान की प्राप्ति के लिए आवश्यक भी नहीं हैं ।

यदि कोई व्यक्ति इन मनोदशाओं को प्राप्त कर ले तो वह अस्थायी रूप से मन को दोषमुक्त कर सकता है । जब तक कोई इस तरह की शुद्ध अवस्था में रहता है, तबतक मन भी शुद्ध रहता है । किन्तु, अशुद्धता की प्रवृत्ति की गहरी जड़ें तब भी विद्यमान रहती हैं । इन गहरी बैठी अशुद्धियों का उन्मूलन, मात्र अंतर्दृष्टि के माध्यम से ही हो सकता है । बौद्ध धर्म की यही विशिष्टता या अद्वितीयता है । किन्तु हमें स्पष्ट रूप से यह ध्यान में रखना चाहिए कि अंतर्दृष्टि के लिए सति अत्यंत आवश्यक है । और यह कितना कठिन हो सकता है, उसे समझने का हमें एक अवसर प्राप्त हुआ है ।

प्रारंभ में तो आपको लगेगा कि अपना ध्यान श्वास पर केंद्रित करना अत्यन्त कठिन है । आप आश्चर्य चकित हो जाएंगे कि आपका मन कैसे भागता है । यहां तक कि वह कुछ सेकंड के लिए भी नहीं टिकता! अत: आपको साभिप्राय (जानबूझकर) श्वास लेने की आवश्यकता पड़ेगी तथा श्वास पर निरंतर एवं अविचल ध्यान के लिये प्रयास करना पड़ेगा । तब, कुछ समय के बाद, आप ऐसा अनुभव करेंगे कि एक पल के लिये आपका ध्यान सम्पूर्ण रूप से श्वास पर केंद्रित हो गया है; यहां तक कि आसपास की ध्वनियां भी नहीं सुनाई देंगी; आपके लिये कोई बाहरी दुनिया नहीं मौजूद होगी । यह क्षण आपके लिये आनन्द, सुख एवं शांति से भरपूर ऐसा अद्भुत अनुभव होगा कि आप इसे बनाये रखना चाहेंगे । किन्तु आप इसे टिके रहने के लिए मजबूर नहीं कर सकते ।

फिर भी, यदि आप लगातार और अविचल अभ्यास करते रहें, तो आप यह अनुभव बार बार तथा लंबी लंबी अवधि के लिए वापस प्राप्त कर सकते हैं।

आनापान की ही साधना है जो सभी बुद्धों एवं उनके प्रमुख शिष्यों द्वारा की गई है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि यह अत्यन्त परिष्कृत, सूक्ष्म तथा शक्तिशाली है। इसके लिये अच्छी एकाग्रता और अच्छी बुद्धि की आवश्यकता होती है।

सयाजी ऊबा ख़ीं के शब्दों में हमारे लिये 'एक में तीन', अर्थात स्थान, आश्वास एवं प्रश्वास, तीनों का संज्ञान लेते रहना आवश्यक है। आज प्रात:कालीन प्रवचन में हमने 'एक में तीन' का दृष्टान्त बुद्धघोष के विशुद्धि मार्ग के उद्धरण से दिया था। आइए अब हम उनकी एक और उपमा, घंटे की उपमा की चर्चा करते हैं।[५]

'जब साधक के स्थूल आश्वास एवं प्रश्वास समाप्त हो जाते हैं, तब उसकी चेतना सूक्ष्म आश्वास एवं प्रश्वास के संकेत के आलम्बन पर होती है। और जब वे भी समाप्त हो जाते हैं, तो उसकी चेतना उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर संकेतों के साथ उपजती है। कैसे?

मान लीजिए कि किसी व्यक्ति ने लोहे के एक बड़े शलाके से कांसे के घंटे पर प्रहार किया, तथा परिणामस्वरूप तीव्र ध्वनि उत्पन्न हुई। वह सकल ध्वनि उसकी चेतना की वस्तु होगी। और उस सकल ध्वनि के समाप्त होने पर, जो सूक्ष्म ध्वनि बनी रहती है, वह उसकी चेतना की वस्तु होगी। इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रत्येक सूक्ष्मतर संकेत के साथ उसकी जागरूकता उत्पन्न होती रहेगी। क्योंकि, यद्यपि ध्यान के अन्य प्रत्येक आलम्बन अगले स्तर पर और स्पष्ट होते जाते हैं, किन्तु इसके साथ ऐसा नहीं है। वास्तव में, जैसे जैसे साधक अपना ध्यान विकसित करता है, वैसे वैसे यह आलम्बन प्रत्येक उच्च स्तर पर सूक्ष्मतर होता जाता है। और एक ऐसा भी समय आता है जब उसकी अनुभूति नहीं होती। जब ऐसा हो तो साधक को उठ कर, अपनी आसनी झाड़कर चले नहीं जाना चाहिए। "क्या मुझे अपने अचार्य से पूछना चाहिये?" या "क्या मेरे ध्यान का आलम्बन लुप्त हो गया है?" ऐसा सोच कर उसे उठ जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उठ जाने से या अपने आसन की मुद्रा भंग कर देने से, उसे अपने ध्यान की विषय वस्तु अर्थात कर्मस्थान को पुन: प्रारंभ करना होगा। अत: उसे बैठे रहना चाहिये तथा श्वास की अनुभूति की जगह श्वास के स्थान की अनुभूति स्थापित करनी चाहिए।'

जब सयाजी ऊबा ख़ीं ने आनापान ध्यान की बात की थी तो उन्होंने बताया था कि यह अत्यंत सूक्ष्म, अत्यंत गहन, एवं अत्यंत कठिन है। यह उन्हीं के लिये है जिनमें प्रचुर पारमी हो, और यह तथ्य कि आप यहाँ इसकी साधना कर रहे हैं, इससे यह इंगित होता है कि आप में भी

पर्याप्त पारमी है । पारमी का अर्थ है परिपूर्णता । आज हम जहां भी हैं वह हमारे अतीत के कर्मों का परिणाम है । भगवान बुद्ध ने बताया है कि मनुष्य जीवन प्राप्त करना अविश्वसनीय रूप से अत्यंत कठिन है । जैसे किसी सागर में एक अंधा कछुआ तैर रहा हो, तथा उसी सागर में कहीं बीच में छेद वाला एक रबर का चिह्न, याने बड़ी गेंद जैसा तरेरी या प्लव भी तैर रहा हो; तो तैरते तैरते उस कछुए के सिर का उस तरेरी के छेद में होकर ऊपर आ जाने की जितनी कम संभावना है, उतनी ही कम संभावना हमारी मनुष्य योनि में पुनर्जन्म प्राप्त करने की है । और ऐसे समय में, जब भगवान बुद्ध की शिक्षा भी उपलब्ध हो, अर्थात बुद्ध शासनकाल में, जीवन प्राप्त करने की संभावना, और भी कम है ।

किसी व्यक्ति की ध्यान में प्रगति तेज या धीमी गति से होगी, यह उसने कितनी तैयारी की है, उस पर निर्भर करता है । जब सयाजी ऊ बा ख़ीं पहली बार विपस्सना सीखने गये, तो उन्होंने प्रशिक्षण के लिये अनुरोध किया और उन्हें आनापान ध्यान के विषय में समझाया गया । उन्होंने प्रयास किया और तत्काल उन्हें प्रकाश दिखना प्रारंभ हो गया । जब उन्होंने अपना पहला पूरा विपस्सना शिविर किया था, तो उन्हें दूसरे दिन ही विपस्सना दे दी गयी थी । उनकी प्रगति इतनी तीव्र थी कि उन्हें कई दिनों तक आनापान करने की आवश्यकता नहीं पड़ी । माँ सयामा जी ने भी जब पहली बार आनापान का प्रयास किया तो उन्हें प्रकाश दिखाई दिया । उनका यह पहला प्रयास केवल दस मिनट या उसके आसपास का था, वह भी एक अनौपचारिक तरीके का ।

परंतु, हम सभी उतनी शीघ्र प्रगति नहीं कर सकते । अत: जो अनुभव हमें न हुए हों, जब कुछ ऐसे अनुभवों का वर्णन हो, तो हमें हतोत्साहित नहीं होना चाहिए ।

आनापान साधना में, आश्वास और प्रश्वास के संज्ञान के लिये, पहले आपको सोद्देश्य श्वास लेना चाहिये । इस प्रकार, श्वास का स्पर्श और अधिक स्पष्ट हो जाएगा । जब ऐसा होने लगे, तो मन को इसमें विश्राम देते हुए, अपनी स्वाभाविक गति से आते जाते आन और अपान का संज्ञान लेते रहें । जैसे जैसे आपकी श्वास हल्की और हल्की होती जाती है, पहले श्वास लंबी और छोटी होगी, क्योंकि हवा का प्रवेश और निकास तो रहेगा ही । किन्तु अन्ततोगत्वा, लंबाई घटते घटते लगभग लुप्त हो जाती है तथा आन, अपान एवं एकाग्रता का स्थान, ये तीनों नासिका के आधार ऊपरी होंठ पर एक हो जाते हैं । ऊपरी होंठ पर, इस बिंदु पर, आपको हल्की उष्णता की अनुभूति होगी जो हवा की विशेषता है । आप को अपना चित्त इसी पर एकाग्र करना चाहिये, और जब आप ऐसा करते हैं, तो आपका मन शांत हो जाएगा । इस प्रकार आपको चित्त-एकाग्रता प्राप्त होगी और फिर समाधि ।

जब ध्यान लगाते हुए चित्त एकाग्रता प्राप्त होती है तथा मन शांत हो जाता है, तो शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से शांत मन की पहली विशेषता उत्पन्न होगी। प्रथम, संतोष या प्रीति (पालि में, पीति), तब आनन्द या सुख, और उसके बाद शांत मन के लक्षण, जैसे प्रकाश, उत्पन्न होंगे। इनसे यह संकेत मिलता है कि पवित्रता की अवस्था विद्यमान है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि मन या चित्त स्वयं में शुद्ध एवं दीप्तिमान है किन्तु, लोभ, द्वेष और अज्ञान की अशुद्ध शक्तियों के अतिक्रमण से ये गुण छिप जाते हैं। जैसे जैसे आप ध्यान लगाते हैं, वैसे वैसे आप थोड़ा थोड़ा लोभ, घृणा, और अज्ञानता की शक्तियों को मन से निकालते हैं तथा मन को शांत करते हैं। जैसा कि हमने देखा, विशुद्धिमार्ग में यह लिखा है कि आनापान की साधना कर रहे भिक्खु को बिना आश्वास एवं प्रश्वास, दोनो के संज्ञान के, नाक के आधार पर संपर्क बिंदु को नहीं तलाशना चाहिए। उसे सभी तीनों बातों का पता होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, ग्रंथों में लिखा है कि भिक्खु को जागरूकता या सति रूपी लगाम के साथ तथा विवेक या पञ्ञा रूपी कोड़े के साथ, स्पर्श बिन्दु को ढूंढना एवं ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

आप पायेंगे कि कुछ समय के बाद, एक बिंदु पर स्वाभाविक गति से आने और जाने वाली हवा का प्राकृतिक लक्षण बहुत स्पष्ट हो जाएगा, तथा आप को इस पर पूरा ध्यान देना चाहिये जिससे कि यह लुप्त न हो जाय। तथापि, यह कम होगा और अंत में लुप्त हो जायेगा। जब यह लुप्त हो जाय, तो आपको सोद्देश्य श्वास लेते और छोड़ते हुए इस पथ को पुनः खोल कर पूरी प्रक्रिया को दोहराना चाहिए। जो व्यक्ति इस प्रकार बारंबार कुछ समय तक अभ्यास करता है, उसके लिए पवित्रता का पहला संकेत उदय होगा। यह संकेत सभी के लिए एक जैसा नहीं हुआ करता। ग्रंथों के अनुसार, यह रूई, सितारे, या मोतियों जैसा प्रतीत हो सकता है। कुछ व्यक्तियों को यह धुआं, बादल, मकड़ी के जाल, फूलों की सजावट, चाँद, या सूर्य के समान लग सकता है। संभवतः यह एक प्रकाश की चकाचौंध, या ऊषा की तरह प्रकट हो। किन्तु यह केवल इसलिये नहीं प्रकट होगा कि आप ऐसा चाहते हैं। यह आपकी इच्छा करने या प्रार्थना करने से नहीं प्रकट होता। यह आपको स्मरण रखना चाहिए कि जैसे लोग अपनी अपनी उचित जीविकाओं में कार्यरत रह कर धन अर्जित करते हैं, उसी प्रकार, आप को भी यह संकेत प्राप्त करने के लिए समुचित रूप से कार्यरत रहना होगा।

यदि आप के मन में इस संकेत के उदय होने की इच्छा हो, तो ऐसा नहीं होगा, क्योंकि आपका मन इच्छा या लोभ से मुक्त नहीं होगा। यह संकेत तभी उत्पन्न होता है जब व्यक्ति इच्छा से मुक्त होता है और जब तक आसक्ति प्रबल है, यह नहीं उत्पन्न होगा।

जैसे ही आप नाक के आधार पर, आश्वास और प्रश्वास पर, पूरी जागरूकता के साथ ध्यान केंद्रित करते हैं, तो आपका मन लोभ, घृणा एवं अज्ञानता से मुक्त हो जाता है, और इस मनोदशा को समाधि कहा जाता है। जिस क्षण ही आपको आभास हो कि आपकी इस 'एक में तीन' की जागरूकता खो गई है, तो आप को जानबूझकर श्वास लेते और छोड़ते हुए, इस पथ को पुनः खोलना चाहिए। जैसे ही आप इस पथ को पुनः प्राप्त करते हैं, आपकी जागरूकता फिर से पैदा होगी, और उसके बाद गायब हो जायेगी; क्योंकि विचार निश्चित रूप से उठेंगे। यह जागरूकता, जिसके लिए आप इतना संघर्ष कर रहे हैं, वह अत्यन्त मूल्यवान है, और कई लोग इसी के आधार पर निब्बान प्राप्त कर चुके हैं।

संदर्भ सूची

[1]*The Middle Length Sayings*, III 52–57.
[2]*The Middle Length Sayings*, III 121–129.
[3]*The Gradual Sayings*, II 143.
[4]Anguttara-nikaya II 143 (*The Gradual Sayings* II 146f.).
[5]*The Path of Purification*, Chap. VIII, ¶¶ 206ff.

तृतीय दिवस; प्रात: प्रवचन

श्रेष्ठतम लक्ष्य

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति ।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ।।

धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है (सब दानों में श्रेष्ठ है) । धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है (सब रसों में श्रेष्ठ है) । धर्म में रमण करना सभी रमण-सुखों को जीत लेता है (सब रतियों में श्रेष्ठ है) । तृष्णा का क्षय सब दु:खों को जीत लेता है (अर्थात सबसे श्रेष्ठ है) ।

--धम्मपद, गा० ३५४

जेतवन में रहते हुए, बुद्ध ने यह प्रवचन तैंतीस देवताओं के राज्य के महाराजा शक्र (पालि में, सक्क अर्थात ईन्द्र) को दिया था ।[१] इन देवताओं की एक सभा हुई थी जिसमें चार प्रश्न उठाए गए :- 'उपहारों में कौन सा उपहार सबसे उत्तम है? स्वादों में कौन सा स्वाद सबसे उत्तम है? सबसे बड़ा आनन्द कौन सा है? तृष्णा के विनाश को क्यों अन्य सभी बातों से सर्वोच्च होने के लिए कहा गया है?' देवताओं में से कोई भी इन प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम नहीं था । बारह वर्षों तक वे दस हजार चक्रवालों (विश्व तंत्रों) में प्रत्येक स्थान पर इनके उत्तर की तलाश करते रहे । अंत में वे चतुर्महाराजिक देवताओं के राज्य में पहुंचे । ये चतुर्महाराजा चारों दिशाओं (उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम) के संरक्षक हैं । जब उन्होंने ये प्रश्न सुने तो सुझाव दिया कि देवताओं के राजा सक्क को इनका उत्तर पता होगा । किन्तु, जब उन्होंने सक्क से संपर्क किया तो उन्होंने कहा, 'मित्रों, केवल बुद्ध ही इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं । इस समय बुद्ध कहां रह रहे हैं?' उन्होंने सक्क को बताया कि बुद्ध जेतवन में रह रहे थे । अत: वे बुद्ध से पूछने गये । सक्क ने सभी चारों प्रश्नों को बुद्ध के समक्ष रखा और बुद्ध ने उत्तर दिया, 'महाराज आपने ठीक कहा है, मैंने सभी पारमिताओं को पूरा किया, जिनकी पराकाष्ठा पांच महान उपहारों को देने में हुई, और मुझे सर्वज्ञता प्राप्त हुई, जिससे कि मैं इस प्रकार के संदेहों का समाधान कर सकूं । उत्तर यह है :-सभी उपहारों में परम सत्य, अर्थात धम्म का उपहार सर्वोच्च है । धम्म का स्वाद सभी स्वादों में सर्वोच्च है । धम्म का आनन्द सभी आनन्दों मे सर्वश्रेष्ठ है । और तृष्णा के विनाश द्वारा ही मनुष्य पूर्ण जागृति, अर्हत्व प्राप्त करता है । अत:, यह अन्य सभी बातों में सर्वश्रेष्ठ है ' और बुद्ध ने वह गाथा घोषित की, जिसे हमने इस प्रवचन के प्रारंभ में उद्धृत किया है ।

यह संसार कारण-कार्य विधान पर आधारित है । प्रत्येक परिणाम के पीछे कोई न कोई कारण होता है । यदि हम अच्छे कर्म करते हैं, तो हमें अच्छा परिणाम मिलेगा । यदि हम बुरे कर्म

करते हैं, तो हमें कष्ट झेलना होगा। यदि ऐसा संभव हो कि हम सदैव अच्छे ही कर्म करें तो हमें कष्ट नहीं उठाना होगा। कुछ ऐसे अच्छे कार्य हैं जिनके करने से अपार सांसारिक सुख प्राप्त हो सकता है। यदि हम एक पक्षी को भोजन दें, तो हमें अपार लाभ मिलेगा। यदि हम एक मनुष्य को भोजन दें, तो हमें और भी अधिक लाभ मिलेगा। जिसको हम दान दे रहे हैं, विशुद्धि में जितना ही अधिक वह व्यक्ति विकसित होगा, हमें उसका उतना अधिक प्रतिफल मिलेगा। ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं जिन्होंने किसी प्रत्येक-बुद्ध (पालि में, पच्चेक बुद्ध) को, किसी प्रशिक्षक बुद्ध को, या उनके प्रमुख शिष्यों को चीवर दान दिया। लोगों ने भिक्खुओं को भोजन, विहार, तथा औषधियों का महान दान दिया है। इस प्रकार के दान से हमें कितना लाभ मिलता है, इसकी कल्पना भी हमारे लिए असंभव है।

किन्तु इस गाथा में, हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध द्वारा परम सत्य, अर्थात धम्म के विषय में सिखाया गया चार पंक्तियों का एक ही छंद, इन सभी अन्य उपहारों में असीम रूप से अधिकतम मूल्यवान है। ऐसा इसलिये है कि धम्म के माध्यम से हम सांसारिक सुखों के भी ऊपर जा सकते हैं। इस अनुबंधित संसार में हम कितने ही सुखी क्यों न हों, तथा कितने समय तक सुखी क्यों न रहें, अंततः उस सुख का अंत हो जाएगा। अंततोगत्वा हमें दुःख भोगना पड़ेगा। केवल बुद्ध धम्म के माध्यम से ही इस दुःख की समाप्ति हो सकती है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धम्म का स्वाद अन्य सभी स्वादों में श्रेष्ठतम क्यों है। इसके अंतर्गत जागृति के वे सैंतीस घटक भी सम्मिलित हैं, जिनसे निब्बान प्राप्त होता है, तथा निब्बान इस अनुबंधित लोक से परे, अननुबंधित एवं दुःखरहित है। तथा जितना अधिक हम धम्म के स्वाद का आनन्द लेते हैं, उतना ही अधिक यह स्वादिष्ट होता जाता है, जबकि समय के साथ अन्य सांसारिक स्वाद बासी पड़ने लगते हैं।

धम्म का आनन्द सभी आनन्दों में श्रेष्ठ है, क्योंकि जब हम उसमें आनन्दित होते हैं, तो दुःख से मुक्ति के लिये परिश्रम करने की प्रेरणा भी मिलती है। अंत में, तृष्णा का विनाश दुःख का वास्तविक अंत है। लक्ष्य तक अर्थात पूर्ण जागृति, या अर्हत्व पद तक पहुंचने की यही वास्तविकता है। और यह किसी भी अन्य वस्तु से महानतर है।

जब भगवान बुद्ध ने देवताओं को धम्म शिक्षा देनी पूरी की, तो सक्क ने उनको नमन कर उनसे अनुरोध किया, 'भन्ते! चूंकि धम्म दान इतना बहुमूल्य है, क्यों न आप इस दान के पुण्य को हम सभी में बांटते? भविष्य में आप जब भी भिक्खु समुदाय को धम्म दान दें, तो उसके पुण्य को हममें भी बांटे।' अतः बुद्ध ने भिक्खु समुदाय को एक साथ बुलाया और उन्हें बताया, 'भिक्खुओं,

आज से अब जब भी किसी विशेष अवसर पर कोई प्रवचन हो, या किसी साधारण अवसर पर प्रवचन हो, अथवा अनुमोदन के शब्दों का पाठ ही हो, तो आपको चाहिये कि उससे अर्जित पुण्य को आप सभी प्राणियों में बांटें।

अत: इसी कारण, हम प्रवचन या ध्यान साधना के पश्चात उससे अर्जित पुण्य को सब में बांटते हैं, क्योंकि ध्यान भी धम्म साधना है, तथा महान पुण्य के योग्य है। आप को स्मरण होगा कि, हमने अच्छे या बुरे कर्मों को करने में मन के महत्व पर जोर दिया है। कुछ योनियों में अच्छा कर्म करना अत्यंत कठिन है। किंतु दूसरों के भले कामों से आह्लाद एवं सहानुभूतिपूर्ण आनन्द संभव है। चूंकि यह एक मानसिक क्रिया है, अत: यह बहुत ही शक्तिशाली होती है। इसे वाणी द्वारा सुदृढ़ किया जा सकता है। इसीलिये जब आचार्य पुण्य बांटते हैं तो छात्र 'ठीक कहा', या 'अच्छा किया', पालि में 'साधु, साधु, साधु' कह कर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।

जोतिक[२] की कथा

किस प्रकार धम्म का स्वाद सभी स्वादों में सर्वोच्च है, इसका एक उदाहरण हमें ज्योतिक (पालि में, जोतिक) की कथा में मिलता है। जोतिक की पारमिताएं महान थीं; उन्होंने अतीत के बुद्धों को बहुत बड़े बड़े उपहार दिये थे। जब वे गौतम बुद्ध के समय पैदा हुए, तो वे अत्यंत सम्मृद्ध थे। उनकी पत्नी बहुत ही सुंदर थीं। वे बहुमूल्य हीरे जवाहरात से बने महल में रहते थे। सम्राट बिम्बिसार ने जोतिक के महल के बारे में सुना तो उनमें इस आश्चर्यजनक महल को स्वयं देखने की इच्छा हुई। सम्राट अपने बेटे, राजकुमार अजातसत्तु के साथ वहां गये। जब उन्होंने यह सारा वैभव देखा, तो अजातसत्तु में ईर्ष्या उत्पन्न हो गई तथा उन्होंने अपने पिता से कहा: 'कैसे आप एक साधारण नागरिक को राजा से बड़े वैभव में जीने के लिए अनुमति दे सकते हैं? आपको जोतिक के महल को राज्याधीन कर लेना चाहिए।' किंतु सम्राट बिम्बिसार भगवान बुद्ध के एक निष्ठावान शिष्य थे तथा उन्होंने स्वयं जागृति का पहला चरण प्राप्त कर लिया था। वे समझते थे कि ये सारा वैभव जोतिक के अतीत के पुण्य कर्मों का परिणाम था और कोई भी उनसे ले नहीं सकता।

एक दिन, जोतिक विहार में गये और उन्होंने बुद्ध को प्रवचन देते सुना। उन्होंने अपना सारा धन पीछे छोड़ कर एक भिक्खु बनने का निर्णय लिया। अत: वे मात्र चीवर एवं पात्र के साथ एक भिक्खु की तरह रहते थे, और जब उन्हें अर्हत्व प्राप्त हुआ, तो उनकी सारी पूर्व संपदा लुप्त हो गयी। एक दिन उनके कुछ साथी भिक्खुओं ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने महल या

अपनी पत्नी की कमी का अनुभव नहीं करते । जब उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया तो वे भिक्खु भगवान बुद्ध के पास गये । और उनसे बोले, 'भन्ते! इस भिक्खु ने एक झूठ बोला है'। वे यह सोच भी नहीं सकते थे कि जोतिक अपने पूर्व जीवन की कमी का अनुभव नहीं करता था । किंतु भगवान बुद्ध ने उन्हें बताया, 'भिक्खुओं! यह बिल्कुल सच है कि मेरे पुत्र को इन बातों की कोई आकांक्षा नहीं है' । अत: हम देख सकते हैं कि धम्म का स्वाद और आनन्द सर्वश्रेष्ठ, उच्चतम एवं उत्कृष्ट है ।

पांच बाधाएं या नीवरण[३]

ऐसी वस्तु जो सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट हो, उसे प्राप्त करना सरल नहीं होता । इसमें कोई संदेह नहीं है कि, जैसे जैसे आप अपनी साधना में रत होते जाते हैं, तो आप पाते हैं कि मन को प्रशिक्षित करना अत्यंत कठिन है । कठिनाइयां कई हैं, विशेष रूप से पाँच, जो बाधाओं या नीवरण शीर्षक के अंतर्गत आती हैं । वे हैं:- (१) कामच्छन्द, (२) व्यापाद अर्थात दुर्भावना, (३) स्त्यान एवं मृद्ध (पालि में, थीन मिद्ध) अर्थात शारीरिक एवं मानसिक आलस्य या अकर्मण्यता, (४) औधत्य एवं कौकृत्य (पालि में, उड्ढच्च कुक्कुच्च) अर्थात अनवस्थिता और खेद, तथा अंत में, (५) विचिकित्सा (पालि में, विचिकिच्छा) अर्थात आशंका अथवा संदेह । इन पिछले कुछ दिनों में मन को केंद्रित करने की साधना करते हुए संभवत: आप को इनमें से कुछ या सभी बाधाओं का सामना करना पड़ा है । आप के पास पहले से ही इन बाधाओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए सबसे अच्छा साधन है । आप के पास अपनी श्वास तथा नाक के नीचे वह स्थान विन्दु है, जहां आप अपना ध्यान टिका सकते हैं । जब जब आपको आभास हो कि नीवरण आ गये हैं, तो उनको विचलित करने के लिये कुछ गहरी श्वास का उपयोग कर सकते हैं ।

जब तक हम सांसारिक भोगी हैं, अर्थात जागृति के पहले चरण तक नहीं पहुंचे हैं, तब तक हम इन बाधाओं या नीवरणों को पूरी तरह से समाप्त नहीं कर सकते । किन्तु जितने समय तक मन केंद्रित होता है, वे नीवरण वहाँ नहीं होते । एक अच्छा और एक बुरा विचार दोनों एक ही समय मन में नहीं हो सकता । केवल एक ही विचार एक समय में हो सकता है । चूंकि मन इतना तीव्र है, ऐसा लग सकता है, कि दो बातें एक ही साथ हो रही हैं, किन्तु वास्तव में प्रत्येक विचार अकेला ही होता है । इस प्रकार, नीवरण के संज्ञान की कृया ही, उस क्षण के लिये नीवरण का उन्मूलन कर देती है । नीवरण को जानने या पहचानने वाला विचार, नीवरण के उपरान्त आता है । यह हमारे लिये अपने मन को वापस खींच कर ध्यान केंद्रित करने का अत्यंत ही उपयोगी पल

है। बजाय इसके कि, हम उदास या निराश हों कि, हमने अपनी एकाग्रता खो दी है, हमें आनन्दित होना चाहिए कि हमें उसका पता चल गया।

अत: हम अस्थायी रूप से नीवरणों का उन्मूलन कर सकते हैं, यह समझते हुए कि उनका अंतिम और पूर्ण उन्मूलन संपूर्ण जागृति प्राप्त करने के माध्यम से ही होगा। किंतु हम जागृति के पहले चरण से ही उनका समापन प्रारंभ कर देते हैं। सोतापन्न होने पर कोई संदेह अवशेष नहीं रहता। उसे संक्षिप्त समय के लिये ही सही, परम सत्य का अनुभव होता है, तथा उसमें जागृति के लिए अग्रणी पथ के विषय में, एवं जागृति तक पहुँचने की संभावना के विषय में कोई संदेह नहीं रहता। जब कोई जागृति के तीसरे चरण (अनागामी पद) तक पहुंच जाता है, तो सभी कामुक इच्छाओं एवं दुर्भावनाओं का नाश हो जाता है। केवल अंत में ही, जब कोई अर्हत्व प्राप्त करता है, तब आलस्य, अकर्मण्यता, व्याकुलता तथा खेद का समापन होता है।

पालि ग्रंथों में पाँच नीवरणों को चित्त को दूषित करने वाले तथा अंतर्दृष्टि को अयोग्य बनाने वाले विघ्न बताया गया है। यदि साधक अपने नीवरणों पर विजय नहीं प्राप्त करता, तो उसकी अंतर्दृष्टि में सुदृढ़ता एवं शक्ति का अभाव होगा, तथा उसके लिये अपनी भलाई, दूसरों की भलाई, और दोनों की भलाई जान पाना असंभव हो जाएगा। उसके लिये अतिमानवीय विशिष्ट उपलब्धि की अवस्था प्राप्त कर पाना, या मुक्ति पाने के लिए ज्ञान और दृष्टि का अनुभव कर पाने में सक्षम हो पाना, नहीं हो सकेगा। यदि वह पाँचों नीवरणों पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो उसकी अंतर्दृष्टि शक्तिशाली होगी, तथा वह अपनी, दूसरों की, एवं दोनों की भलाई के लिए क्या अच्छा है, उसे पहचानने में सक्षम हो जाएगा। वह मुक्ति प्राप्त करने के योग्य हो जाएगा।

कामेच्छा ऐसे पानी की तरह है जिसमें कई रंगों का मिश्रण हो। दूसरे शब्दों में, जो हमें सुंदर प्रतीत होता है, हम उससे आकर्षित होते हैं। दुर्भावना या द्वेष उबलते पानी जैसा है। जब हम घृणा तथा द्वेष से भरे होते हैं, तो ऊष्णता होती है और हम उत्तेजित होते हैं। शिथिलता, आलस्य, अकर्मण्यता एवं तन्द्रा की अनुभूति काई से आच्छादित पानी की तरह है। ऐसा लगता है, जैसे हम अवरुद्ध हो गये हों। अनवस्थितता या व्याकुलता एवं खेद, तेज हवा की मार से आन्दोलित पानी जैसे है। यहाँ खेद का अर्थ है, बुरे कर्मों को करने के पश्चात अथवा अच्छे कर्मों की उपेक्षा करने के कारण असंतोष या पश्चात्ताप की अनुभुति। इस व्याकुलता तथा पश्चाताप के साथ, हम शांत नहीं बैठ सकते। अंत में, संदेह पंकिल, मैले पानी की तरह है। जब हम में संदेह होता है, तो हम स्पष्ट रूप से देख नहीं पाते। हम पाते हैं कि हम ढुलमुल हो गये हैं, और कोई निर्णय नहीं ले पाते। हमें पता नहीं कि 'क्या मुझे यह करना चाहिए?' या फिर 'क्या मुझे वह करना चाहिए?' ऐसा लगता है कि जैसे हम दो में विभाजित हो गये हों। और जिस विषय पर

हमें संदेह है, उसके बारे में हम जितना ही अधिक सोचते हैं, समस्या उतनी ही कठिन होती जाती है। हम अब कोई भी प्रयास नहीं करना चाहते। अब हम यह सुनिश्चित नहीं कर पाते कि क्या अच्छा कार्य है तथा क्या बुरा, और हमें क्या करना चाहिए। वस्तुओं के विषय में हम अब उनके सही मूल्य के अनुसार निर्णय नहीं ले पाते। हमें बुद्ध के विषय में, आचार्य के विषय में, सत्य के विषय में तथा उनके विषय में जो बुद्ध की शिक्षा को जीवित रखे हुए हैं, उन सब के विषय में संदेह होता है। हमें कारणों एवं उनके परिणाम के बारे में संदेह होता है। संक्षेप में, हमारी दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है।

तो एक साधक पांचों नीवरणों से छुटकारा कैसे पा सकता है? पालि ग्रंथ हमें बताते हैं, "इस संबंध में, साधक जिसमें कामेच्छा, द्वेष, आलस्य एवं अकर्मण्यता, व्याकुलता एवं पश्चाताप, या संदेहात्मक उलझन है, वह जानता है, 'मुझमें कामेच्छा, द्वेष, आलस्य एवं अकर्मण्यता, व्याकुलता एवं पश्चाताप, या संदेहात्मक उलझन है'। वह जानता है कि कैसे प्रत्येक नीवरण उत्पन्न होता है, तथा कैसे उसमें रहता है। वह जानता है कि उत्पन्न होने के पश्चात कैसे प्रत्येक नीवरण का उन्मूलन होता है। तथा वह यह भी जानता है कि, भविष्य में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, जब ये नीवरण उदय ही नहीं होंगे।"[४]

आनापान के साथ हम इसे अत्यंत स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। हम यहां बैठकर अपना ध्यान नाक के नीचे, एक विन्दु पर आश्वास एवं प्रश्वास पर टिकाने का प्रयास करते रहते हैं। अचानक हमारा मन कहीं और होता है। यही नीवरण की उत्पत्ति को जानना है। हमें उस विचार या भावना विशेष का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है। हमें उसके मूल में पहुंचने के लिये बचपन में, या अपने पिछले जीवन में (यदि हम अपने पिछले जीवन को भी जान सकते हैं) जाने की आवश्यकता नहीं है। मात्र यह समझ लेना पर्याप्त है, कि हमारे ध्यान केंद्रित करने के प्रयासों के बावजूद, ये नीवरण कैसे स्वत: उदय हो जाते हैं। और हम कैसे उन्हें समाप्त कर सकते हैं? कुछ सचेतन एवं साभिप्राय श्वास, और वे लुप्त। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि वे अभी भी विद्यमान हैं। जैसे कोई प्रबल इच्छा उत्पन्न हो सकती है। हम इसका संज्ञान लेते हैं, और कुछ गहरी श्वास लेते हैं। उस क्षण के लिये, संभवत: मात्र एक क्षण के लिये, हमारा चित्त नीवरणों से मुक्त होता है। यदि वह नीवरण एक प्रबल नीवरण है, तो कोई उसी जैसा विचार या भाव, उसका जुड़वां, उत्पन्न हो सकता है। तो हमें पुन: साभिप्राय श्वास लेना प्रारंभ करने की आवश्यकता होगी। किंतु हमें आश्वस्त होना चाहिये कि, इस प्रकार हम नीवरणों की पूरी शृंखला को नष्ट कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि एक ही नीवरण बारंबार वापस आ रहा हो।

और हम कैसे इन नीवरणों के उत्पन्न होने से बच सकते हैं? यदि हम पहले दो कदमों को

स्पष्ट रूप से समझ जाते हैं, तो अंतिम चरण, सति भी स्पष्ट हो जाएगा। हमने कई बार कारण-कार्य विधान का उल्लेख किया है। जिस प्रकार हमारा वर्तमान हमारे अतीत के कर्मों से अनुबंधित है, उसी प्रकार हमारा भविष्य भी हमारे वर्तमान के कर्मों से अनुबंधित होता है। यहीं-और-इसी-क्षण की समुचित एकाग्रता की साधना ही, भविष्य में पाँचों नीवरणों के उत्पन्न होने से बचने का एक मात्र मार्ग है।

यदि हम वास्तव में दुख का अंत करना चाहते हैं, तो हमें इसका एहसास होगा कि यह काम कितना महत्वपूर्ण है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि ऐसा व्यक्ति जिसका हृदय निरंकुश लोलुपता या कामेच्छा से अभिभूत है वह ऐसे कार्य करेगा जिन्हें उसे नहीं करना चाहिए, तथा जिन कार्यों को उसे करना चाहिए उनकी वह उपेक्षा करेगा। इस कारण उसकी प्रतिष्ठा और उसकी खुशी बर्बाद हो जाएगी। ऐसा व्यक्ति जिसका हृदय दुर्भावना, आलस्य एवं अकर्मण्यता, व्याकुलता एवं पश्चाताप तथा संदेहात्मक उलझन से अभिभूत है वह ऐसे कार्य करेगा जिन्हें उसे नहीं करना चाहिए, तथा जिन कार्यों को उसे करना चाहिए उनकी वह उपेक्षा करेगा। इस कारण उसकी प्रतिष्ठा और उसका सुख नष्ट हो जाएगा।

किंतु एक आर्य शिष्य जिसने मन के इन पांच दोषों को देखा है, वह उनका त्याग कर देगा। उसे माना जायेगा कि वह एक महान ज्ञानी, प्रचुर विवेकवान, स्पष्ट द्रष्टा, तथा अच्छी तरह से प्रज्ञा संपन्न है।

अन्य स्थान पर भगवान बुद्ध ने कहा है कि नीवरण उन पांच अशुद्धियों की तरह हैं जिनके कारण स्वर्ण अपना लचीलापन खो देता है और काम करने लायक नहीं रहता; उसमें दमक का अभाव हो जाता है; वह भंगुर हो जाता है तथा उसे गढ़ना कठिन हो जाता है। स्वर्ण की ये पांच अशुद्धियां वे धातुएं हैं जो उसमें मिली होती हैं, अर्थात लोहा, तांबा, टिन, सीसा, तथा चांदी। किंतु यदि इन हीन धातुओं को स्वर्ण से अलग कर दें, तो वह लचीला, काम करने योग्य, दमकीला एवं दृढ़ हो जाता है, तथा उससे कोई भी आभूषण गढ़ा जा सकता है। इसी प्रकार जब मन में पाँच अशुद्धियां या नीवरण होते हैं तो वह लचीला तथा काम करने योग्य नहीं रहता, उसमें दमकीली स्पष्टता तथा दृढ़ता का अभाव हो जाता है, वह दूषणों के उन्मूलन के लिये अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता। किंतु जब मन पाँच नीवरणों से मुक्त होता है, तो वह लचीला तथा काम करने योग्य होगा, उसमें दमकीली स्पष्टता तथा दृढ़ता आयेगी, तथा वह दूषणों के उन्मूलन के लिये अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करेगा। मन को किसी भी मनोदशा की ओर, जिसे उच्च मानसिक संकायों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, निर्देशित करना संभव हो जाएगा, तथा

यदि अन्य शर्तें पूरी हो जांय, तो व्यक्ति में उच्च अवस्था प्राप्त करने की क्षमता उपलब्ध हो जायेगी ।

अब आप अपने आप से कह रहे होंगे, 'एक नीवरण और है, इन सारी पीड़ाओं का क्या! यदि कोई पीड़ा न होती तो मैं ध्यान केंद्रित करने में सक्षम होता' । किंतु यह स्मरण रहे कि हमने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि, मन कितना महत्वपूर्ण है, तथा आपका मानसिक दृष्टिकोण कितना महत्वपूर्ण है । यदि आप पाँचों नीवरणों को देखें, तो पायेंगे कि वे मन एवं भावनाओं में होते हैं । समस्या दर्द नहीं है, किंतु उस पीड़ा के प्रति हमारा दृष्टिकोण है । पीड़ा के कारण, हमारे मन में द्वेष उत्पन्न होता है, या हम व्याकुल हो जाते हैं ।

हमें स्मरण रहे कि हम कितने भाग्यशाली हैं जो यह साधना कर रहे हैं । अनेक वर्षों से, अनेक जन्मों से, हमारा मन इन नीवरणों के प्रभुत्व में रहा है । यदि हम एक क्षण के लिये भी ध्यान को अच्छी तरह केंद्रित कर सकें, जिससे मन शांत एवं स्थिर हो जाय, तो यह हमारे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तथा महान लाभकारी होगा । तथा हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि एक अत्यंत महत्वपूर्ण काल में हमारा इस शिक्षा से संपर्क हुआ है ।

वे जो आर्य हो रहे हैं

एक अवसर पर आदरणीय वेबू सयादॉ यंगॉन के इंटरनेशनल मेडिटेशन सेंटर अर्थात अंतर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र पर आये । उन्होंने सयाजी ऊबा ख़ीं से पूछा, 'जिस प्रकार बुद्ध के समय होते थे, क्या वैसे ही आज भी प्राणी जागृत अर्थात आर्य नहीं हो रहे हैं? सयाजी ऊबा ख़ीं ने हाँ में उत्तर दिया । फिर वेबू सयादॉ ने उनसे पूछा 'अधिकांश संख्या में आर्य कौन हो रहे हैं; मनुष्य या देवता एवं ब्रह्मा?' सयाजी ऊबा ख़ीं ने उत्तर दिया कि जो आर्य होते जा रहे हैं उनमें अधिकांश उच्च लोकों के देवता एवं ब्रह्मा होंगे । आप देखेंगे कि अस्सी वर्ष की आयु में भगवान बुद्ध ने अपनी मृत्यु के समय पूर्वानुमान किया था कि चार असंखेय्य तथा बीस हजार अरब प्राणी अभी भी बचे थे, जो जागृति के पहले चरण तक भी नहीं पहुंचे थे, तथा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात उन प्राणियों के लिये बुद्ध की शिक्षा पांच हजार वर्षों तक विद्यमान रहेगी । इस संख्या की कल्पना करना भी अत्यंत कठिन है । एक असंखेय्य एक के पश्चात एक-सौ चालीस शून्य का होता है ।

जो आर्य होंगे उन में से अधिकांश विमुत्ति अर्थात मुक्ति काल में होंगे । वह काल भगवान बुद्ध की मृत्यु के २५०० वर्ष पश्चात प्रारंभ होता है । यही कारण है कि सयाजी ऊबा ख़ीं ने वेबू सयादॉ के पहले प्रश्न का उत्तर सकारात्मक दिया था ।

इस बात को समझने के लिये कि अधिकतम आर्य देवता एवं ब्रह्मा क्यों होंगे, हमें विश्व की जनसंख्या पर दृष्टि डालनी होगी, जो मैं समझता हूं कि लगभग सात अरब है। मानव लोक में लोगों के एक अल्पांश मात्र की ही आर्य बनने की संभावना है।

मातिकमाता की कथा[५]

अपनी पुस्तिका 'बौद्ध धर्म है क्या' (*What Buddhism Is*) में सयाजी ऊबा ख़ीं ने कहा है, 'दूसरों के असंतुलित मन को संतुलित करने के लिये संतुलित मन की आवश्यकता है'। उन्होंने बुद्ध के शब्दों को उद्धृत किया, 'जैसे एक तीर बनाने वाला अपना वाण बिल्कुल सीधा बनाता है, उसी प्रकार एक बुद्धिमान व्यक्ति अपने चंचल एवं कंपायमान विचारों को जिनका प्रबंधन या नियंत्रण कठिन है, सीधा करता है'[६] आई एम सी या अंतर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र, यंगॉन में बर्मी शिष्यों को दिये एक प्रवचन में, सयाजी ने बुद्ध के समय की एक गृहिणी की कथा सुनाई, जो समुचित रूप से साधना करने में सक्षम थी।

एक बार साठ भिक्खु भगवान बुद्ध के पास गये और उनसे ध्यान लगाने के लिए अनुमति मांगी। बुद्ध ने उन्हें विधि सिखा दी, तथा वे अभ्यास के लिए किसी उपयुक्त निवास स्थान की तलाश के लिए चल पड़े। वे मातिकगाम नामक गांव पहुंचे तथा उसमें भिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश किया। उस गांव में मातिकमाता नामक एक धनी महिला थीं। उनके पास बहुत बड़ी भू-संपत्ति थी, तथा उन्होंने आदरपूर्वक भिक्खुओं से अनुरोध किया कि वे वहाँ रह कर अपनी साधना करें। उन्होंने भिक्खुओं के लिए एक विहार का निर्माण करवा कर उन्हें प्रस्तुत किया तथा उनके लिये भोजन प्रदान करने का भी बीड़ा उठाया।

अत:, वे भिक्खु उनके द्वारा निर्मित विहार में ठहर गये। किंतु वे आपस में इस बात पर सहमत हुए कि बेहतर ध्यान लगाने के लिये किसी भी दो भिक्खु को न तो एक साथ रहना चाहिये और न एक ही स्थान पर ध्यान लगाना चहिये। कुछ समय बाद, मातिकमाता ने भिक्खुओं से पूछा कि वे क्या कर रहे थे तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे ध्यान लगा रहे थे। फिर मातिकमाता ने उनसे पूछा कि क्यों, और जब उनको बताया गया कि ध्यान लगाने से मन शांत होता है, तो उन्हौंने पूछा कि अपने खाली समय में क्या वे भी इसका अभ्यास कर सकती हैं। भिक्खुओं ने बताया कि हां वे भी इसका अभ्यास कर सकती हैं, तथा तदनुसार उसकी विधि भी समझाई। उन्होंने कहा कि जब उनको समाधि प्राप्त होगी तब उनका मन शांत एवं स्थिर हो जायेगा तथा अंतत: उनमें समुचित प्रज्ञा उदय होगी।

अत: उन्होंने अपने घर में एक उपयुक्त स्थान चुना, जहां वे घर के कामकाज समाप्त होने के तुरंत बाद प्रत्येक दिन रात्रि में ध्यान लगाती थीं । शीघ्र ही, उनका मन शांत हो गया तथा उनके मन में प्रीति (पालि में पीति) अर्थात संतोष, पस्सद्धि अर्थात शांति, सुख अर्थात आनंद तथा चित्त एकाग्रता या समाधि उत्पन्न हुई । जैसे जैसे उनकी सति की साधना सतत चलती रही, उनमें विपस्सना का ज्ञान बिना किसी आचार्य के मार्गदर्शन के ही उदय हुआ, तथा वे सोतापन्न, अर्थात निब्बान की धारा में प्रवेश करने वाली, बन गईं । बाद में, वे एक अनागामी बन गयीं, अर्थात प्रथम तीन मार्ग एवं फल पदों की अवस्था उपलब्ध कर लीं । झानावस्था या समाधि के माध्यम से उनमें दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रवण, पिछले जन्मों के विषय में तथा अन्य लोगों के विचार जान लेने की क्षमता भी प्राप्त हुई । आप ध्यान देंगे कि किसी को भी उनको धम्म के विषय पर व्याख्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ी । उन्होंने बस वही किया जो उन्हें बताया गया था ।

अन्य लोगों के विचारों को पढ़ने की क्षमता के साथ, यह सोचते हुए कि, भिक्खुओं ने निश्चित रूप से और भी अधिक प्रगति की होगी, उन्होंने भिक्खुओं की स्थिति जाननी चाही । किंतु यह जानकर कि वे अभी सोतापन्न भी नहीं हो पाये थे, उन्हें आश्चर्य हुआ, तथा उनकी प्रगति के अभाव के कारण का पता लगाया । उन्हें पता चला कि वे भिक्खु अपने सुखद गृहस्थ जीवन से संन्यास ले चुके थे, तथा भिक्खु जीवन के तमाम अभावों से उनको इतनी चिढ़ हो रही थी, कि उनका ध्यान भंग हो जा रहा था । फिर उन्होंने विचार किया, 'क्या मेरे इन बेटों में अर्हत्व प्राप्ति की प्रवृत्ति है?' तो उन्होंने देखा कि 'हां, उनमें है' । फिर उन्होंने सोचा कि 'क्या उनके आवास उपयुक्त हैं या नहीं?' तत्काल उन्हें पता चला कि हां, हैं । उसके बाद उन्होंने सोचा, 'क्या उनके साथी उचित हैं या नहीं?" तत्काल उन्हें पता चला कि हां, हैं । अंत में उन्होंने इस प्रश्न पर विचार किया, 'क्या उन्हें समुचित भोजन प्राप्त हो रहा है या नहीं?' तो पता चला कि 'उन्हें उचित भोजन नहीं मिलता' ।

उसके बाद वे भिक्खुओं को विभिन्न प्रकार की खीर तथा अनेक स्वादों से भरपूर कड़े एवं मृदुल आहार प्रदान करने लगीं । इस प्रकार पौष्टिक भोजन की प्राप्ति के परिणाम स्वरूप, उनके मन शांत हो गये, तथा मन की शांति के फलस्वरूप, उनकी अंतर्दृष्टि विकसित हुई, एवं अर्हत्व प्राप्त हुआ । सायंकाल में, एक भिक्खु अर्हत हो गये तथा साथ में ही अन्य लोगों के विचारों को जानने की क्षमता भी प्राप्त की । उन्होंने दूसरों की प्रगति के विषय में जानना चाहा, तो उन्हें पता चला कि वे भी अर्हत हो गये थे । वास्तव में, मातिकमाता की दूसरों के विचारों को जान लेने की क्षमता, तथा उनकी इच्छाओं को पूरा करने के कारण, वे सभी एक साथ अर्हत हो गये ।

साधना एवं अध्यापन में मां सयामा जी का शुभारंभ

हम बड़े सौभाग्यशाली हैं, कि सयाजी ऊबा ख़ीं जैसे प्रतिष्ठित आचार्य की परंपरा के संपर्क में आये हैं। तथा हम इस कारण भी सौभाग्यशाली हैं, कि मां सयामा जी जैसी व्यक्ति हमारी मार पर विजय प्राप्त कर, हमारी सही तरीके से ध्यान लगाने में सहायता कर सकती हैं। सयाजी ऊ बा ख़ीं के जीवनकाल के दौरान, अप्रैल १९५१ में, जब सयाजी ऊ चित तिन ने पहली बार सयाजी ऊबा ख़ीं के साथ ध्यान लगाना प्रारंभ किया, तो वे सायं अपने घर, अपनी पत्नी, अर्थात माँ सयामा जी तथा अपनी चार वर्षीय बेटी के पास आते। उनकी बेटी खेलना चाहती थी तथा उनकी पत्नी उनका कुछ समय। किंतु वे अपनी साधना बनाये रखना चाहते थे। अत: उन्होंने माँ सयामा जी से कहा, 'आप तो सयाजी ऊबा ख़ीं से मिल ही चुकी हैं। आप उन्हें अपना आचार्य मान सकती हैं, तथा मैं आप को ध्यान लगाना समझाऊंगा'। फिर सयाजी ऊचित तिन ने औपचारिकताओं के पश्चात उन्हें तथा अपनी बेटी को आनापान करना समझाया। उनकी बेटी आनापान करते करते उनके बगल में लेट गयीं तथा कुछ ही मिनटों के बाद सो गयीं। तो आप देख सकते हैं कि आनापान अनिद्रा के लिए भी अच्छा है। माँ सयामा जी ने, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, पहले ही दिन, लगभग पहले दस मिनट के भीतर ही प्रकाश देखा। दूसरे दिन सितारे दिखे, तथा तीसरे दिन एक बिंब देखा जैसे चाँद हो। चौथे दिन, सयाजी ऊ चित तिन ने उन्हें विपस्सना दी, तथा वे पूरे शरीर में संवेदनाओं का अनुभव करने लगीं।

किंतु सयाजी ऊ चित तिन ने अपनी संवेदनाओं का संज्ञान खो दिया। सयाजी ऊबा ख़ीं बहुधा यह कहानी बताते थे कि कैसे सया जी ऊचित तिन तब अपनी आँखों में आँसू के साथ उनके कार्यालय में आये थे। तो सयाजी ऊबा ख़ीं हँसे, और उन खतरों की ओर इशारा किया जो बिना आज्ञा के शिक्षा पारित करने के प्रयास से हो सकते हैं। उन्होंने सयाजी ऊ चित तिन की साधना के साथ प्रयास किया जिससे संवेदनाओं का संज्ञान पुन: जग सके।

माँ सयामा जी ने लगभग दो वर्षों तक अपने घर पर ही साधना की। तब तक, १९५२ में, यंगॉन में इंटरनेशनल मेडिटेशन सेंटर या अंतर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र की स्थापना हो गयी थी। मध्य अप्रैल १९५३ में, बर्मा में जल महोत्सव की छुट्टियों के दौरान, सयाजी ऊ ऊबा ख़ीं के कार्यालय में काम करने वाले व्यक्तियों के परिवारों के लिए आई एम सी-यंगॉन में पहला शिविर लगा। सयामा जी ने उसमें चालीस अन्य छात्रों के साथ ध्यान साधना की। उस पहले कोर्स के बाद, लगभग एक महीने तक वे वहां साधना करती रहीं, तथा उस एक महीने के भीतर सयाजी ऊबा

ख़ीं ने साधना की तकनीक को उन्हें व्यापक रूप से सिखाया। मई १९५३ से प्रारंभ कर माँ सयामा जी ने इसी कार्य के लक्ष्य के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। वे तथा सयाजी ऊचित तिन सया जी ऊ बा ख़ीं के साथ मई १९५३ से लेकर १९ जनवरी १९७१ अर्थात सया जी ऊबा ख़ीं की मृत्यु के समय तक थे। माँ सयामा जी ने उस पूरी अवधि में सयाजी ऊबा ख़ीं का हाथ बंटाया। उन्होंने केंद्र पर आने वाले सभी छात्रों, बर्मी तथा विदेशी, दोनों की सहायता की। उनमें से अनेक ने अपने ध्यान में उल्लेखनीय प्रगति की। वे सया जी ऊबा ख़ीं के साथ, जब जब वे छात्रों का मार्गदर्शन करते थे, निरंतर रहती थीं।

जब वेबू सयादॉ ने जून १९५३ में उस केन्द्र का एक सात-दिवसीय दौरा किया, तो बर्मा के एक सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी भी वहां आये। वेबू सयादॉ के तीन साधना केन्द्र थे, अर्थात मंडले के ४० मील दक्षिण में चाउषे, मंडले के ६० मील उत्तर में श्वेबो, तथा उनके जन्मस्थान इंजिंग्बीं टोया में एक और। तो उन्होंने पहली बार इन तीन केन्द्रों के बाहर यहां अपना दौरा किया था। सामान्यत: प्रत्येक वर्ष वे लगभग चार महीने, एक एक कर उन तीनों स्थानों में बिताते थे। १९५३ में उनकी यंगॉन की यात्रा के पश्चात, अनेक शिष्य, जैसे यह पूर्व सरकारी अधिकारी, चाहने लगे कि वे प्रति वर्ष निचले बर्मा में आयें। अत: वे कई शहरों और कस्बों में आकर आशीर्वाद तथा धर्मोपदेश देते, जिससे अनेक लोग लाभान्वित होते।

जब उन पूर्व सरकारी अधिकारी ने १९५३ में सयाजी ऊबा ख़ीं के अंतर्गत अपनी साधना आरंभ की, तो उनकी ध्यान में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। जब सयाजी ऊबा ख़ीं अपने कार्यालय जाते थे, तब वे अधिकारी माँ सयामा जी की देखरेख में रहते थे, जिनसे उनको अपनी प्रगति करने में बहुत सहायता मिली। उन्होंने सयाजी ऊबा ख़ीं से कहा, 'आपकी शिष्या कोई साधारण शिष्या नहीं है'। तथा उन्होंने उनका नाम सयामा अर्थात महिला आचार्य रख दिया। उस दिन से वे सयामा के नाम से जानी जाने लगीं तथा सयाजी ऊबा ख़ीं ने इसका अनुमोदन किया। अन्य अनेक लोग भी केंद्र पर आए और साधना लाभ का आनंद लिया। उनमें से एक वृद्ध व्यक्ति पालि के विद्वान थे, जिन्होंने उन्हें माँ कहकर संबोधित किया। अत: वे माँ सयामा के नाम से जानी जाने लगीं। १९७१ में सयाजी ऊबा ख़ीं के निधन के पश्चात अनेक पश्चिमी देशों के छात्र भी केंद्र पर आए, तथा वे सब भी उनको माँ सयामा कह कर बुलाते थे। समय के साथ, आदर के लिये 'जी' जोड़ दिया गया, तथा आज हम उन्हें 'माँ सयामा जी' कहकर संबोधित करते हैं।

संदर्भ सूची

[1]*Buddhist Legends*, III 236–239.

[2]*Buddhist Legends*, III 313–331.

[3]See Nyanaponika Thera, “The Five Mental Hindrances”, *The Wheel*, No. 26.

[4]Satipatthana Sutta (Majjhima-nikaya, No. 10, I 60]); *Middle Length Sayings*, I 77f.

[5]*Buddhist Legends*, II 1–7.

[6]Dhammapada, v. 33

तृतीय दिवस, सायं प्रवचन

इन्द्रियों पर नियंत्रण का महत्व, महाकाल तथा चुल्लकाल [1]

सुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु असंवुतं । भोजनम्हि चामत्तञ्ञुं, कुसीतं हीनवीरियं ।

तं वे पसहति मारो, वातो रुक्खंव दुब्बलं ।।

अच्छी लगने वाली चीजों को शुभ ही शुभ देखते विहार करने वाले, इन्द्रियों में असंयत, भोजन की मात्रा के अजानकार, आलसी और उद्योगहीन को मार ऐसे सताता है जैसे दुर्बल वृक्ष को पवन ।

असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं । भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं, सद्धं आरद्धवीरियं ।

तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलंव पब्बतं ।।

अशुभ को अशुभ जानकर साधना करने वाले, इन्द्रियों में सुसंयत, भोजन की मात्रा के जानकार, श्रद्धावान और उद्योगरत को मार उसी प्रकार नहीं डिगा सकता जैसे वायु शैल पर्वत को ।

धम्मपद, गाथा ७,८

ये पंक्तियां चुल्लकाल एवं महाकाल के संबंध में भगवान बुद्ध द्वारा दी गईं थीं । व्यापार के लिये यात्रा पर जाते हुए, इन दो भाइयों ने शिष्यों को बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए जाते हुए देखा । महाकाल ने अपने छोटे भाई से कहा, 'बैलगाड़ियों का ख्याल रखना । मैं जाकर प्रवचन सुनूंगा ।' तथा वे वहां जाकर सभा के चरम किनारे पर बैठ गये ।

भगवान बुद्ध ने महाकाल की मानसिक प्रवृत्ति के अनुकूल क्रमानुसार एक प्रवचन दिया । उन्होंने ऐन्द्रिक इच्छाओं के खतरों को विभिन्न प्रकार से बताया । ऐसा कहा जाता है कि जब बुद्ध प्रवचन देते थे, तो उनकी आवाज सभी को स्पष्ट सुनाई पड़ती थी, चाहे वे कितनी भी दूर क्यों न बैठे हों, तथा प्रत्येक व्यक्ति को लगता था कि वह प्रवचन व्यक्तिगत रूप से उसी को संबोधित किया गया था ।

महाकाल ने प्रवचन से प्रेरित होकर एक भिक्खु बन जाने का निर्णय लिया । अतः, उन्होंने अपने भाई से अनुमति मांगी, किंतु भाई ने भिक्खु न बनने के लिये विनती की । परंतु वह उन्हें रोक नहीं पाया, और महाकाल एक भिक्खु बन गये । फिर चुल्लकाल ने भी भिक्खु बनने का निर्णय लिया, यह सोचकर कि वह अपने भाई से किसी भी प्रकार संघ त्याग करवा देगा ।

1

बाद में, महाकाल ने उपसंपदा प्राप्त की और बुद्ध से पूछा कि धम्म के पालन के कितने तरीके हैं। बुद्ध ने स्पष्ट किया कि चाहे तो कोई धम्म ग्रंथों का अध्ययन कर सकता है, तथा चाहे तो कोई अंतर्दृष्टि ध्यान की साधना कर सकता है। तो महाकाल ने कहा, 'महाप्रभु, मैंने अपनी वृद्धावस्था में उपसंपदा ली है, अतः मैं ग्रंथों के अध्ययन में निपुण बनने में सक्षम नहीं हो सकूंगा। मैं अंतर्दृष्टि ध्यान की साधना करूंगा।'

भिक्खुओं के लिये विशेष रूप से उपयुक्त चालीस तकनीकों में से एक उनको दिया गया। उन्हें श्मशान में तपस्वियों की साधना करनी थी। सभी के सो जाने के बाद वे श्मशान को जाते तथा किसी के उठने के पहले ही, प्रातः वापस आ जाते।

वहां काली नाम की एक महिला थी, जिसका काम शवों का दाह संस्कार करना था। उसको लगा कि कोई वहां श्मशान में आकर बैठता है तथा एक स्थान पर चलता है। अतः इसका पता लगाने के लिये कि वहां कौन आता है, उसने एक रात पहरा दिया। अर्धरात्रि में महाकाल को आते देखकर वह उनके पास गई तथा उनका अभिवादन किया। उसने उनसे कहा, 'महोदय, जो लोग श्मशान में रहते हैं, उन्हें स्वयं को नियमों से परिचित कराना चाहिए।' आदरणीय महाकाल ने यह नहीं कहा 'तुम्हारे नियमों का पालन करने वाला मैं कौन होता हूँ?' क्योंकि वे एक अत्यंत विनम्र व्यक्ति थे। बजाय इसके, उन्होंने पूछा, 'भक्त, मुझे क्या करना चाहिए?' काली ने उन्हें समझाया कि उन्हें विहार के वरिष्ठ स्थविर को, गांव के मुखिया को, तथा श्मशान के रखवाले को सूचित करना चाहिए। नहीं तो, यदि चोर चोरी का माल श्मशान में फेंक दें, तथा चोरों का पीछा करते हुए लोगों को वे सामान मिल जांय, तो भिक्खु के लिये कठिनाई होगी। यदि इसका पता हो कि वे वहां रह रहे हैं, तो कोई भी उनपर एक चोर होने का संदेह नहीं करेगा।

महाकाल ने पूछा, 'मुझसे और क्या करने की अपेक्षा है?' उसने उनको मांस, मछली, आटा, तेल, शीरा इत्यादि से बचने के लिए कहा, क्योंकि इन खाद्य पदार्थों की गंध से भूखे प्रेत आकर्षित हो सकते हैं। उन्हें दिन में सोना या आलस्य नहीं करना चाहिए। उन्हें अनवरत प्रयास करते रहना चाहिए, उनमें कोई भी कपटी तथा विश्वासघाती भावना नहीं होनी चाहिए; उनकी नीयत अच्छी रहनी चाहिये, जब सभी सो रहे हों तब उन्हें विहार छोड़ कर जाना चाहिये, तथा किसी के भी जागने के पहले वापस आ जाना चाहिए। और उसने कहा कि यदि श्मशान में कोई मृत शरीर आया तो वह उसके अवलोकन के लिए उन्हें बतायेगी। इससे उनके ध्यान में सहायता होगी, क्योंकि यह श्मशान साधना का एक अंग है।

एक दिन, एक युवा महिला की मृत्यु हो गई तथा वह दाह-संस्कार के लिए लायी गयी।

काली ने महाकाल को सूचित कर दिया। महाकाल ने उस युवती को देखा, उसकी अभी अभी मृत्यु हुई थी, तथा उसके शरीर का सुनहरा रंग अभी भी बरकरार था। उन्होंने काली से कहा कि जब वह मृत शरीर अग्नि पर रखा जाय, तो वह उन्हें बताये। तो इस प्रकार, उन्होंने शरीर के दाह होते समय अप्रिय परिवर्तनों का साक्षात्कार किया, तथा उसका ध्यान के आलम्बन के रूप में उपयोग कर, उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित की एवं अर्हत्व प्राप्त किया।

उनके अर्हत बनने के बाद, जब भगवान बुद्ध उनके घर के शहर, सिंसपा गये तो वे तथा उनके भाई भी, भगवान के साथ गये। छोटे भाई, चुल्लकाल की दोनों पत्नियों ने बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित किया था। ऐसा होता था कि बुद्ध जब भी कहीं ऐसी जगह जाते थे, जहां वे बहुधा न गये हों, तो आसन तैयार करवाने के लिए पहले वे एक भिक्खु को भेजते थे। मध्य में भगवान बुद्ध के लिये आसन, उनके दाहिनी तरफ सारिपुत्त के लिए, बाईं तरफ मोग्गल्लान के लिए, तथा अन्य भिक्खुओं के लिए दोनों ओर आसन तैयार किये जाते थे। इस कार्य के लिये महाकाल ने अपने छोटे भाई को भेजा। घर के लोगों ने उनका मजाक उड़ाया, तथा आसनों को गलत तरीके से लगाया। उन लोगों ने वरिष्ठ भिक्खुओं के लिये नीचा आसन तथा कनिष्ठ भिक्खुओं के लिए उच्च आसन तैयार किये। जब चुल्लकाल ने इसका विरोध किया तो महिलाओं ने उनकी अनसुनी कर दी।

उनलोगों ने चुल्लकाल के चीवर खींच कर उतार दिया, तथा उन्हें श्वेत वस्त्र एवं सर में फूलों की माला पहना कर भेज दिया, 'जाओ, शास्ता को ले आओ। हम आसन तैयार कर लेंगे।' जो लोग एक लंबे समय तक के लिए भिक्खु नहीं हुए होते, या जो एक वर्ष के पहले ही संघ का त्याग कर देते हैं, उनमें इस विषय में शर्म का भाव नहीं होता। तो चुल्लकाल उसी वेशभूषा में बिना किसी उपहास के डर से चले गये।

महाकाल की पत्नियों ने सोचा कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे भी अपने पति को गृहस्थ बनने के लिये क्यों न मना लें, जैसा कि उनके भाई ने किया था। अतः उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा कि वे महाकाल को भोज का अनुमोदन करने के लिये पीछे छोड़ दें। बुद्ध ने कहा 'बहुत अच्छा' और वे आगे चले गये।

जब वे गांव के द्वार पर पहुंचे, तो कुछ भिक्खुओं ने भुनभुनाना प्रारंभ किया, 'शास्ता ने यह क्या कर दिया? क्या उन्होंने यह जानबूझकर किया है अथवा अनजाने में?' तो हम देख सकते हैं, कि यहां तक कि सीधे बुद्ध के साथ काम करने वाले भिक्खु भी संदेह में थे, तथा कभी कभी वे उन विषयों की भी चिंता करते थे, जो उनके प्रयोजन के नहीं थे।

बुद्ध ने भिक्खुओं से पूछा कि क्या वे ऐसा सोचते हैं कि महाकाल अपने भाई चुल्लकाल की तरह हैं । उन्होंने उत्तर दिया, 'हाँ, भन्ते । चुल्लकाल की दो पत्नियां है । महाकाल की आठ पत्नियां थीं । यदि वे उनकी पकड़ में आगये, तब वे क्या कर पायेंगे?'

बुद्ध ने भिक्खुओं को समझाया कि चुल्लकाल ध्यान लगाने के पश्चात कामुक सुख के विचारों में लिप्त होता था, जबकि महाकाल अप्रिय वस्तुओं के विषय में सोचते थे । भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, 'वह तो ठोस चट्टानों के एक पर्वत की तरह अटल है ' तथा उन्होंने इस कथा के प्रारंभ में दी गयी गाथाओं को सुनाया ।

सुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु असंवुतं ।

भोजनम्हि चामत्तञ्ञु, कुसीतं हीनवीरियं ।

तं वे पसहति मारो, वातो रुक्खंव दुब्बलं ।।

अच्छी लगने वाली चीजों को शुभ ही शुभ देखते विहार करने वाले, इन्द्रियों में असंयत, भोजन की मात्रा के अजानकार, आलसी और उद्योगहीन को मार ऐसे सताता है जैसे दुर्बल वृक्ष को पवन ।

असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं ।

भोजनम्हि च मत्तञ्ञु, सद्धं आरद्धवीरियं ।

तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलंव पब्बतं ।।

अशुभ को अशुभ जानकर साधना करने वाले, इन्द्रियों में सुसंयत, भोजन की मात्रा के जानकार, श्रद्धावान और उद्योगरत को मार उसी प्रकार नहीं डिगा सकता जैसे वायु शैल पर्वत को ।

महाकाल की पूर्व पत्नियों ने उन्हें घेर लिया और बोलीं, 'आप को भिक्खु बनने की अनुमति किसने दी? अब आप पुनः गृहस्थ बन जायेंगे' तथा वे उनके चीवर खींचने का प्रयास करने लगीं । किंतु महाकाल अपनी शक्तियों का उपयोग कर, हवा में उड़ कर, घर के एक कोने को भेदते हुए, आकाश मार्ग से गये जब भगवान बुद्ध गाथाओं का समापन कर रहे थे । तथा उन्होंने नीचे उतर कर तथागत का अभिवादन किया ।

पांच नीवरण [2]

आज प्रातः हमने पाँच नीवरणों की चर्चा की :- (१) कामच्छन्द, (२) व्यापाद अर्थात दुर्भावना,

(३) स्त्यान एवं मृद्ध (पालि में, थीन मिद्ध) अर्थात शारीरिक एवं मानसिक आलस्य या अकर्मण्यता, (४) औधत्य एवं कौकृत्य (पालि में, उद्धच्च कुक्कुच्च) अर्थात अनवस्थिता और खेद, तथा अंत में, (५) विचिकित्सा (पालि में, विचिकिच्छा) अर्थात आशंका अथवा संदेह । आइए, अब हम इसे थोड़ा और विस्तार से जानें कि वे कैसे उत्पन्न होते हैं, तथा किस प्रकार से इन्हें हम दूर कर सकते हैं ।

१. कामच्छन्द :- भगवान बुद्ध ने कहा है, 'सुंदर वस्तुएं होती हैं । उनपर बहुधा मूर्खतापूर्ण ध्यान देना उन इन्द्रिय सुखों की कामेच्छा का पोषण करता है, जो अभी उदय नहीं हुई हैं, तथा उन कामेच्छाओं को प्रबल बनाता है जो पहले से ही उत्पन्न हो गई हैं ।[३]

जैसा कि हम आदरणीय महाकाल की कथा में देख चुके हैं, अशुद्ध विषय वस्तुओं पर ध्यान लगाना, विशेष रूप से भिक्खुओं के लिए उपयुक्त एक तकनीक है, जिसमें शरीर के घृणास्पद पहलू पर मनन होता है । प्रव्रज्या के समय, भिक्खु या श्रामणेर (पालि में,सामनेर) बनने वालों को, उनका मुण्डन करने से पहले, आचार्य शरीर के पहले पांच घटकों पर ध्यान लगाना सिखाते हैं, जैसा कि पालि ग्रंथों में बताया गया है, अर्थात सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, तथा त्वचा । आकांक्षी को इस प्रकार विचार करना चाहिये 'ये, न मैं हूं, न ये मेरा है, यह कोई प्राणी या आत्मा नहीं है, किंतु नश्वर या अनित्य, दुख का कारण, तथा अनात्म है (पालि में, अनिच्च, दु:ख एवं अनत्ता) ।

बुद्ध के समय ऐसे सात वर्षीय सामनेर थे, जिन्होंने अपने मुण्डन के समय, शरीर के बत्तीस घटक भागों को परिलक्षित किया, एवं अर्हत हो गये । आदरणीय दब्ब मल्लपुत्त की जब पहली लट कटी तो वे श्रोत विजेता (सोतापन्न) हो गये, दूसरी लट कटने पर मात्र एक बार वापस आने वाले सकृदागामी (पालि में, सकदागामी), तीसरी लट पर कभी न लौटने वाले (अनागामी), तथा चौथी लट कटने पर अर्हत हो गये ।[४] आदरणीय संकिच्च जब सात वर्ष के थे, तो उनके एक संबन्धी उन्हें आदरणीय सारिपुत्त के पास ले गये, और सामनेर बनने के लिये कहा । स्थविर ने संकिच्च को शरीर के पांच अंगों पर ध्यान लगाना सिखाया, तथा जैसे ही उस्तरे का उनके बालों से संपर्क हुआ, उसी क्षण वे अर्हत हो गये ।[५] आदरणीय चुल्ल सुमन तथा एक सामनेर ने जब कौसाम्बी के स्थविर तिस्स के अन्तर्गत प्रव्रज्या ली तो वे भी मुण्डन के समय ही अर्हत हो गये ।[६]

ज्ञानेन्द्रिय द्वारों की चौकसी, साधना शिविर तथा दैनिक जीवन, दोनों में हमारे लिये अत्यंत उपयोगी होगी । आदरणीय सारिपुत्त ने एक साथी भिक्खु को ज्ञानेन्द्रियों के नियंत्रण के विषय में परामर्श दिया था ।[७] उन्होंने कहा कि जब भी आप किसी वस्तु की ओर देखते हैं, तो आप को

उसके समग्र रूप से या उसके विवरण से गुमराह नहीं होना चाहिए। ऐसा आवश्यक है, क्योंकि यदि चक्षु संकाय अनियंत्रित है, तो लोभ, दु:ख, तथा बुरी एवं लाभहीन मनोदशाओं से अभिभूत हो जायेंगे। अत: आप को अपनी दृष्टि को नियंत्रित रखने का प्रयास करते रहना चाहिए, तथा इस पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए आपको चक्षु द्वार पर एक द्वारपाल बैठा देना चाहिये। यही बात तब भी लागू होती है जब आप कोई ध्वनि सुनते हैं, कोई गंध सूंघते हैं, किसी स्वाद का स्वाद लेते हैं, तथा जब शरीर किसी स्पर्शगोचर वस्तु के संपर्क में आता है। आप को प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय को नियंत्रित करने पर काम करना है, तथा उन पर द्वारपाल की स्थापना करना है। इस प्रकार आप उस पर नियंत्रण प्राप्त करेंगे।

यह कैसे काम करता है, इसे भगवान बुद्ध ने आदरणीय मिगजाल को समझाया था।[८] उन्होंने कहा कि ऐसी गोचर वस्तुएं हैं जिन्हें आंखों से देखा जा सकता है तथा जो सुंदर, मनमोहक, आनन्ददायक, वांछनीय, एवं वासना उत्तेजित करने वाली होती हैं। यदि हम अपने आप को इस प्रकार की गोचर वस्तुओं से लालायित हो जाने दें, उनका स्वागत करें तथा उन से चिपकें, तो वे हमारे लिए एक प्रलोभन बन जाएंगी। प्रलोभन से आसक्ति होगी। आसक्ति से बंधन होगा। उसी प्रकार, ध्वनि, गंध, स्वाद, तथा स्पर्शगोचर वस्तुएं भी हमें अपना दास बना कर जकड़ सकती हैं। बुद्ध ने कहा है, ' इंद्रियों के बंधन में आयोजित हो जाना, एक प्रेमी के साथ निवास करने जैसा है' तथा यह प्रेमी है आसक्ति। किंतु यदि आप इन गोचर वस्तुओं से लालायित न हों, उनसे आनन्दित न हों, उनसे चिपकें नहीं, उनका स्वागत न करें, तो प्रलोभन कम होता जायेगा। प्रलोभन नहीं है, तो आसक्ति नहीं होगी। यदि आसक्ति नहीं है, तो बन्धन नहीं होगा।

अल्पाहार हमारे लिए समझना सहज है। हम शिविर में केवल शाकाहारी भोजन तथा सायंकाल में बहुत थोड़ा या बिल्कुल नहीं के बराबर खाकर इसका अभ्यास करते हैं।

यदि हम अपने ध्यान में प्रगति करना चाहते हैं, तो हमारे लिए आर्य मित्रता विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। एक समय, आदरणीय आनंद ने बुद्ध से कहा कि अच्छे मित्र, अच्छे साथी, तथा अच्छी मित्रता की प्रवृत्ति आधा पवित्र जीवन है।[९] बुद्ध ने उत्तर दिया, 'आनंद, ऐसा मत कहो, अच्छा मित्र, अच्छा साथी, तथा अच्छी मित्रता की प्रवृत्ति आधा नहीं पूरा पवित्र जीवन है। तब उन्होंने समझाया कि जब हमें धम्म सिखाने वाला हमारा कोई कल्याण मित्र होता है, तभी हम अष्टांगिक आर्य मार्ग का अनुसरण करने में सक्षम हो पाते हैं। तथा बुद्ध ने कहा, 'चूंकि मैं उनका एक कल्याण मित्र हूं, जन्म के अधीन प्राणी जन्मों से मुक्ति प्राप्त करते हैं।'

भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद को दिये गये एक प्रवचन में, उपयुक्त वार्तालाप के अन्तर्गत क्या क्या आता है, इस विषय में विस्तृत विवरण दिया।[१०] उन्होंने कहा है कि सही ढंग से धम्म का पालन करने वाला भिक्खु गलत प्रकार के भाषण से बचेगा। बुद्ध ने आनंद को दिये गये अपने एक प्रवचन में किसी भिक्खु के लिए उपयुक्त वार्तालाप का स्पष्टीकरण किया। ऐसा वार्तालाप जो सीधे - सादे जीवन के विषय में हो, वार्तालाप जो मानस को खोलने में सहायता करे, तथा जो त्याग की ओर, अनासक्ति की ओर, कामुकता से मुक्ति की ओर, निरोध की ओर, स्व जागृति की ओर, उच्च ज्ञान की ओर, शांति की ओर, तथा निब्बान की ओर ले जाता हो। ऐसा वार्तालाप अल्पेच्छा के विषय में, संतोष के विषय में, एकाकी जीवन के विषय में, पुरुषार्थ के विषय में, पुण्य के विषय में, एकाग्रता के विषय में, सहज ज्ञान के विषय में, मुक्ति के विषय में तथा मुक्ति के ज्ञान एवं दर्शन के विषय में होगा।

२. व्यापाद अर्थात द्वेष या दुर्भावना :- आइए अब हम दूसरे नीवरण, द्वेष या दुर्भावना की चर्चा करते हैं। पालि ग्रंथों मे उल्लेख है कि प्रतिकूल वस्तुओं पर मूर्खतापूर्ण अत्यधिक ध्यान देने से द्वेष का पोषण होता है।[११] यदि हम उनके विषय में सोचते रहें, तो इससे द्वेष उत्पन्न होगा, तथा यदि द्वेष हमारे मन में पहले से ही है, तो उसकी प्रबलता में वृद्धि होगी। द्वेष के पोषण को समाप्त करने का उपाय प्राय: मेत्ता पर बुद्धिमत्ता पूर्ण ध्यान देना है। यदि हम मेत्ता के विचारों का मनन करते हैं, तो हम द्वेष को उत्पन्न होने से बचायेंगे, तथा यदि हममें पहले से ही द्वेष विद्यमान है, तो उसका नाश करेंगे।

३. स्त्यान-मृद्ध अर्थात शारीरिक एवं मानसिक आलस्य :- यदि हम ऊब, थकान, अंगड़ाई, भोजनोपरांत तंद्रा तथा मानसिक शिथिलता की ओर मूर्खतापूर्ण ध्यान दें, तो उससे आलस्य एवं अकर्मण्यता के तीसरे नीवरण का पोषण होगा।[१२] इन पर अत्यधिक विचार करने से आलस्य एवं अकर्मण्यता उत्पन्न होंगे, तथा उत्पन्न होने पर वे प्रबल होंगे एवं उनकी वृद्धि होगी। हम ऊर्जा जागृति तत्व पर, पुरुषार्थ के तत्व पर, तथा निरंतर परिश्रम करने के तत्व पर प्राय: बुद्धिमत्तापूर्ण ध्यान देकर आलस्य एवं अकर्मण्यता को समाप्त कर सकते हैं। इनका अभ्यास करने से आलस्य एवं अकर्मण्यता से बचेंगे, तथा उत्पन्न होने पर उनसे छुटकारा प्राप्त कर सकेंगे।

भगवान बुद्ध ने कहा है कि हमें आलस्य एवं अकर्मण्यता पर विजय प्राप्त करने के लिये सात बोध्यांगों (पालि में, बोज्झांगों) में से तीन का उपयोग नहीं करना चाहिए।[१३] जब शारीरिक या मानसिक शिथिलता हो, तो हमें प्रशांति, चित्त एकाग्रता, या समभाव के विकास करने पर काम नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने बताया कि यदि कोई व्यक्ति एक चिनगारी को आग की ज्वाला बना

देना चाहता है, तो वह उस पर गीली घास, गीला गोबर, तथा गीली लकड़ी का ढेर नहीं डालेगा; वह उसे तेज हवा और बारिश में नहीं ले जायेगा, तथा उस पर धूल नहीं छिड़केगा। इसी प्रकार जब शिथिलता या आलस्य हो तो हमें ऐसे मानसिक संकायों का विकास नहीं करना चाहिए, जो मन को प्रशांत करें।

दूसरी ओर, हमें उन तीन बोध्यांगों को उपजाना चाहिये, जिनसे मन को उत्तेजित करने में आसानी हो। ये हैं :- धम्म का अन्वेषण, ऊर्जा, तथा पीति अर्थात उल्लास या आनन्द। ये उसी प्रकार प्रभावी होंगे, जैसे जब कोई व्यक्ति एक चिनगारी को धधकती ज्वाला में बदलना चाहता है, तो वह उस पर शुष्क घास, शुष्क गोबर, तथा शुष्क टहनियां डालेगा, उसे धीरे धीरे हवा देगा, तथा उस पर धूल का छिड़काव करने से परहेज करेगा। बोधि का सातवां अंग सति है; इसका विकास सदैव लाभकारी होता है।[१४] जब हम अंतर्दृष्टि के प्रशिक्षण में पहुंचेंगे, तब हम सात बोध्यांगों के विषय में अधिक विस्तार से बात करेंगे।

४. औधत्य-कौकृत्य अर्थात अनवस्थितता एवं खेद :- मन की व्याकुलता पर बारंबार मूर्खतापूर्ण ध्यान देना ही चौथे नीवरण व्याकुलता एवं खेद की उत्पत्ति का पोषण करता है। यह उसकी वृद्धि करेगा तथा उसे प्रबल बनायेगा।[१५] हम शांत चित्त पर बारंबार ध्यान देकर व्याकुलता एवं खेद को समाप्त कर सकते हैं।[१६] जब हमारा मन व्याकुल या उत्तेजित हो, तो हमें तीन बोध्यांगों, धम्म का अन्वेषण, ऊर्जा एवं पीति अर्थात उल्लास को नहीं जगाना चाहिए। यह उसी प्रकार होगा जैसे धधकती आग बुझाने के लिये उस पर शुष्क घास, शुष्क गोबर, तथा शुष्क टहनियों का ढेर डालना, तथा धूल डालने के बजाय उसको हवा देना। जब हमारा मन व्याकुल या उत्तेजित हो, तो हमें बोधि के तीन अन्य अंगों, प्रशान्ति, चित्त एकाग्रता एवं समभाव को जगाना चाहिए। यह उसी प्रकार होगा जैसे धधकती आग बुझाने के लिये उस पर भीगी घास, भीगा गोबर, तथा भीगी टहनियों का ढेर एवं धूल डालना, और उसे वर्षा से न बचाना। जैसा कि हमने आलस्य एवं अकर्मण्यता के साथ देखा, सति का विकास सदैव सहायक होगा।[१७]

५. विचिकित्सा (पालि में, विचिकिच्छा) अर्थात संदेह :- अनिश्चितता या संदेह उकसाने वाली बातों पर लगातार मूर्खतापूर्ण ध्यान देने से पांचवां नीवरण, संदेह उत्पन्न होगा। उसकी वृद्धि करेगा तथा उसे प्रबल बनायेगा।[१८] किंतु यदि अपना बुद्धिमत्तापूर्ण ध्यान हम बहुधा उन मनोदशाओं को समझने पर दें, जो लाभप्रद तथा जो लाभहीन हैं, जो निन्दनीय तथा जो निर्दोष हैं, जिन्हें विकसित करना चाहिये तथा जिन्हें विकसित नहीं करना चाहिये, जो निम्न एवं जो उच्च हैं, जो अंधेरी तथा जो उज्वल हैं, तो हमें अपने संदेहों से छुटकारा मिल जाएगा।[१९]

पांच नीवरणों के परित्याग से लाभ

भगवान बुद्ध ने पाँच नीवरणों के परित्याग से होने वाले लाभों के विषय में बताया है।[२०]

> '[एक भिक्खु जिसने] आर्य नैतिकता, इंद्रियों का आर्य संयम, तथा आर्य संतोष अर्जित कर लिया है, ...वह कोई एकान्त वास, कोई वन वृक्ष का मूल, कोई पर्वतीय गुफा या तंग घाटी, कोई श्मशान, कोई जंगली झुरमुट, या खुली हवा में किसी पुआल के ढेर पर स्थान प्राप्त करता है। फिर, भिक्षाटन से लौट कर भोजन करने के पश्चात, शरीर को सीधा रखते हुए पालथी मार कर बैठता है, तथा सति को अपने समक्ष स्थापित रखने के लिये ध्यान केंद्रित करता है।
>
> 'सांसारिक इच्छाओं को त्यागते हुए, वह सांसारिक इच्छाओं से मुक्त मन के साथ विहार करता है, तथा उसका मन उनसे परिशुद्ध हो जाता है। द्वेष एवं घृणा को त्यागते हुए ... तथा सभी प्राणियों के कल्याण के लिए अनुकंपामय प्रेम विकसित करने से, उसका मन द्वेष एवं घृणा से परिशुद्ध हो जाता है। आलस्य एवं अकर्मण्यता त्यागते हुए ... प्रकाश गोचर करते हुए, स्पष्ट रूप से सतियुक्त एवं अवगत , उसका मन आलस्य एवं अकर्मण्यता से परिशुद्ध हो जाता है। व्याकुलता एवं खेद त्यागते हुए ...तथा अंतर्मुखी प्रशांत चित्त के साथ उसका मन व्याकुलता एवं खेद से परिशुद्ध हो जाता है। संदेह त्यागते हुए, हितकारी वस्तुओं के प्रति अनिश्चितता विहीन वह ऐसे रहता है जैसे संदेह पीछे छूट गया हो, इस प्रकार उसका मन संदेह से परिशुद्ध हो जाता है।
>
> यह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति अपना व्यापार विकसित करने के लिए ऋण लेता है; उसका व्यवसाय सफल होता है, तथा वह अपने ऋण का भुगतान करने में सक्षम हो जाता है। शेष धन के साथ वह एक पत्नी का भी पालन कर सकता है। तब वह सोचेगा, 'पहले मैंने उधार के धन से अपना व्यापार विकसित किया। अब यह चल निकला है।' तथा वह आनन्दित एवं आह्लादित होगा।
>
> यह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति रुग्ण हो, पीड़ित तथा सख्त बीमार हो, भूख मर गई हो, तथा शरीर दुर्बल हो गया हो। कुछ समय के बाद, वह स्वास्थ्यलाभ करता है, तथा उसकी भूख एवं शक्ति वापस आ जाती है। तब वह सोचेगा, 'इसके पहले मैं रोगी था, [किंतु अब मैं ठीक हूं] ...,' तथा वह आनन्दित एवं आह्लादित होगा।

यह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति किसी कारागार में बंदी हो। कुछ समय के बाद, मुक्त हो जाता है तथा अपनी सारी संपत्ति प्राप्त कर लेता है। तब वह सोचेगा, 'पहले, मैं जेल में था [किंतु, अब मैं स्वतंत्र हूँ] ...,' तथा वह आनन्दित एवं आह्लादित होगा।

यह उसी प्रकार है, जैसे कोई व्यक्ति किसी का दास हो, वह स्वयं अपना स्वामी न हो, किंतु किसी अन्य पर निर्भर हो। वह जहां चाहे जा न सके। किंतु कुछ समय के बाद, वह गुलामी से मुक्त हो जाता है, तथा कहीं भी जहां भी चाहे वहां आ जा सकता है। तो वह सोचेगा, 'इसके पहले, मैं एक दास था [किंतु अब मैं स्वतंत्र हूं] ...,' तथा वह आनन्दित एवं आह्लादित होगा।

यह उसी प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति धन एवं संपत्ति से लदा हो। वह किसी रेगिसतान से एक लंबी यात्रा पर निकलता है। मरुस्थल में भोजन प्राप्त करना दुर्लभ है, तथा चारों ओर खतरा है। कुछ समय के बाद, वह रेगिस्तान के दूसरे किनारे पर गांव के बाहरी भाग में सुरक्षित पहुंचता है। तो वह सोचेगा, 'पहले मैं असुरक्षित था, किंतु अब मैं एक गांव के बाहरी भाग में सुरक्षित हूँ।' तथा वह आनन्दित एवं आह्लादित होगा।

जब तक एक भिक्खु स्वयं में पाँचों नीवरणों का समापन नहीं कर पाता, तब तक उसे लगता है कि वह रुग्ण, कारावास में, दासता में, या किसी मरूस्थल यात्रा पर है। किंतु. जब वह पाता है कि उसमें से पाँचों नीवरण गायब हो गये हैं, तो उसे लगता है कि वह ऋण, रुग्णता, कारावास, दासता एवं मरुस्थल के संकटों से मुक्त हो गया है।

तथा जब उसे पता चलता है कि वे पांचों नीवरण उसमें से विदा हो गये हैं, तो उसमें हर्ष उदय होता है। हर्ष से उल्लास होता है। मन में उल्लास से उसका शरीर शांत हो जाता है। शांत शरीर से वह आनन्द अनुभव करता है, तथा आनन्द से उसका ध्यान केंद्रित होता है। इस प्रकार, राग से पृथक होकर, अहितकारी मनोदशाओं से निस्संग, वह प्रथम समाधि या ध्यान (पालि में, झान) में प्रवेश करता है तथा उसमें बना रहता है। तथा अनासक्ति से उत्पन्न इस उल्लास एवं आनन्द के साथ वह अपने शरीर को आप्लावित करता है, भिगोता है, भरता है, जगमगाता है, जिसके कारण शरीर का कोई भी अंग इस अनासक्ति द्वारा उत्पन्न उल्लास एवं आनन्द से अछूता नहीं रहता।[तथा वह अन्य झानों को भी विकसित करने के लिए आगे बढ़ता है।]

संदर्भ सूची

[1]See *Buddhist Legends*, I 184-189.

[2]This discussion of the five hindrances (nivarana) is largely inspired by

Nyanaponika Thera's "The Five Mental Hindrances and Their Conquest," *The Wheel* n° 26 (2nd revised and enlarged ed., 1961). For further discussion of the five hindrances, see *The Dispeller of Delusion, Part 1* (Sammohavinodani), pp. 332-338.

[3]Samyutta-nikaya V 63 (*Kindred Sayings* V 52).

[4]Mp I 274f., quoted in Udana *Commentary* II, p. 1119, note 672.

[5]*Buddhist Legends* II, p. 239. *Cf.* Th-a II 255, where it is said he attained Arahatship in the tonsure hall.

[6]*Buddhist Legends* III 279, Dhp-a II 182ff.

[7]Samyutta-nikaya IV 102 (*Kindred Sayings* IV 63).

[8]Samyutta-nikaya IV 36 (*Kindred Sayings* IV 16-18).

[9]KS I 113f.; V 2f.

[10]Majjhima-nikaya n° 122 (*Middle Length Sayings* III 156f.).

[11]Samyutta-nikaya (Nyanaponika's reference [46, 51] has not been identified yet).

[12]Samyutta-nikaya V 103.

[13]Samyutta-nikaya V 113 (*Kindred Sayings* V 95f.).

[14]Samyutta-nikaya V 115 (*Kindred Sayings* V 98).

[15]Samyutta-nikaya V 103.

[16]Samyutta-nikaya V 106.

[17]Samyutta-nikaya V 114f. (*Kindred Sayings* V 97f.).

[18]Samyutta-nikaya V 103.

[19]Samyutta-nikaya V 106.

[20]Based on the translation by Maurice Walshe, *Thus Have I Heard* (pp. 101f.; D I 71f.).

चतुर्थ दिवस, प्रात: प्रवचन

उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च ।

दीपं कयिराथ मेधावी, यं ओघो नाभिकीरति ।।

मेधावी (पुरुष) उद्योग, अप्रमाद, संयम तथा (इन्द्रियों के) दमन द्वारा (अपने लिये ऐसा) द्वीप बना ले, जिसे (चार प्रकार के क्लेशों की) बाढ़ आप्लावित न कर सके ।

धम्मपद, गाथा २५

चूलपंथक की कथा[१]

हमने कई बार इंगित किया है कि हमारी काम करने की क्षमता तथा हमारी प्रगति की गति इस बात पर निर्भर करती है कि हमने अतीत में कितनी तैयारी की है । हमने ऐसे साधकों की कथा सुनाई है जो अति शीघ्र प्रगति करने में सफल हुए । अब मैं आपको एक मंद व्यक्ति की कथा सुनाता हूं । यहां तक कि मंद गति से सीखने वाला व्यक्ति भी, यदि ठीक से कार्य करता है, तो धम्म की शिक्षा के पालन का अभ्यास कर सकता है तथा लक्ष्य तक पहुंच सकता है ।

जिस गाथा से हमने प्रारंभ किया है, वह गाथा चूलपंथक के संदर्भ में दी गयी थी । राजगृह (पालि में राजगह या आधुनिक, राजगिर) में एक धनवान व्यापारी थे जिनकी एक बेटी थी । जब वह बड़ी हुई, तो उन्होंने उसको रहने के लिए एक सात मंजिला अट्टालिका का निर्माण करवाया तथा उसे उसमें कड़े पहरे में रखा । किंतु वह अपने दास की ओर आकर्षित हो गई, तथा इस संबंध का पता चल जाने के भय से वह बोली, 'हमारे लिये अब यहाँ रह पाना असंभव है । यदि मेरे माता पिता को पता लग गया, तो वे मेरे टुकड़े टुकड़े कर देंगे । हमें कहीं और जाकर रहना चाहिए ।' अत: वे वहां से चले गए ।

वह गर्भवती हो गई, तथा जब जन्म निकट आ गया तो अपने पति से बोली, 'मेरा समय निकट आ गया है, तथा बिना किसी मित्र या संबंधी की सहायता के, जन्म देना कठिनाई मोल लेना है । हमें मेरे माता-पिता के घर चलना चाहिये।' किंतु दास अपने जीवन के लिए भयभीत था, अत: उसे टालता रहा ।

उसने सोचा, 'यह मूर्ख अपने किये की गंभीरता के कारण वहां जाने का साहस नहीं कर पा रहा है । किंतु वास्तव में माता पिता अपने बच्चों के कल्याण की परवाह करते हैं । मैं जाऊंगी चाहे वह आये या नहीं ।' तो वह चल पड़ी । जब पति घर आया और पाया कि वह चली गयी है, तो वह उसके पीछे गया । वह उसको रास्ते में मिली, तथा उसने उसी स्थान पर जन्म दिया । अब

अपने माता पिता के घर जाना जारी रखने का कोई अर्थ नहीं था, अत: वे वापस आ गए । तथा उन्होंने बालक का नाम 'पंथक' अर्थात 'सड़क का' रखा । फिर वही बात शीघ्र ही एक बार पुन: हुई । तो उन्होंने बड़े बालक के नाम में महा (बड़ा) जोड़ दिया तथा दूसरे बालक का नाम 'चूलपंथक'(सड़क का छोटा) रखा ।

ज्येष्ठ बालक ने अपने साथियों के साथ खेलते हुए उनको अपने मामाओं तथा नाना नानियों के विषय में बात करते हुए सुना, तो उसने अपनी मां से पूछा कि क्या गांव में अपने कोई सगे संबंधी नहीं हैं । उसकी माँ ने कहा, 'हाँ, यहां तो नहीं, किंतु राजगह में तुम्हारे नाना एक धनी व्यापारी हैं तथा वहां हमारे अनेक संबंधी हैं ।' तो बालक ने कहा कि वह वहाँ जाना चाहता है । माँ ने अपने पुत्र को यह नहीं बताया कि उसने अपना घर क्यों छोड़ दिया था । अंत में दोनों बालकों ने अपनी मां को इतना तंग किया कि उसने अपने पति से कहा, 'ये बालक मुझे कितना सता रहे हैं । आखिरकार, मेरे माता पिता जब हमें देखेंगे तो हमें जिंदा नहीं खा जायेंगे । हमें इन बच्चों को लेकर इनके नाना, नानी को देखने चलना चाहिये ।'

पति ने कहा, 'मैं उनका सामना नहीं कर सकता, किंतु मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊंगा ।' तो वे बच्चों के साथ आ गये तथा राजगह के नगर-द्वार पर एक विश्रामगृह में रुके । माँ ने अपने माता-पिता को एक संदेश भिजवाया । उनकी प्रतिक्रिया थी, 'पुनर्जन्मों के इस चक्र में ऐसा कोई नहीं है जो कभी पुत्र या पुत्री न हुआ हो, किंतु हमारी इस पुत्री ने तथा इस दास ने हमें बहुत आहत किया है । हमारे लिये उन्हें देख पाना असंभव है । हम उन्हें जीवन यापन के लिये पर्याप्त धन दे देते हैं तथा वे जहां चाहें वहां जाकर रह सकते हैं । परन्तु, वे बालकों को हमारे पास भेज सकते हैं ।' अत: बालक अपने नाना-नानी के साथ रहने आ गये ।

महापंथक इतने बड़े हो गये थे कि वे अपने नाना-नानी के साथ बुद्ध के प्रवचन सुनने जाते, किंतु चूलपंथक अभी छोटे थे । महापंथक में नियमित रूप से बुद्ध के प्रवचन सुनते सुनते, भिक्खु बनने की प्रवृत्ति विकसित हुई, तथा उन्होंने अपने नाना की अनुमति माँगी । उनके नाना आह्लादित हो गये, उन्होंने कहा, 'विश्व में किसी और के बजाय मैं चाहता हूं कि तुम्हीं भिक्खु बनो । यदि तुम भिक्खु बन सकते हो, तो बनो ।' ऐसा है कि किसी की भिक्खु बनने में सहायता करना अत्यंत पुण्य का कार्य है । यदि हम स्वयं भिक्खु बनते हैं या ऐसा करने के लिए किसी और की सहायता करते हैं, तो हम अगले जीवन में प्रव्रज्या प्राप्त करने में सक्षम हो जाएंगे ।

तो महापंथक एक श्रामणेर (पालि में, सामनेर) बन गये । उनके आचार्य ने उन्हें ध्यान लगाने की चालीस तकनीकों में से एक तकनीक सिखाई, जिसमें सिर के बाल, शरीर के बाल,

नाखून, दांत, और त्वचा पर मनन सम्मिलित है। इस प्रकार का ध्यान भिक्खुओं के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। तथा महापंथक बुद्ध की अनेक शिक्षाओं में दक्ष हो गये एवं जब उनकी पर्याप्त आयु हुई, तो उन्होंने उपसंपदा अर्थात पूर्ण भिक्खु के रूप में दीक्षा प्राप्त की।

तो, वह फल पद को प्राप्त कर उसके आनंद में डूबे रहने लगे, तथा उन्होंने सोचा, 'क्या चूलपंथक को यह आनंद देना संभव नहीं होगा?' तो वह अपने नाना के पास गये तथा चूलपंथक के भिक्खु-संघ में प्रवेश के लिए उनकी अनुमति माँगी। अनुमति मिल गई। इतनी सरलता से कोषाध्यक्ष के अनुमति देने का एक कारण यह था कि वे बुद्ध के एक प्रसिद्ध गृहस्थ शिष्य थे, तथा जब लोग यह पूछते थे कि उनके पौत्रों की मां कौन है, तो अपनी पुत्री के अनैतिक कार्य के विषय में समझाने में उन्हें शर्म आती थी।

चूलपंथक नैतिकता के नियमों के अभ्यास में स्थापित हो गये थे, किंतु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि उनकी आध्यात्मिक प्रगति मंद थी। उन्हें केवल चार पंक्तियों की एक गाथा दी गयी थी :-

''पद्मं यथा कोकनदं सुगन्धं, पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं।
अङगीरसं पस्स विरोचमानं, तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे''ति॥

सं॰ नि॰ १.१२३; अ॰ नि॰ ५. १९५

देदीप्यमान प्रताप के भगवान बुद्ध का ध्यानपूर्वक अवलोकन करो, जैसे कोई सुगंधित लाल कमल प्रात:काल खिल उठा हो, तथा आकाश में सूर्य चमकता हो।

किंतु वे चार पंक्तियां भी नहीं याद कर सके। निस्संदेह, इसके पीछे एक कारण था। गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती काश्यप बुद्ध के समय वे एक भिक्खु थे। उस जन्म में वे अत्यंत बुद्धिमान थे, तथा उन्होंने एक मंद गति से प्रगति करने वाले भिक्खु का उपहास किया था। दूसरे भिक्खु ने, जो अपने उपहास के कारण लज्जित थे, अपना पाठ सीखने से इनकार कर दिया था। तो इसी कारण चूलपंथक इस जन्म में मंद हुए। जब वे आगे सीखते, तो जो पहले सीखे थे वह भूल जाता था।

चार महीने बीत गये, किंतु वे एक भी छन्द नहीं सीख पाये। तो महापंथक उनके पास गये और बोले, 'तुम इस संघ में बने रहने के योग्य नहीं हो। तुम भिक्खु जीवन के लक्ष्य तक कैसे पहुँच सकते हो, यदि तुम चार पंक्तियां भी याद नहीं कर सकते? तुम्हें अब यहां से विदा ले लेनी चाहिए।' किंतु चूलपंथक एक साधारण व्यक्ति का जीवन व्यतीत करने के आकांक्षी कभी नहीं थे। वे भगवान बुद्ध की शिक्षाओं से बहुत जुड़े हुए थे।

तो उसी समय जीवक नामक एक गृहस्थ चिकित्सक ने, जो राजकुमार के एक पालक पुत्र थे,

भगवान बुद्ध एवं उनके साथ रहने वाले पांच सौ भिक्खुओं को भोजन पर आने के लिए आमंत्रित किया। महापंथक इस प्रकार के निमंत्रणों की व्यवस्था करने के प्रभारी थे। 'एक भिक्खु, चूलपंथक है, जो मंद बुद्धि का है, वह धम्म में आगे नहीं बढ़ पा रहा है, उसके अतिरिक्त मैं अन्य सभी के लिए आमंत्रण स्वीकार करता हूं' उन्होंने यह कहते हुए स्वीकार किया।

जब चूलपंथक ने यह सुना, तो उन्होंने सोचा, "स्थविर मुझसे अवश्य निराश होंगे। तो भिक्खु संघ में रहने से क्या लाभ। मेरे लिये अच्छा होगा कि मैं पुन: गृहस्थ बन जाऊं, तथा दान पुण्य करते हुए जीवन यापन करूं।' तो दूसरे दिन, भोर में ही वे चीवर उतारने के लिये तैयार हो गये। भगवान बुद्ध सदैव प्रात:काल विश्व का सर्वेक्षण करते थे, यह देखने के लिये कि उनकी शिक्षा से लाभान्वित होने के लिये कौन तैयार है, तथा जो हो रहा था उसका उनको पता चला। वे वहां आये तथा चूलपंथक जिस द्वार से निकल कर विदा लेने वाले थे, उस द्वार के इस पार ही टहलने लगे। बुद्ध को देखकर चूलपंथक ने उनका अभिवादन किया।

बुद्ध ने पूछा, 'दिन के इस समय तुम कहां जा रहे हो?' चूलपंथक ने उत्तर दिया, 'भन्ते, मेरे भाई ने मुझे बाहर निकाल दिया है। मैं संघ को छोड़ कर जा रहा हूं।' भगवान बुद्ध ने पूछा, 'तुम्हारा संघ में प्रवेश मेरे चिंतन का विषय है। तो जब तुम्हारे भाई ने तुम्हे विदा कर दिया तब तुम मेरे पास क्यों नहीं आये? वापस गृहस्थ जीवन में लौटने में क्या अच्छाई है? आओ, मेरे साथ चलो।' तो शिक्षक अपनी शुभ चिह्नों से अंकित हथेली से चूलपंथक का सिर थपथपाकर, उसे अपने साथ ले गए तथा गंधकुटी के समक्ष बैठा दिया। फिर उसे एक स्वच्छ पिलोतिक अर्थात वस्त्र का टुकड़ा दिया तथा बोले, 'चूलपंथक, पूर्वाभिमुखी होकर यहां बैठो तथा 'रजोहरणं' (अर्थात अशुद्धता हरण करते हुए) बारंबार कहते कहते इस वस्त्र को रगड़ते रहो।'

जैसे जैसे चूलपंथक 'रजोहरणं' 'रजोहरणं' कहते हुए वस्त्र के टुकड़े को रगड़ने लगे, तो वह मैला होता गया। तो उन्होंने सोचा, 'यह पिलोतिक अत्यंत स्वच्छ था, किंतु मेरे कारण बदल गया तथा दूषित हो गया।' बुद्ध ने, जो जीवक के घर भोजन के लिये गये थे, महसूस किया कि चूलपंथक ने, यह मनन करते हुए कि सभी अनुबंधित वस्तुएं नश्वर हैं, अपना मन अंतर्दृष्टि पर स्थापित कर लिया है। अत: उन्होंने स्वयं का एक प्रतिबिम्ब वहां भेजा तथा चूलपंथक से कहा, 'केवल यह पिलोतिक ही नहीं है, जो धूल से दूषित हुआ है। तुम्हारे भीतर राग, द्वेष तथा मोह की धूल विद्यमान है। उन्हें निकालो।' तथा इसे एक गाथा के रूप में दुहराया :-

''रागो रजो न च पन रेणु वुच्चति, रागस्सेतं अधिवचनं रजोति।
एतं रज्जं विप्पजहित्व भिक्खवो, विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने॥

राग को रज कहा जाता है। इसका अर्थ धूल नहीं है। इसका अर्थ है वासना। इस वासना की धूल का त्याग कर, भिक्खु उनकी शिक्षा का पालन करता है, जिन्होंने वासना से मुक्ति प्राप्त कर ली है।

"दोसो रजो न च पन रेणु वुच्चति, दोसस्सेतं अधिवचनं रजोति।

एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो, विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने॥

द्वेष (पालि में दोस) को रज कहा जाता है। इसका अर्थ धूल नहीं है। इसका अर्थ है द्वेष। इस द्वेष की धूल का त्याग कर, भिक्खु उनकी शिक्षा का पालन करता है, जिन्होंने द्वेष से मुक्ति प्राप्त कर ली है।

"मोहो रजो न च पन रेणु वुच्चति, मोहस्सेतं अधिवचनं रजोति।

एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो, विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"ति॥ (महानि॰ २०९)।

अज्ञान या मोह को रज कहा जाता है। इसका अर्थ धूल नहीं है। इसका अर्थ है मोह। इस मोह की धूल का त्याग कर, भिक्खु उनकी शिक्षा का पालन करता है, जिन्होंने मोह से मुक्ति प्राप्त कर ली है।

गाथा के अंत में, चूलपंथक ने विश्लेषणात्मक ज्ञान के साथ अर्हत्व प्राप्त किया, तथा वे उसके द्वारा सभी शिक्षाओं (त्रिपिटक, पालि में तिपिटक) के आशय समझ गये।

जब जीवक बुद्ध के लिये दान के प्रतीक के रूप में उड़ेलने हेतु जल लाये, तो बुद्ध ने उनसे पूछा, 'क्या विहार में अभी भी भिक्खु हैं?' जब जीवक ने उत्तर दिया कि महापंथक ने कहा है कि अब कोई भी पीछे नहीं छूटा है, तो बुद्ध ने उन्हें बताया कि, वहां हैं। तो जीवक ने वहां किसी को देखने के लिए भेजा।

चूलपंथक को अपने भाई की कही बात याद आ गई, अत: उन्होंने एक हजार भिक्खुओं की रचना कर आम के बगीचे को उनसे भर दिया, – कुछ चीवरों की मरम्मत कर रहे थे, कुछ उनकी रंगाई, अन्य अध्ययन, इत्यादि। जीवक द्वारा भेजा गया व्यक्ति लौट आया तथा बोला, 'आम का बगीचा तो भिक्खुओं से भरा पड़ा है।' बुद्ध ने कहा, 'विहार में जाओ तथा घोषणा करो कि तथागत ने चूलपंथक नामक भिक्खु को बुलाया है।' किंतु वह व्यक्ति वापस आकर बोला कि सभी हजार भिक्खुओं द्वारा घोषित करती हुई ध्वनियां आ रहीं थीं, 'मैं ही चूलपंथक हूं' 'मैं ही चूल पंथक हूं'। तो बुद्ध ने कहा 'जाओ, सबसे पहले जो भिक्खु बोले कि वह चूलपंथक है, उसको पकड़ लो, तो शेष लुप्त हो जायेंगे।' तथा ऐसा ही हुआ। अत; चूलपंथक भी अन्य लोगों के साथ सम्मिलित हो गये।

भोजन के पश्चात, बुद्ध ने जीवक से कहा कि ऐसे अवसरों पर प्राय: दिया जाने वाला प्रवचन चूलपंथक देंगे, तथा चूलपंथक ने एक ऐसा प्रवचन दिया जिसमें समस्त शिक्षा, अर्थात तिपिटक समाविष्ट था ।

संध्याकाल में भिक्खुओं के एक वर्ग में उस दिन जो कुछ भी हुआ था, उसकी चर्चा चल रही थी । बुद्ध उन के पास गये तथा अपने लिए तैयार किये गये आसन पर बैठे । उन्होंने मेत्तापूर्ण कोमल हृदय से सभा को देखा तथा सोचा, 'इस सभा का व्यवहार इतना सुखद है कि हाथ या पैर की कोई गतिविधि नहीं, किसी की खांसी या छींक नहीं । वे बुद्ध के लिये सम्मान से इतने भरे पड़े हैं तथा उनके गौरव से इतने विस्मयाकुल हैं कि यदि मैं यहां जीवन पर्यंत मौन बैठा रहूं तो वे पहले बात करके मौनभंग नहीं करेंगे । तो मैं ही वार्तालाप प्रारंभ करूंगा ।' तथा उन्होंने पूछा कि क्या चर्चा चल रही थी । उन्होंने उनको बताया, तथा बुद्ध ने कहा कि यह पहली बार नहीं था कि चूलपंथक को उन्होंने आश्रय प्रदान किया था ।

मन की शांति

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि जब मन स्थिर हो जाता है, तो वह दृढ़ एवं शांत हो जाता है, मन की शांति से कुछ मानसिक संकेत प्रकट होते हैं । ऐसे संकेत इसलिये उदय होते हैं, क्योंकि मन अस्थायी रूप से शुद्ध हो चुका होता है । वे व्यक्ति की पारमिताओं के आधार पर, तथा उसके प्रयास में संतुलन के आधार पर, देर सबेर कभी न कभी अवश्य उदय होंगे । हमें कैसे काम करना चाहिए, आचार्य बुद्धघोष ने इसका वर्णन विशुद्धिमार्ग में किया है ।

आपका मन श्वास के संज्ञान पर नहीं रहना चाहता । वह एक जंगली बैल के रथ की तरह, पथ से भटक जाता है । अब मानलीजिये कि, एक ग्वाला किसी जंगली गाय के दूध पर पले एक जंगली बछड़े को पालतू बनाना चाहता है, तो वह बछड़े को गाय से दूर, अकेले रहने के लिए, उसे जमीन में गड़े एक मोटे खूंटे में रस्सी से बांध देगा । हो सकता है कि बछड़ा अपने आप को तुड़ाने का तथा इधर उधर भागने का प्रयास करे, किंतु जब उसे लगेगा कि वह अब दूर नहीं जा सकता, तो अंतत: वह शांत हो जायेगा ।

उसी प्रकार यदि आप अपने मन को वश में करना चाहते हैं, तो मन जो दृष्टि, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श तथा विचारों के विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के विषय रूपी भोजन एवं पेय पर पला है, उसे आपको इन विषयों से अलग कर देना चाहिए । साधना में ऐसी प्रगति के पश्चात, अपने मन को सति की रस्सी से आश्वास एवं प्रश्वास के खूंटे में बांध सकते हैं । आपका मन अतीत में जिन

विषयों पर ध्यान देने का आदी हो गया था, उनसे वंचित हो जाने पर, इधर उधर भागेगा । किंतु सति की सुदृढ़ रस्सी की सहायता से वह ध्यान के आलम्बन पर स्थिर होने लगेगा, तथा उपचार समाधि एवं अर्पणा समाधि या झान का प्रभाव आपकी सहायता करेगा ।

आचार्य बुद्धघोष के अनुसार जब साधक समुचित रूप से कार्य करेगा, तो उसे निमित्त अर्थात, संकेत प्रकट होगा ।[२] उन्होंने स्पष्ट किया कि यह निमित्त सबमें एक जैसा नहीं होता । कुछ लोगों में यह सेमर की रूई के या मंद समीर के सुखद स्पर्श जैसा होता है । आचार्य बुद्धघोष ने अपनी टीकाओं में इंगित किया है कि यह निमित्त कुछ लोगों में तारे के समान, या मणियों या मोतियों की लड़ी के समान होता है ।[३] अन्य लोगों में कठोर स्पर्श के रूप में कपास के बीज या लकड़ी को छील कर बनाई गई खूंटी के समान होता है । कुछ लोगों को निमित्त का अनुभव ऐसा होता है, जैसे कोई सिकड़ी (श्रृंखला), फूल की माला, या धूमशिखा हो । अन्य लोगों को फैले हुए मकड़ी के जाले, बादलों की पर्त, कमल के फूल, रथ के पहिये, या चंद्रमा अथवा सूर्य के बिम्ब के समान जान पड़ता है ।

आचार्य बुद्धघोष ने स्पष्ट किया कि नाना प्रकार के निमित्त उसी तरह हैं जैसे अनेक भिक्खु एक साथ बैठ कर भगवान बुद्ध के प्रवचनों का पाठ कर रहे हों । जब एक भिक्खु पूछते हैं, ' आप क्या सोचते हैं, यह प्रवचन कैसा लगता है?' तो कोई भिक्खु कहेंगे, 'मुझे तो यह विशाल पहाड़ी नदी सा जान पड़ता है ।' कोई दूसरे भिक्खु कहेंगे, 'मेरे लिये यह वन में वृक्ष पंक्ति के समान है ।' फिर, कोई अन्य भिक्खु कहेंगे, 'मेरे लिए, यह शीतल छांव देते हुए, फलों से भरे वृक्षों के एक विस्तार के समान है ।' वही सूत्र भिन्न भिन्न रूप में इसलिये प्रतीत होता है, क्योंकि इसकी संज्ञा या संज्ञान उनके लिये भिन्न भिन्न है । निमित्त भी इसी प्रकार भिन्न भिन्न लोगों को भिन्न भिन्न रूप में प्रकट होंगे, क्योंकि उनके संज्ञान भिन्न भिन्न हैं ।[४] आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि, कर्मस्थान या निमित्त 'का जन्म संज्ञा से होता है, इसका स्रोत संज्ञा है, यह संज्ञा द्वारा निर्मित है. अत: यह समझना चाहिये कि जब यह लोगों में अलग अलग तरह से प्रतीत होता है, तो यह उनके संज्ञान में अंतर के कारण है ।'

आश्वास को आलम्बन बनाने वाला चित्त और है, प्रश्वास को आलम्बन बनाने वाला चित्त कोई और । तथा निमित्त को आलम्बन बनाने वाला चित्त कोई और ही है । जिस साधक को ये तीनों धर्म स्पष्ट नहीं होते, वह न तो उपचार समाधि तक, और न ही पूर्ण अर्पणा समाधि या झान तक पहुँच पाता है । जब सभी तीनों का स्पष्ट बोध हो, तो उपचार समाधि तक, तथा अर्पणा समाधि तक पहुँचना संभव हो जाता है । तथा आचार्य बुद्धघोष निम्नलिखित गाथा उद्धरित करते

हैं :-

निमित्तं अस्सासपस्सासा अनारम्मणमेकचित्तस । अजानतो च तयो धम्मे भावना नुपलब्भति ।।

निमित्त, आश्वास, (तथा) प्रश्वास (ये तीनों) एक ही चित्त के आलम्बन नहीं हैं; जिसे इन तीनों बातों का बोध नहीं है, उसे विकास नहीं प्राप्त होता ।

निमित्तं अस्सासपस्सासा अनारम्मणमेकचित्तस । जानतो च तयो धम्मे भावना उपलब्भति ।।

निमित्त, आश्वास, (तथा) प्रश्वास (ये तीनों) एक ही चित्त के आलम्बन नहीं हैं; जिसे इन तीनों बातों का बोध है, उसे भावना अर्थात विकास प्राप्त होता है ।

आदरणीय वेबू सयादॉ का परामर्श[५]

अनेक बार, जब हमें मन को नियंत्रित कर पाना कठिन होता है, तो मन में अनेक संदेह उत्पन्न होते हैं । हमारे मन में आ सकता है कि यह साधना हमारे लिये लाभकारी नहीं लगती या हम इसे ठीक से कर नहीं पा रहे हैं । आदरणीय वेबू सयादॉ ने अपने एक प्रवचन में शिष्यों को निम्न प्रोत्साहन दिया :-

आप ने सील या सदाचार के लिये शिक्षापद लिये हैं । अब चूंकि आपने सील की पारमी को पूर्ण करने का संकल्प लिया है, तो इसे अधिकतम रूप से पूरा कीजिये । केवल जभी आप सील को अधिकतम रूप से पूरा करेंगे, तब ही आपकी सभी आकांक्षायें पूरी हो सकेंगी । आप वर्तमान में एवं भविष्य में सुखी होंगे ।

केवल बुद्ध की शिक्षा ही आप को वर्तमान में तथा शेष सतत अस्तित्व *(अर्थात संसार)* में वास्तविक आनन्द दे सकती है । बुद्ध की शिक्षा, तिपिटक तीन ग्रंथ संग्रहों में निहित है । तिपिटक अत्यंत व्यापक हैं । यदि हम तिपिटक का सारांश निकालें तो हमें जागृति के सैंतीस घटक *(*बोधिपक्षीय, पालि में, बोधिपक्खीय-धम्म*)* मिलेंगे । जागृति के सैंतीस घटकों का सार अष्टांगिक आर्य मार्ग *(मग्गांग)* है । अष्टांगिक आर्य मार्ग का सार तीनों प्रशिक्षण *(*पालि में, सिक्खा*)* अर्थात, उच्च नैतिकता, उच्च सति, तथा उच्च प्रज्ञा *(*अधिसील, अधिचित्त, अधिपञ्ञा*)* हैं । तीनों प्रशिक्षणों का सार अद्वितीय सार्वभौमिक विधान *(***एको धम्मो***)* है ।

यदि आपका शरीर और मन नियंत्रण में है, जैसा कि इस समय है, तो शारीरिक या वाचिक कार्यों में कोई खुरदरापन नहीं हो सकता । यही अधिसील या परिपूर्ण नैतिकता है ।जब

अधिसील सशक्त हो जाता है, तो मन शांत एवं स्थिर हो जायेगा, तथा अपनी कठोरता खो देगा । यही अधिचित्त कहलाता है ।

यदि अधिचित्त (समाधि) सशक्त हो जाता है तथा मन एक लंबी अवधि तक एकाग्र रहता है, तो आप अनुभव करेंगे कि एक ही क्षण में पदार्थ अरबों अरबों बार उदय होता एवं नष्ट होता है । यदि मन (नाम) पदार्थ (रूप) को जानता है, तो यह भी जानता है कि पलक के एक बार झपकने के भीतर ही पदार्थ अरबों बार उत्पन्न एवं विखंडित होता है । इस उदय एवं विघटन के ज्ञान को अधिपञ्ञा कहा जाता है ।

जब भी हम श्वास अन्दर लेते हैं या बाहर छोड़ते हैं, तो आन एवं अपान (अर्थात, आश्वास एवं प्रश्वास) नाक में या नासिका रंध्रों के पास किसी स्थान पर स्पर्श करते हैं । संवेदनशील पदार्थ (कायपासाद)[६] हवा के स्पर्श को पंजीकृत करता है । इस प्रक्रिया में, स्पर्श होने वाला तत्व पदार्थ है, तथा स्पर्श को जानने वाली इकाई मन है । अत: बाहर जाकर चारों ओर दूसरों से मन तथा पदार्थ के बारे में मत पूछिये, अपनी श्वास का अवलोकन कीजिये, और उनके बारे में आप को अपने आप पता लग जायेगा ।

जब हवा अन्दर आती है, तो स्पर्श करेगी । जब हवा बाहर जाती है, तो स्पर्श करेगी । यदि आप इस स्पर्श को निरंतर जानते रहें, तो इच्छा (लोभ), दुर्भावना (द्वेष) तथा भ्रम (मोह) के उदय होने का अवसर ही नहीं आयेगा, तथा लोभ, क्रोध, एवं भ्रम की अग्नि क्षीण होती जायेगी ।

वास्तव में वायु के स्पर्श के पहले आप को उसका पता नहीं चल सकता । उसके चले जाने के बाद, उसका पता नहीं चल सकता । केवल उसी समय जब हवा अन्दर या बाहर जाती है, आप उसके स्पर्श की अनुभूति कर सकते हैं । इसे हम वर्तमान क्षण कहते हैं ।

जब हम वायु का स्पर्श अनुभव करते हैं, तब हम जानते हैं कि वहाँ केवल मन एवं पदार्थ हैं । हम स्वयं जानते हैं कि यहां न 'मैं' न कोई अन्य व्यक्ति, न कोई पुरुष या स्त्री है, तथा हम स्वयं समझ जाते हैं कि जो भगवान बुद्ध ने कहा है वह वास्तव में सत्य है । हमें किसी और से पूछने की आवश्यकता नहीं है । जब तक हम आश्वास एवं प्रश्वास का संज्ञान लेते रहते हैं,

वहां कोई 'मैं' या आत्मा नहीं होती।

जब हम यह जानते हैं, तो हमारी दृष्टि शुद्ध होती हैं, यही सही दृष्टि है। उस पल में हम जानते हैं कि नाम एवं रूप अर्थात, मन एवं पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि मन एवं पदार्थ दोनों अलग अलग हैं। हम यदि इस प्रकार नाम एवं रूप के बीच भेद कर सकें, तो हम नाम एवं रूप में भेद करने में सक्षम हो जाते हैं (**नाम-रूप-परिच्छेद-ञाण**)।

जब जब वायु का स्पर्श होता है, यदि हम तब तब उसे जानते हैं, तो हमारा चित्त शुद्ध होता है, तथा हमें उसका लाभ मिलता है। यह मत सोचिये कि एक पल में भी जो लाभ मिलेगा, वह कम है। यह मत सोचिये कि जो लोग ध्यान लगाते हैं, उन्हें अपने अभ्यास से कोई लाभ नहीं मिलता। अब जब कि आप का एक आनन्दमय लोक में जन्म हुआ है तथा आप किसी बुद्ध की शिक्षा के सम्पर्क में आ चुके हैं, तो आप को अनेक लाभ प्राप्त हो सकते हैं। भोजन एवं पेय के विषय में चिंता न करें, किंतु जितना संभव हो उतना प्रयास करें।

संदर्भ सूची

[1]*Buddhist Stories*, I: 299-310; *The Dhammapada Commentary*, I: 95-100.

[2]*Path*, Chapter VIII ¶ 214.

[3]*Op. cit.*, Chapter VIII ¶ 215.

[4]*Op. cit.*, Chapter VIII ¶ 216.

[5]From *Selected Discourses of Webu Sayadaw*, Dhamma Texts Series 3, pp. 59–61.

[6]Kayapasada is the sensitive matter contained in the six sense organs that registers touch, light (sight), sound waves, smells, tastes, and thoughts.

चतुर्थ दिवस, सायं प्रवचन

सावधान व्यक्ति विश्व को ज्योतिर्मय करते हैं

यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।

जो पहले प्रमाद करके (भी) पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है ।

धम्मपद, गाथा १७२

जेतवन में निवास करते समय भगवान बुद्ध ने स्थविर समुञ्जनी के संदर्भ में यह गाथा दी थी ।[१] वे प्रात: एवं अपराह्न दोनों समय नित्य झाडू लगाते रहते थे । एक दिन वे झाडू लेकर वहां गये जहां स्थविर रेवत अपना दिन बिताते थे तथा उन्हें वहां बैठे पाया । उन्हौंने सोचा, 'ये आलसी महोदय धर्मपरायण व्यक्तियों के चढ़ावे का आनन्द लेते हैं, फिर वापस आकर अपने कक्ष में बैठते हैं । क्यों न वे कम से कम एक कक्ष में झाडू लगाते?'

इस बीच रेवत थेर ने विचार किया, 'मैं इस भिक्खु को एक परामर्श दूंगा ।' अत: उन्होंने स्थविर समुञ्जनी से कहा, 'आयुष्मान, यहां आओ, जाकर स्नान करो, फिर वापस मेरे पास आओ ।' स्थविर समुञ्जनी ने वही कया, जो उनसे कहा गया । तब स्थविर रेवत ने चेतावनी देते हुए उनसे कहा, 'आयुष्मान, एक भिक्खु को सदैव सफाई ही नहीं करनी चाहिए ।' तथा उसे सफाई के अतरिक्त और क्या करना चाहिए, इसके विषय में उन्हें बताया । जब भोजन एकत्र करने का समय हो, तो उसे भिक्षा के लिये जाना चाहिये, तथा लौट कर ध्यान लगाना चाहिये । हालांकि, वे एक बार प्रात: तथा एक बार सायं झाडू लगा सकते हैं । स्थविर समुञ्जनी ने बड़ी निष्ठा से स्थविर रेवत के परामर्श का पालन किया, तथा बहुत ही कम समय में उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया ।

उसके पश्चात, सभी कमरे कूड़े से भरे रहने लगे । तो भिक्खुओं ने उनसे पूछा कि वे अब उनकी सफाई क्यों नहीं करते । उन्होंने उत्तर दिया कि पहले वे असावधान थे किंतु अब वे सावधान हो गये हैं । भिक्खुओं ने यह बात जब बुद्ध से कही तो उन्होंने उस गाथा की घोषणा की जिससे हमने प्रारंभ किया है ।

सयाजी ऊबा ख़ीं के प्रशिक्षण के समय बर्मा में ऐसे अनेक व्यक्ति थे। हम आपको बर्मा के उच्च अधिकारियों, जैसे कुछ उत्कृष्ट व्यक्तियों की कहानियां सुनायेंगे। ये लोग 'सावधान व्यक्ति विश्व को ज्योतिर्मय करते हैं' के कथन को चरितार्थ करते हैं।

आनापान से लाभ

हमने स्पष्ट किया है कि आनापान में श्वास का उपयोग एकाग्रता के कर्मस्थान के रूप में करने का लाभ यह है कि श्वास सदैव हमारे साथ होती है। ऐसे समय जब हम श्वास नहीं लेते, केवल तभी होते हैं जब हम अजन्मे शिशु अर्थात भ्रूण हों, डूब रहे हों, या मृत हो चुके हों। अन्य स्थितियां ये हैं, जब श्वास विद्यमान नहीं होती :- जब आप अचेतन अस्तित्व में हों, सूक्ष्म भौतिक या अभौतिक लोक में जन्में हों, यदि आप चतुर्थ समाधि या ध्यान (पालि में, झान) में हों या निरोध प्राप्त कर चुके हों। किंतु यहाँ हम सभी श्वास ले रहे हैं।

बर्मा के पूर्व राष्ट्रपति ने जब साधना प्रारंभ की तो उन्हें लगा कि उनकी श्वास बन्द हो गई है। किंतु जब उन्होंने मां सयामा जी से कहा कि उनकी श्वास बंद हो गई है, तथा अपने कक्ष से बाहर जाने के लिये जब वे उठने लगे, तो मां सयामा जी ने उन्हें समझाया कि उनकी श्वास बंद नहीं हुई थी, अपितु अत्यंत सूक्ष्म हो गई थी। तथापि उन्होंने यह कहते हुए जोर दिया, 'नहीं, नहीं, मैं वास्तव में श्वास नहीं ले रहा हूँ।' उसके पश्चात वे स्नान के लिये चले गये तथा स्नान के बाद वे माँ सयामा जी के पास चकित होकर दौड़ते हुए आये और बोले, 'आप ठीक कह रही थीं। आखिरकार मैं श्वास ले रहा हूँ! ' शारीरिक गतिविधि ने श्वास को प्रबल कर दिया था, तथा वे उसे फिर से अनुभव कर सकते थे। हम श्वास नहीं ले रहे हैं, ऐसी धारणा के पीछे यह कारण संभव हो कि हमारी श्वास सूक्ष्म हो गई हो तथा हमारी समझ इसका पता लगाने के लिये अत्यधिक स्थूल हो। अत: हमें श्वास का पता करते रहने की क्षमता विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि हम सही ढंग से काम करते रहें, तो इसके पुरस्कार अत्यंत महान हो सकते हैं। जैसा कि सयाजी ऊबा ख़ीं ने कहा है, 'केवल उन्हीं की सफलता का आश्वासन दिया जा सकता है, जो उचित उद्देश्य से साधना में जुटे हुए हैं। प्रकृति के

परम सत्य में अंतर्दृष्टि के आधार पर, मन की शक्ति एवं शुद्धता के विकास के साथ, कोई भी व्यक्ति मानव जाति के कल्याण के लिए सही दिशा में अनेक कार्य करने में सक्षम हो सकता है। यह एक आम धारणा है कि उस व्यक्ति की तुलना में जो इतना विकसित नहीं है, जिस व्यक्ति की चित्त-एकाग्रता की शक्ति प्रबल हो, तथा जो स्वेच्छापूर्वक पूर्ण मानसिक संतुलन सुरक्षित कर सके, उसे श्रेष्ठतर परिणाम प्राप्त होंगे।

'अत: वह व्यक्ति जो साधना के एक शिविर का अर्थात प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का सफल अनुभव करता है, उसे निश्चित रूप से अनेक लाभ होते हैं, चाहे वह कोई धर्मपरायण व्यक्ति हो, प्रशासक हो, राजनीतिज्ञ हो, व्यवसायी हो, अथवा कोई छात्र हो।'[२]

जिन सरकारी अधिकारी का पहले उल्लेख किया गया था, वे अपने पद के कार्यकाल के समापन पर ध्यान लगाने के लिए केंद्र पर आये थे। वे अभी भी एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे तथा अनेक सशस्त्र अंगरक्षकों के साथ आये थे। उनकी शिक्षा पश्चिम में हुई थी, तथा दुर्भाग्य से उन्होंने मदिरापान की बुरी आदत पकड़ ली थी। बात यहां तक पहुंच गई कि वे अब जल नहीं, केवल मदिरा पान किया करते। सयाजी एवं सयामा जी के मार्गदर्शन में काम कर के वे डेढ़ घंटे तक स्वेच्छा से गहन ध्यान में जाने में सक्षम हो गये। तथा उन्होंने कहा कि एक बार धम्म में स्थापित हो जाने के बाद उनके लिये पुन: मादक द्रव्य पीना असंभव था। उन्होंने कहा, 'यही वास्तविक सील है।' अब तो स्वयं को नियंत्रित करने के लिये प्रयास करने या तनाव मोल लेने की बात नहीं थी। ये वे ही थे जिन्होंने 'सयामा' अर्थात महिला आचार्य शीर्षक दिया था, जिसे सयाजी ने अनुमोदित किया। बाद में, वे सयामा जी अर्थात महान महिला आचार्य के रूप में जानी जाने लगीं।

वहां एक उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति भी थे, जो इतने मोटे थे कि उन्हें नीचे बैठने में भी कठिनाई होती थी। किंतु जब उन्होंने आनापान करना प्रारंभ किया तो वे ठीक से बैठने लगे, तथा सयाजी एवं मां सयामा जी की सहायता से वे स्वेच्छा से गहन ध्यान में जाने में सक्षम हो गये। एक अन्य व्यक्ति जो पालि के विद्वान थे, वे भी सयाजी एवं मां सयामा जी की सहायता से स्वेच्छा से गहन ध्यान में जाने में

सक्षम हो गये । उन्होंने बताया कि ध्यान लगाना सीखने के पहले, उनकी प्रशासन के लिये कुछ कठिन प्रतिवेदनों, याने रपटों को लिखने में महीनों लग जाते थे । किंतु एकाग्रता विकसित करने के पश्चात, वे उन्हें कुछ दिनों में ही पूरा कर सकने लगे । उन्होंने ही सयामा जी को मां (mother) सायामा कह कर संबोधित करना प्रारंभ किया था । एक आयकर अधिकारी आये थे जो गंभीर दमा (asthma) से पीड़ित रहते थे । वे केंद्र पर पगोडा में जाने के लिए सीढ़ियों पर चढ़ने में भी सक्षम नहीं थे । किंतु उन्होंने भी उपर्युक्त मनोदशाएं प्राप्त कीं, तथा उनको अपने दमा से भी पर्याप्त मुक्ति मिली ।

उन सभी लोगों ने पाया कि साधना से न केवल उनकी आध्यात्मिक सिद्धियों में, अपितु अपने अपने लोक सेवा पदों के कर्तव्यों का दक्षता से निर्वाह करने में भी उन्हें सहायता मिली ।

डॉ. ई.के. नॉटिंघम ने अपने शोध पत्र 'बर्मा में बौद्ध ध्यान' में पूछा है, "संभवतः, एक 'कल्याणकारी राज्य' के निर्माण के लिए, तथा सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक बांध के रूप में प्रयोग करने के लिये, क्या साधना, शांत एवं संतुलित ऊर्जा के भंडार के सृजन में सहायक नहीं हो सकती"? लोक सेवा के उपर्युक्त उच्च अधिकारियों के अपने अपने पदों में सफल योगदान को देखते हुए, हम इस प्रश्न का उत्तर हाँ में दे सकते हैं ।

आपको आनापान के लिए निर्देश देना अत्यंत सरल था । कुछ ही मिनटों में तकनीक समझायी जा सकती है । किंतु उसका अभ्यास अत्यंत कठिन है । सशक्त सति एवं अच्छी समझ की आवश्यकता होती है ।

विशुद्धि मार्ग[३] में आचार्य (बर्मी में, अशिन) बुद्धघोष ने कहा है कि साधक को एक हलवाहे के उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए । वह अपने बैलों से जुताई करने के बाद उन्हें घास चरने के लिये छोड़ देता है, तथा वह स्वयं छाया में विश्राम करता है । बैल दूर तक इधर उधर विचरण कर सकते हैं । किंतु यदि वह कुशल एवं बुद्धिमान है, तो वह उन की तलाश में उनके पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए जंगल में यहां वहां नहीं भटकेगा । इसके बजाय, वह अपनी रस्सी तथा लाठी लेकर सीधे पनघट पर जायेगा जहां बैल पानी पीने एवं स्नान के लिए जाते हैं । जब वह उन्हें

वहां देखता है, तो रस्सी से बांधकर तथा लाठी की सहायता से प्रोत्साहित करता हुआ उन्हें लाता है । इस प्रकार वह उन्हें वापस लाकर, हल में जोत कर अपना काम पुन: प्रारंभ कर सकता है ।

साधक के लिये सति रस्सी की तरह तथा समझ लाठी की तरह है । वह नाक के नीचे, ऊपरी होंठ के ऊपर, जहां वे सामान्य रूप से स्पर्श करते हैं, अपने आश्वास एवं प्रश्वास को ढूंढेगा । इस प्रकार, उसे उन्हें पाने में कोई कठिनाई नहीं होगी, जैसे कुशल हलवाला जलाशय पर अपने बैलों को पाने के लिये सुनिश्चित था । वह श्वास के बोध को सति की रस्सी से सुरक्षित कर सकता है, तथा उनको स्पर्श के स्थान विन्दु पर जोत कर, विवेक की लाठी से प्रोत्साहित कर सकता है ।

यदि साधक सही तरीके से काम करता है, तो निमित्त अर्थात संकेत शीघ्र ही प्रकट होगा । जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, भिन्न भिन्न व्यक्तियों में निमित्त भिन्न भिन्न होता है, किंतु एक बात किसी विशुद्ध मन के निमित्तों में समान है, वह यह कि विशुद्धि का लक्षण काला नहीं, अपितु श्वेत होता है। हमें बार बार उस पर ध्यान देते रहना चाहिए । पूर्वजों को उद्धृत करते हुए बुद्धघोष ने कहा है:-

निमित्ते ठपयं चित्तं नानाकारं विभावयं ।

धीरो अस्सासपस्सासे सकं चित्तं निबन्धति ।। (वि०ट्ठ २-३०)

निमित्त में चित्त को स्थिर रखते हुए, धैर्यवान व्यक्ति, अन्य सभी बातों को दूर रख, आश्वास एवं प्रश्वास में अपने चित्त को बांधता है ।

विशुद्धि मार्ग, अध्याय ८, २१९

यदि हम इस एकाग्रता को विकसित कर सकें, तो यह न केवल हमारे लिए, अपितु सारे विश्व के लिए अत्यंत लाभकारी होगा ।

आपको याद होगा, हमने पहले ही कहा है कि बुद्ध की शिक्षा के सम्पर्क में आने के लिये हमें दस पारमिताओं पर अतीत में एक लंबे समय तक काम करने की आवश्यकता है, तथा जो अभ्यास हमने अतीत में किया है, उसीपर हमारी प्रगति की गति निर्भर करेगी । यहां तक कि बुद्ध के समय में भी अनेक लोग थे जिन्हें निर्वाण नहीं प्राप्त हुआ । किंतु कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्हें अतिशीघ्र जागृति प्राप्त हो गई । ऐसा ही दोनों प्रमुख शिष्यों के साथ हुआ ।

दो प्रमुख शिष्य[४]

उपतिस्स एवं कोलित नाम के दो मित्र थे । वे दोनों अत्यंत समृद्ध थे । एक रात जब वे एक नाटक देख रहे थे, तो नाटक के अंत में उन्होंने एक मृत्यु का दृश्य देखा । चूंकि वे अपने दिन प्रतिदिन के जीवन में ऐसी वास्तविकताओं के अभ्यस्त नहीं थे, इससे वे अत्यंत प्रभावित हुए । उन्हें यह बड़ी गहराई से एहसास हुआ कि एक दिन उनकी भी मृत्यु होगी । अत: उन्होंने एक दूसरे से कहा, 'यदि मरण की प्रक्रिया होती है, तो अमरण की भी प्रक्रिया होनी चाहिए ।' तथा उन्होंने उसे प्राप्त करने का संकल्प लिया । वे अपनी संपत्ति का त्याग कर विद्वान गुरुओं की खोज में निकल पड़े । राजगह या आधुनिक समय के राजगिरि में गुरु संजय से उनकी भेंट हुई, तथा वे उनके शिष्य बन गए । बुद्ध की जागृति से पहले, छ: सबसे अधिक ज्ञात गुरुओं में से संजय भी एक थे । वे इस सीमा तक विकसित हो गये थे, कि किसी मृतक की केवल एक अस्थि देखकर ही बता देते थे, कि उस व्यक्ति का पुनर्जन्म कहां हुआ है । किंतु उन्हें दुख का, अनित्य (पालि में अनिच्च) का तथा अनात्म (पालि में अनत्ता) का ज्ञान नहीं था ।

दोनों मित्रों ने उनके मार्गदर्शन में अध्ययन किया, तथा कुछ ही समय में उनकी शिक्षा में पारंगत हो गये, किंतु उन्होंने पाया कि संजय उन्हें अमरत्व में प्रशिक्षित नहीं कर सकते, अत: उन्होंने किसी श्रेठतर गुरु की खोज करने का निर्णय लिया । एक दिन उपतिस्स की, जो बाद में सारिपुत्त के नाम से जाना जाने लगे, अस्सजी से, जो बुद्ध द्वारा सबसे पहले प्रशिक्षित पांच तपस्वी शिष्यों में सबसे कम आयु के थे, भेंट हुई । अस्सजी ने बुद्ध की शिक्षा से एक गाथा सुनायी, तथा उसके आधे में ही, अर्थात केवल दो पंक्तियों में ही सारिपुत्त जागृति के पहले चरण के फल की अवस्था में स्थापित हो गये । वे एक सोतापन्न हो गये । जो गाथा अस्सजी ने सुनायी थी वह यह थी :-

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह ।
तेसं च यो निरोधो, एवं वादि महासमनो ।।

जो भी धम्म अनुबंधित हैं, तथागत ने उनके कारणों एवं उनके समापन को स्पष्ट कर दिया है; महाश्रमण की यही शिक्षा है ।

सारिपुत्त तब अपने मित्र से मिलने गये तथा अस्सजी से अपनी भेंट के विषय में उन्हें बताया। अस्सजी में व्याप्त शालीनता, नम्रता तथा समभाव के विषय में एवं उनके गुरु बुद्ध गौतम के बारे में उन्हें बताया। उन्होंने वह गाथा भी दोहरायी तथा कोलित भी, जो बाद में महा मोग्गल्लान के नाम से जाना जाने लगे, सोतापन्न हो गये।

वे बुद्ध के पास गये तथा उन्होंने भिक्खु के रूप में प्रव्रज्या व उपसंपदा ली एवं अपनी साधना प्रारंभ कर दी। बुद्ध ने जैसे ही उन्हें आते देखा, वे समझ गये कि ये उनके दो प्रमुख शिष्य होंगे। अत: बुद्ध ने अपने आसपास के भिक्खुओं से कहा, 'ये दो मित्र, कोलित एवं उपतिस्स आ रहे हैं। ये दोनों मेरे प्रमुख शिष्य होंगे। इनकी जोड़ी धन्य है।' कई भिक्खु अपने गृहस्थ जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण थे एवं उन्होंने अपनी अस्वीकृति व्यक्त की, किन्तु बुद्ध ने स्पष्ट किया कि इन दोनों मित्रों ने यह पद प्राप्त करने के लिये अपने अनगणित जन्मों में अथाह परिश्रम किया था, तथा उन्होंने उनके अतीत के कुछ जन्मों का उदाहरण दिया। बुद्ध ने कहा, 'भिक्खुओं! यही उनकी आकांक्षा रही है, मैं पक्षपात के साथ कोई कार्य नहीं करता।'

तो आप देख सकते हैं कि अन्य व्यक्ति जो अच्छी प्रगति कर रहे हों, उनके प्रति ईर्ष्या करना अपना समय एवं ऊर्जा व्यर्थ करना है। धम्म में कोई पक्षपात नहीं हो सकता। हम जो अर्जित करते हैं, वही हमें प्राप्त होता है।

सारिपुत्त एवं मोग्गल्लान ने बुद्ध को अपने वर्तमान जीवन की कहानी सुनाई तथा स्पष्ट किया कि सोतापन्न होने के बाद वे अपने शिक्षक संजय के पास वापस गये थे। उन्होंने कहा, "हम उन्हें आप के नेतृत्व के अन्तर्गत ले आना चाहते थे, तथा उनकी साधना के खोखलेपन के विषय में हमने उन्हें बताया एवं यहाँ आने के लाभ के विषय में उनसे बात की। किन्तु उन्होंने कहा, 'मेरे लिये अब एक शिष्य बनना किसी सुराही का एक प्याले में परिवर्तित हो जाने जैसा होगा। मेरे लिये एक शिष्य की तरह जीना संभव नहीं है।'" जब उन्होंने बताया कि अनेक लोगों का बुद्ध की ओर झुकाव हो गया था तथा पूछा कि अब उनका क्या होगा, तो संजय ने उन से पूछा, 'इस संसार में अधिकांश व्यक्ति बुद्धिमान हैं या मंद?' तो उत्तर था 'महोदय, इस संसार में अनेक मंद हैं, किंतु बुद्धिमान बहुत कम'। तो संजय ने कहा, 'ठीक,

बुद्धिमान व्यक्ति बुद्धिमान गौतम के पास जाएंगे तथा मंद मेरे जैसे मंद के पास आएंगे ।' तथा उन्होंने उनको लौटा दिया ।

जब उन्होंने उन्हें अपनी कहानी सुनाई, तो बुद्ध ने घोषणा की, 'भिक्खुओं, अपने गलत दृष्टिकोण के कारण, संजय अनावश्यक को आवश्यक तथा आवश्यक को अनावश्यक समझता है । अनावश्यक को दूर रखते हुए, आपने आवश्यक को आयोजित किया है ।'

तो सारिपुत्त और महामोग्गल्लान ने अर्हत्व के लिए साधना प्रारंभ कर दी । सारिपुत्त राजगह के निकट भालू की मांद नामक एक गुफा में गये । तथा मोग्गल्लान मगध में कल्लवलपुत्त के निकट जंगल में चले गये । उन्होंने अपनी साधना में महान प्रयास डाला किंतु फिर भी, वे अपनी तंद्रा पर नियंत्रण पाने में सक्षम न हो सके । उन्होंने अपनी पूरी कोशिश की कि उन्हें नींद न आये, किंतु वे अपने शरीर एवं सिर को सीधा रखने में असमर्थ थे ।

किंतु बुद्ध ने अपने शिष्यों के लिए एक आचार्य के उत्तरदायित्व के साथ, उन पर से अपनी दृष्टि नहीं हटाई । अपनी अलौकिक दृष्टि के द्वारा, वे मोग्गल्लान की कठिनाइयों को जान गये । तथा वे उनके समक्ष प्रकट हुए । जैसे ही उन्होंने अपने सामने बुद्ध को खड़े पाया, तो उनकी अधिकांश तंद्रा, थकान, तथा व्याकुलता लुप्त हो गई ।

बुद्ध ने पूछा, 'मोग्गल्लान ! ऊंघ रहे हैं न ?' उन्होंने कहा, 'भन्ते ! हाँ' तब बुद्ध ने उन्हें निर्देश दिया, 'इसलिये, मोग्गल्लान ! जिस संज्ञा से युक्त होने पर तंद्रा आती हो, उस संज्ञा को मन में स्थान न दें । उस संज्ञा को बार बार मन में न लायें । इस प्रकार, यह संभव है कि जो तंद्रा है वह दूर हो जाय । किंतु यदि वह न जाय, तो जो उपदेश सुने हैं, जैसे कण्ठस्थ किया है, उसी के अनुसार उस धर्म पर तर्क वितर्क कर, विचार कर, मन से मनन करने से यह संभव है कि यह तंद्रा चली जाय । यदि तंद्रा बनी रहती है, तो जो भी उपदेश सुने एवं कण्ठस्थ किये हैं, उनका विस्तार पूर्वक पाठ करना चाहिए । यदि तब भी तंद्रिल हैं, तो दोनों कानों को रगड़ें तथा अपने हाथों से अपने शरीर के अंगों को मलें । यदि अभी भी तंद्रिल हैं, तो अपने आसन से उठ कर अपनी आँखों पर पानी के छींटे मार कर, चारों ओर सभी दिशाओं में देखें,

एवं ऊपर तारागण तथा नक्षत्रों को देखें। यदि तंद्रा अभी भी न गई हो, तो रात और दिन दोनों में, आलोक अर्थात प्रकाश की संज्ञा को मन में स्थान दें। अत: स्वच्छ एवं निर्मल चित्त से एक देदीप्यमान मानस जागृत करें। यदि यह भी काम नहीं करता, तो ध्यान को बिना इधर उधर भटकने देते हुए, उसे शरीर में बनाए हुए, चंक्रमण करें, अर्थात आगे पीछे चलें एवं आगे पीछे चलने का बोध बनाए रखें। यदि यह सब विफल होता है, तो सति के साथ स्पष्ट रूप से अवगत रहते हुए, सिंह मुद्रा में – अर्थात दाहिने करवट, एक पैर को दूसरे पैर पर रख कर – मन में उठने का विचार रखते हुए लेट सकते हैं । जब जागें तो यह सोचते हुए कि 'मुझे शयन एवं विश्राम के सुख में तथा नींद के आनन्द में लिप्त नहीं होना चाहिए' शीघ्र उठ जाना चाहिए।

अत: आप देख सकते हैं कि यहां तक कि प्रमुख शिष्यों के लिए भी आनापान साधना सरल नहीं है। बुद्ध के संरक्षण तथा मार्गदर्शन के कारण मोग्गल्लान अपनी साधना में सक्षम हुए, एवं एक सप्ताह के भीतर उन्होंने अर्हत्व प्राप्त किया। सारिपुत्त को एक सप्ताह और लगा, क्योंकि धम्म को समझने में बुद्ध के बाद वे दूसरे थे, और इसके लिये उन्हें और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता पड़ी।

राजा पसेनदि को बुद्ध का परामर्श[५]

बुद्ध ने तंद्रा से बचने के लिए एक गृहस्थ को भी परामर्श दिया था। एक समय, कौशल के राजा प्रसन्नजीत (पालि में, पसेनदि) बुद्ध के दर्शन के लिए आये, वे बहुत थके लग रहे थे तथा चक्कर काटते हुए टहल रहे थे। बुद्ध ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने विश्राम करने के पहले ही वहां आये थे। राजा ने उत्तर दिया कि नहीं, वे भोजन के पश्चात सदैव ऐसा कष्ट भोगते थे। ऐसा था कि उनकी दाल, सब्जी, चटनी के साथ बाल्टी भर उबले चावल खाने की आदत थी। अत: बुद्ध ने पसेनदि को बताया कि अधिक भोजन सदैव कष्ट लाता है, तथा निम्न गाथा सुनायी :-

''मिद्धी यदा होति महग्घसो च, निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो''ति॥ (ध॰ प॰ ३२५)। –

यदि कोई व्यक्ति अकर्मण्य है, अधिकाधिक भोजन करता है, अपना अधिकांश समय नींद में बिताता है, अनाज पर पले एक बड़े सूअर की तरह बैठता, लुढ़कता रहता है,

ऐसा अनाड़ी बारंबार गर्भ में प्रवेश करेगा ।

तथा उन्होंने निम्नलिखित गाथा के साथ छंद संपन्न किया :-

“मनुजस्स सदा सतीमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने।
तनुकस्स भवन्ति वेदना, सणिकं जीरति आयुपालय”न्ति॥ (सं॰ नि॰ १.१२४)।

यदि कोई व्यक्ति सतत अवगत है, तथा भोजन में संयमित है, तो उसका कष्ट साधारण होगा,

वह शनैः शनैः वृद्ध होगा, एवं लंबे समय तक जीवित रहेगा ।

बुद्ध ने राजा के भांजे सुदर्शन (पालि में, सुदस्सन) को यह गाथा सिखायी तथा राजा के भोजन के समय इसका पाठ करने के लिए कहा । कुछ समय बाद राजा थोड़े से चावल से ही संतुष्ट होने लगे तथा वे दुबले एवं प्रसन्न रहने लगे ।

जागृति की तैयारी

हमने कई बार अतीत के कुशल कार्यों, अर्थात दस पारमिताओं के विकास के महत्व का उल्लेख किया है । आप में से कुछ लोग इस बात से चिंतित हो सकते हैं कि आप में पारमिताओं का अच्छा भंडार है या नहीं । सयाजी ऊबा ख़ीं ने कहा है कि, हम यह मान सकते हैं कि, केवल वही व्यक्ति जो सद्गुणों के संचय में परिपक्व हैं, निर्वाण का संकल्प लेने के लिये प्रेरित होंगे, तथा बौद्ध साधना में गंभीरता से प्रशिक्षण लेने के लिए इच्छुक होंगे ।

हम एक अर्हत बनने के लिए पारमितायें (पालि में,पारमी) एकत्र कर रहे हो सकते हैं । इसमें लगभग एक सौ से एक हजार कल्प तक लग सकता है ।[६] किन्तु यदि कोई इससे भी उच्चतर लक्ष्य रखता है तो उसे और भी लंबे समय तक काम करना होगा । यदि कोई अस्सी प्रमुख शिष्यों में से एक होना चाहता है, तो उसे दस हजार कल्प लगेगा । जो दो प्रमुख शिष्यों में से एक होना चाहता है, उसके लिए और भी अधिक तैयारी की आवश्यकता है । प्रत्येक बुद्ध (पालि में, पच्चेक बुद्ध) जो दूसरों को शिक्षा नहीं देते, बनने के लिये इससे भी अधिक तैयारी लगती है । तथा शिक्षक बुद्ध बनने के लिये तीन स्तर की तैयारियां हैं :- शिक्षक बुद्ध जिनकी सबसे विकसित गुणवत्ता विवेक (पञ्ञा) है; शिक्षक बुद्ध जो श्रद्धा में सबसे प्रबल हैं; अन्त में एक शिक्षक बुद्ध जिनमें सर्वाधिक पुरुषार्थ या वीर्य है, बनने के लिये सोलह

असंखेय तथा एक सौ हजार कल्प लगते हैं । अत: इस कल्प के भावी बुद्ध मैत्रेय (पालि में, मेत्तेय) ने, जो उस श्रेणी के बुद्ध हैं जिन्हें तैयारी के लिये सबसे अधिक समय लगता है, गौतम बुद्ध के पहले से ही अपनी पारमिताओं पर काम करना प्रारंभ कर दिया था ।

हमने आचार्य बुद्धघोष के विशुद्धिमार्ग (पालि में, विसुद्धिमग्ग) से कई बार उद्धृत किया है । जब वे पहली बार भारत से श्रीलंका गये थे, तो पालि ग्रन्थों की टीकाओं का अध्ययन करने के लिये । जब उन्होंने ग्रंथों को देखने का अनुरोध किया, तो श्रीलंका में भिक्खुओं ने उन्हें एक गाथा की दो पंक्तियां दी तथा उनकी निष्ठा एवं समझ के परीक्षण के रूप में उन पर एक टिप्पणी लिखने के लिए कहा । वह गाथा थी :-

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं ।

आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं ।। (सं० १-१४)

शील सदाचार में प्रतिष्ठित होकर, जो बुद्धिमान व्यक्ति जब समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, तब वह उद्योगी व ज्ञानवान पुरुष, भिक्खु हो कर इस जंजाल (भवबंधन) को छिन्न भिन्न कर सकता है ।

परिणामस्वरूप एक पुस्तक हुई, जो अंग्रेजी अनुवाद में आठ सौ से अधिक पृष्ठों की है तथा पालि ग्रंथों में पायी जाने वाली समूची शिक्षा का सार है । भिक्खुओं ने जब यह टीका, विशुद्धिमार्ग, पढ़ी तो वे बोले कि बुद्धघोष को अवश्य ही बोधिसत्व (पूर्ण जागृति के प्रयोजन वाला) अर्थात भावी बुद्ध, मैत्रेय होना चाहिए ।

सयाजी ऊ बा ख़ीं ने, इस टीका की चर्चा करते समय कहा कि यदि हम इसे एक हजार भागों में विभाजित करें, तत्पश्चात सयाजी की शिक्षा को एक हजार भागों में विभाजित कर उनकी तुलना करें तो, वे पूरी तरह एक दूसरे के समान निकलेंगी ।

अब हमें काम न करने के लिए एक बहाने के रूप में किसी आकांक्षा का उपयोग नहीं करना चाहिए । केवल एक बुद्ध ही किसी आकांक्षा की पुष्टि कर सकते हैं तथा कोई निश्चित भविष्यवाणी कर सकते हैं । ऐसा इसलिये कि केवल एक बुद्ध ही काफी दूर तक अतीत एवं भविष्य में देख सकते हैं कि क्या किसी व्यक्ति ने

पर्याप्त तैयारी की है, तथा उसमें उपनिश्रय अर्थात आकांक्षा को पूरा करने की क्षमता है।

विशुद्धिमार्ग में एक भिक्खु का प्रकरण आता है।[८] स्थविर (पालि में, थेर) महा संघरक्षित (पालि में, महा संघरक्खित) से, जब वे अपनी मृत्युशय्या पर पड़े थे, पूछा गया कि क्या वे जागृति प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं। एक युवा भिक्खु ने उनसे कहा, 'भन्ते, लोग यहां बारह बारह लीग दूर से, यह सोचकर कि आप निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं, आए हैं। यदि आप एक साधारण व्यक्ति के रूप में मर जाते हैं, तो अनेक लोग निराश होंगे।'

थेर ने कहा, 'आयुष्मान, यह सोच कर कि मैं मेत्तेय बुद्ध को देखूंगा, मैंने अंतर्दृष्टि के लिए प्रयास नहीं किया। मेरी बैठने में सहायता करो तथा मुझे एक अवसर दो।' युवा भिक्खु ने उनकी बैठने में सहायता की तथा कक्ष से बाहर जाने लगा। जैसे ही वह निकलने लगा, थेर ने अंगुलिस्फोट किया अर्थात चुटकी बजाई, यह इंगित करने के लिए कि उन्होंने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है।

भिक्खु एकत्रित हुए, तथा उनसे बोले कि मृत्यु की घड़ी में सर्वोच्च पद पाना अत्यंत कठिन होता होगा, किन्तु उन्होंने कहा, 'मित्रों, यह कोई मुश्किल नहीं था। लेकिन मैं बताता हूं कि क्या कठिन होता है। मित्रों, मैं देख रहा हूं कि जब से मैं भिक्खु बना तब से मेरे द्वारा कोई भी कार्य अनजाने में तथा बिना सति के नहीं हुआ।' तो आप देख सकते हैं कि हमारे लिये, जो अभी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाये हैं, सतिमान अर्थात जागरूक रहना कितना कठिन है। तथा यदि भिक्खु ने कहा कि निर्वाण प्राप्त करना सरल था, तो यहाँ अर्थ यह है कि, जब सभी आवश्यक कार्य पहले से ही संपन्न हो चुके हों, तो अंतिम लक्ष्य सरल हो जाता है। जब तक हमने अपने आप को तैयार नहीं कर लिया है, तब तक यह केवल कठिन ही नहीं, असंभव है।

आकांक्षाओं के विषय में एक और बात जानने की यह है कि, यदि हममें कोई आकांक्षा रही हो तथा एक बुद्ध ने उसकी पुष्टि की हो, तो यह निश्चित है कि हम जागृति तक तब तक नहीं पहुँचेंगे जब तक सही समय न आ जाय। किन्तु जितनी ही अधिक हम तैयारी करेंगे, जितना ही अधिक परिश्रम करेंगे, उतनी ही सरलता से

हमारी अभिलाषाएं पूरी होंगी । यदि हम साधना न करें तो हमें अत्यधिक कष्ट सहना पड़ सकता है ।

अत्यधिक प्रयास, सोण का प्रकरण[९]

हमने प्रयास करने के विषय में बहुत बातें की हैं, किन्तु अब हम एक ऐसे भिक्खु का प्रकरण बताते हैं जिन्होंने अत्यधिक प्रयास किया था । बुद्ध के समय में सोण नामक एक युवक था, जो इतना सुकुमार था कि उसके पैरों के तलवों में बाल उग गये थे । एक दिन राजगह के सम्राट बिम्बिसार ने अस्सी हजार गांवों के प्रतिनिधियों को एकत्रित किया तथा सोण को आने के लिए संदेश भेजा । सोण के माता पिता ने उसको चेतावनी दी कि यद्यपि सम्राट ने उसे वहां इसलिये बुलाया था कि वे उसके तलवे देखना चाहते थे, उसे सावधान रहना चाहिए तथा अपने तलवों को सम्राट की ओर करके उनका अनादर नहीं करना चाहिये । उसे तलवों को ऊपर करते हुए पर्यंकबद्ध होकर, अर्थात पालथी मार कर बैठना चाहिये जिससे सम्राट उन्हें देख सकें । सोण महल में ले जाया गया तथा वह वहां वैसे ही बैठा जैसे उसे बताया गया था । सम्राट ने गृहस्थ जीवन के विषय में प्रतिनिधियों को निर्देश दिया । तत्पश्चात वे बोले, 'अब जाओ, बुद्ध को नमन करो । वे आगे आने वाले जन्मों के लक्ष्यों के विषय में आप को निर्देश देंगे ।' वे बुद्ध के यहां गये जिन्होंने उन्हें शिक्षा दी । उन्होंने त्रिरत्नों में शरण लेकर विदा लिया । किन्तु सोण वहां रुक गये एवं उन्होंने एक भिक्खु बनने के लिये अनुरोध किया ।

जब उन्होंने अपना काम प्रारंभ किया तो वे चंक्रमण करते (अर्थात चक्कर काट कर टहलते) हुए प्रगति के लिए प्रयास करने लगे, तथा उनके सुकुमार पैरों में फफोले पड़ गये । चंक्रमण स्थान रक्त से ढक गया । अत: बुद्ध उनके निकट गये तथा अपने लिये तैयार किये गये आसन पर बैठे । उन्होंने सोण से पूछा, "हे सोण ! जब तूं एकान्त में विचार कर रहा था, तो क्या तेरे मन में यह वितर्क पैदा नहीं हुआ कि भगवान के जितने भी प्रयत्नशील शिष्य हैं, मैं उनमें से एक हूं । तथापि मेरा चित्त चित्त-मलों से विमुक्त नहीं है । मेरा परिवार अभी भी समृद्ध है । मैं इस धन का उपयोग कर पुण्य प्राप्त कर सकता हूं । मान लो कि मैं गृहस्थ जीवन में पुन: लौट जाऊं तथा धन का उपयोग कर पुण्य अर्जित करूं?'" स्पष्टत: सोण सोचते थे कि

अतीत में उन्होंने मुक्ति के लिये पर्याप्त पारमी नहीं अर्जित की थी । किन्तु उनकी समस्या यह नहीं थी ।

बुद्ध ने उनसे आगे पूछा, 'क्या तूं गृहस्थ जीवन में वीणा वादन में कुशल था?'

'भन्ते ! हाँ ।' सोण ने उत्तर दिया ।

'जब तुम्हारी वीणा के तार आवश्यकता से अधिक कसे होते थे, तो क्या तुम्हारी वीणा से अच्छे स्वर निकलते थी, क्या वह कमनीय रहती थी?'

उत्तर था 'भन्ते ! नहीं ।'

'जब तुम्हारी वीणा के तार बहुत ढीले होते थे, तो क्या उस समय तुम्हारी वीणा से अच्छे स्वर निकलते थे, क्या वह कमनीय रहती थी?'

तथा पुन: उत्तर था नहीं ।

'जब तुम्हारी वीणा के तार न तो अवश्यकता से अधिक कसे होते थे, और न ही बहुत ढीले होते थे, किन्तु सामान्य रूप से तने रहते थे, तो क्या तब तुम्हारी वीणा से अच्छे स्वर निकलते थे तथा क्या वह कमनीय रहती थी?'

'भन्ते ! हाँ ।' सोण ने उत्तर दिया ।

'इसी प्रकार, हे सोण ! अत्यन्त प्रयत्नशील होना उद्धतपन का कारण हो जाता है, तथा बहुत कम प्रयास आलस्य की ओर ले जाता है । अत: तुम समुचित संतुलित ऊर्जा के साथ काम करने का निश्चय कर, (श्रद्धा आदि) आध्यात्मिक इन्द्रियों में समभाव प्राप्त कर । तथा ऐसा करते हुए निमित्त अर्थात ध्यान के विषय को ग्रहण कर ।'

सोण ने उत्तर दिया, 'भन्ते ! अच्छा ।'

संदर्भ सूची

१. *Buddhist Legends*, III, pp. 5-6.
२. "The Real Values of True Buddhist Meditation," in *Dhamma Texts*, 1985, The Sayagyi U Ba Khin Trust.
३. Chapter VIII, ¶ 219.
४. See *The Book of the Discipline*, IV, pp. 52-56; *Buddhist Legends*, I, pp. 198-204; and *The Gradual Sayings*, IV, pp. 50-54.
५. *The Kindred Sayings*, I, p. 108 and *Buddhist Legends*, III, pp. 76-78, 206.
६. See *What Buddhism Is* and "A Treatise on the Paramis" (in *The All-Embracing Net of Views*), p. 325.
७. See *The Path of Purification*, p. xxii (quoting from the Mahavamsa).
८. Chapter 1, ¶ 135.
९. *The Book of the Discipline*, IV, pp. 236-246.

पंचम दिवस, प्रात: प्रवचन

मनोपुबङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया । मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा ।

ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कं व वहतो पदं ।।

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं । जब कोई व्यक्ति अपने मन को मैला करके कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब दु:ख उसके पीछे ऐसे हो लेता है जैसे गाड़ी के चक्के बैल के पैरों के पीछे पीछे हो लेते हैं ।

धम्मपद, गाथा १

चक्खुपाल की कथा

बुद्ध के समय, एक भिक्खु थे जो अर्हत हो गए तथा उसी समय उन्होंने अपनी दृष्टि खो दी ।[१] यहां तक कि एक अर्हत भी कारण कार्य विधान से अछूता नहीं होता, तथा जब तक उसका भौतिक शरीर अपनी मानसिक गतिविधियों के साथ विद्यमान रहता है, अतीत में किये गये अनैतिक कर्मों का फल, रोग आदि के रूप में प्रकट हो सकता है । किसी जागृत व्यक्ति तथा एक साधारण व्यक्ति के बीच अंतर यह है कि जागृत हो जाने के बाद, व्यक्ति में पीड़ा या आनन्द से कोई संघर्ष तथा प्रतिक्रिया नहीं होती । अत: कोई मानसिक कष्ट नहीं होता ।

कुछ भिक्खु उस विहार में आये जहां ये अर्हत वास कर रहे थे तथा वे चारों ओर दृश्यावलोकन करने लगे थे, क्योंकि बुद्ध एवं अस्सी महान शिष्य भी वहीं थे । किन्तु भारी वर्षा ने उन्हें भिक्खु चक्खुपाल का दर्शन करने से रोक दिया, अत: उन्होंने प्रात: जाने का निर्णय लिया । रात में बारिश रुक गई तथा चक्खुपाल चंक्रमण के लिये बाहर आ गये । वर्षा के कारण, चंक्रमण पथ कीड़ों से ढंक गया था । चूंकि चक्खुपाल दृष्टिहीन थे, उनके पैर उन कीटकों पर पड़े तथा अनेक की हत्या हो गई । भिक्खु जब उनके दर्शन के लिये प्रात: आये तो उन्होंने उन कीटकों को देखा तथा वे बुद्ध को सूचित करने पहुंचे । उन्होंने कहा, 'जब वे दृष्टिवान थे, तो वे इधर उधर पड़े रहते थे तथा सभी समय सोते रहते थे । अब जब कि वे दृष्टिहीन हैं तो उन्होंने चंक्रमण की ठान ली है '

जब उन्होंने कहा कि चक्खुपाल ने अनेक कीटों को मार डाला था, तो बुद्ध ने उन से पूछा, 'क्या तुमने उन्हें मारते हुए देखा था?' उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं । 'जैसे तुमलोगों ने उन्हें मारते

हुए नहीं देखा था, उसी प्रकार, उन्होंने उन जीवित प्राणियों को नहीं देखा था। जो लोग अकुशल प्रवृत्तियों से मुक्त हो चुके हैं, उनमें मृत्यु का कारण बनने का कोई इरादा नहीं होता।' तो हम देख सकते हैं कि किसी कर्म से जुड़ी मानसिक इच्छा ही कारण तथा उनके परिणाम के विधान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है।

भिक्खुओं ने पूछा कि यह कैसे हो सकता है कि कोई व्यक्ति जो अर्हत हो गया हो वह अंधा हो जाय। उत्तर था, 'अपने अतीत के संस्कारों अर्थात इच्छाधारी कृत्यों के प्रभाव के माध्यम से।' तथा बुद्ध ने भिक्खुओं को चक्खुपाल के पिछले जन्म की कहानी सुनाई जिसके कारण वे दृष्टिहीन हुये थे।

अपने पिछले जन्म में चक्खुपाल एक चिकित्सक थे। उन्होंने एक महिला की चिकित्सा की थी जिसकी आँखों में कष्ट था। महिला ने वादा किया कि यदि वे उसे ठीक कर दें, तो वह अपने बच्चों समेत उनकी दासी बन जायेगी। उपचार सफल हुआ किन्तु महिला का दासी बनने का विचार बदल गया तथा उसने आँखें न ठीक होने का नाटक किया।

चिकित्सक को पता चल गया कि वह झूठ बोल रही थी, अत: उन्होंने बदला लेने का निर्णय लिया। उन्होंने सोचा, 'मुझे इसके शुल्क की आवश्यकता नहीं है। इसलिये मैं इसे दृष्टिहीन कर दूंगा।' तथा उन्होंने उसे एक लेप दिया जिसे उससे लगाने के लिये कहा, जिससे उसकी दृष्टि चली गयी। बुद्ध ने अपने स्पष्टीकरण का समापन उस गाथा से किया जिसे हमने धम्मपद से उद्धृत किया है; यह बताती है कि अतीत में किये गये कर्मों का फल अनिवार्य रूप से कभी न कभी मिलता ही है :-

मनोपुबङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया। मनसा चे पदुट्ठेन, भासति वा करोति वा।

ततो नं दुक्खमन्वेति, चक्कं व वहतो पदं॥

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन को मैला करके कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब दु:ख उसके पीछे ऐसे हो लेता है जैसे गाड़ी के चक्के बैल के पैरों के पीछे पीछे हो लेते हैं।

इस कथा में हम कर्म के उस पहलू को देखते हैं जिसमें संस्कारों अर्थात इच्छाशक्तिपूर्ण कृत्यों का प्रतिकार होता है। एक पहलू निरंतरता का भी है, अर्थात व्यक्तिगत विशेषताओं, प्रभावों, प्रवृत्तियों इत्यादि का पुनर्जन्म चक्र (संसार) में जीवन पर्यन्त संचरण। एक अर्हत सभी अशुद्धियों से मुक्त होता है, किन्तु जब तक उसके शरीर एवं मन निकाय विद्यमान हैं, स्वयं द्वारा बोये गये बीजों का फल तो उसे भोगना ही पड़ता है। बुद्ध एवं अर्हत नये कर्म अर्जित नहीं करते,

क्योंकि उन्होंने अज्ञानता एवं तृष्णा रूपी जड़ों को नष्ट कर दिया होता है, किन्तु अन्य सभी प्राणियों की तरह वे भी अतीत में किए गए अच्छे या बुरे कार्यों के अपरिहार्य परिणाम से मुक्त नहीं होते। मन सभी कार्यों का अगुआ है। वह कार्य निष्पादन तथा कार्यों की प्रतिक्रिया, दोनों पहलुओं में प्रमुख तत्व के रूप में भाग लेता है। यह मन ही है जो कार्यों को आकार देता है तथा उन्हें नियंत्रित करता है। वाणी एवं कार्य भी मन द्वारा उत्पादित होते हैं।

मट्ठकुण्डली की कथा

धम्मपद की इस पहली एवं दूसरी गाथा में, जिसे हम अब देखेंगे, मनुष्य जीवन में मन की अपार भूमिका को बुद्ध महत्व देते हैं। उन्होंने कहा कि कोई कार्य अच्छा है या बुरा, यह मनोदशा की शुद्धता अथवा अशुद्धता पर निर्भर करता है। तथा वे इस तथ्य की बात करते हैं कि ऐसे कर्मों के परिणाम अनिवार्य होते हैं :-

मनोपुबङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया। मनसा चे पसन्नेन, भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति, छाया व अनपायिनी॥

मन सभी धर्मों (प्रवृत्तियों) का अगुआ है, मन ही प्रधान है, सभी धर्म मनोमय हैं। जब कोई व्यक्ति अपने मन को उजला रख कर कोई वाणी बोलता है, अथवा शरीर से कोई कर्म करता है, तब सुख उसके पीछे ऐसे हो लेता है जैसे कभी संग न छोड़ने वाली साया साथ साथ चलने लगती है।

धम्मपद, गाथा २

यह दूसरी गाथा पहले की पूरक है। पहली ने सिखाया है कि बुराई का परिणाम बुरा होता है। यह हमें सिखाती है कि अच्छे का परिणाम अच्छा होता है। यह गाथा मट्ठकुणडली के संदर्भ में कही गयी थी। वह एक ऐसे धनी व्यक्ति के पुत्र थे जो अतिशय कृपण था।[२] बालक पीलिया से पीड़ित था, तथा मृत्यु के निकट आ गया था, क्योंकि उसके पिता पैसा खर्च करने से इतना डरते थे कि, वे अपने बेटे की चिकित्सा करवाने के लिये कोई वैद्य भी नहीं बुलाते थे। अंत में जब उन्होंने वैद्य को बुलाया तो बहुत देर हो चुकी थी।

बुद्ध ने मट्ठकुण्डली की दुखद स्थिति जानी तथा वे उसके घर गये जिससे कि वह बालक उन्हें मृत्यु से पहले देख ले। बुद्ध जानते थे कि तब पवित्र हृदय के साथ उसका देहान्त होगा। परिणाम स्वरूप, वह बालक एक देव लोक में पुनर्जन्म लेगा तथा वहाँ धम्म-शिक्षा प्राप्त कर जागृति के

पहले चरण तक पहुंचने में सक्षम होगा, एवं उसके पिता भी अपने बेटे का भाग्य देखकर, वही पद प्राप्त करेंगे ।

पटाचारा की कथा

यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं । एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं ।।

(पंच स्कंध के) उदय-व्यय को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से, उदय-व्यय को देखने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन श्रेयष्कर होता है ।

धम्मपद, गाथा ११३

यह गाथा पटाचारा के संदर्भ में दी गयी थी ।[३] वह श्रावस्ती (पालि में सावत्थी) के एक चालीस करोड़ के धनी व्यापारी की पुत्री थी । जब वह बड़ी हुई, तो उसके माता पिता ने उसे सात मंजिलें ऊंचे महल में रख कर उस पर पहरा लगवा दिया, किन्तु उसने अपने सेवक के साथ दुराचार किया । यह जानते हुए कि उसके माता पिता का अनुमोदन कभी नहीं प्राप्त होगा, वह एवं सेवक भाग गये । वे दूर के एक गांव में रहने लगे, पति कृषि करता तथा वन में से ईंधन के लिये लकड़ियां एवं पत्तियां एकत्रित करता; पटाचारा भोजन एवं धुलाई-सफाई का काम करती ।

कुछ समय बाद वह गर्भवती हो गई । उसने अपने पति से विनती की कि वह उसे उसके माता पिता के पास ले चले । वह कहने लगी, 'एक माँ और बाप के हृदय में अपनी संतान के लिए सदैव कोमल स्थान होता है ।' किन्तु पति को डर था कि उसके माता - पिता उसके साथ क्या करेंगे तथा मना कर दिया । अत: पटाचारा ने स्वयं जाने का निर्णय लिया । वह पड़ोसियों को बता कर चली गयी । जब उसका पति घर आया तथा उसे पता चला कि क्या हुआ है, तो वह उसके पीछे गया । जब वह मिली तो उसने उसे वापस आने के लिये मनाने का प्रयास किया, किंतु उसने मना कर दिया । तथा मार्ग में ही उसने एक पुत्र को जन्म दिया । अब आगे जाना आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ, अत: वे गांव लौट आये । तथा दूसरी बार जब वह गर्भवती हुई तो फिर अपने घर के लिए चल पड़ी । उसके पति ने पुन: उसे पकड़ा तथा उसे प्रसव पीड़ा अनुभव होने लगी ।

किंतु इस बार, जब उसका पति, एक आश्रय के निर्माण करने के लिए सामग्री की तलाश में था तो एक घातक सांप के डसने से उसकी मृत्यु हो गयी । पटाचारा ने अकेले एक पुत्र को जन्म दिया । रात भर भीषण तूफान उठता रहा, अत: उसने अपने बच्चों की रक्षा के लिए उन्हें अपनी गोंद में लेकर, पेट के बल दुबक कर धरती पर लेट गई । सारी रात वह इस स्थिति में रही ।

प्रात:काल, यह सोच कर कि उसके पति ने उसे छोड़ दिया है, वह फिर निकल पड़ी। शीघ्र ही उसे अपने पति का शव मिला, तथा उसने कहा, 'मेरे कारण मेरे पति का देहान्त हो गया।' तथा वह अत्यंत दुखी अवस्था में अपने मायके की दिशा में आगे बढ़ी।

वह एक नदी पर पहुंची, जो तूफान के कारण ऊफान पर थी, तथा कमजोरी के कारण, वह दोनों बच्चों को एक साथ लेकर, धारा पार करने में असमर्थ थी, अत: वह ज्येष्ठ बालक को तट पर छोड़ कर नवजात शिशु को उस पार ले गई। उसे वहां नीचे रख कर बड़े बालक के लिए वापस आने लगी। जब वह मझधार में ही थी, एक शिकारी पक्षी ने नीचे आकर नवजात शिशु को झपट लिया। माँ हाथ उठा कर चिल्लायी, 'शू, शू (दूर हो जाओ! दूर हो जाओ !)।' बड़े लड़के ने अपनी माँ को हाथ उठाते देखा, तो सोचा कि वह उसे बुला रही है। वह नदी में गिर गया और बह गया।

पटाचारा अपने दोनों बेटों के शोक में रोती, बिलखती आगे बढ़ी। मार्ग में श्रावस्ती के एक व्यक्ति से भेंट हुई। उसने अपने परिवार के विषय में पूछा। उस व्यक्ति ने कहा, 'कृपया मुझसे उनके बारे में न पूछें। आप चाहें तो किसी और के बारे में पूछ सकती हैं।' किन्तु वह जिद्द करने लगी तो उसको बताया कि तूफान से उसका महल नष्ट हो गया था, तथा उसके माता पिता एवं भाई मर गये। उस व्यक्ति ने कहा, 'देखिये, आप वहाँ उनके दाह संस्कार से उठे धुएं को देख सकती हैं।'

यह अतिशय हो गया था। पटाचारा विक्षिप्त हो गई। उसने इस संसार में अपने प्रत्येक घनिष्ठ एवं प्रिय व्यक्ति को खो दिया था। वह निर्वस्त्र इधर उधर भटकती रही, किन्तु अपने नंगे होने से अनभिज्ञ थी। वह अपने पति, अपने बेटों, अपने माता पिता, तथा अपने भाई के लिए रोती बिलखती चारों ओर भटकती रही।

बुद्ध ने, जब वे भिक्खुओं को शिक्षा दे रहे थे, उसे दूर से आते देखा, तथा उन्हें ज्ञात हो गया कि वह एक लाख कल्पों से अपनी पारमी पूरी कर रही थी। वह पद्मुत्तर बुद्ध के समय विद्यमान थी, जब उन्होंने धम्म निपुणता में अग्रणी एक भिक्खुणी की ओर इंगित किया था, तथा उसकी भी अभिलाषा हुई कि भविष्य में एक दिन वह बुद्ध से मिले तथा वही पद प्राप्त करे। पद्मुत्तर बुद्ध ने विचार किया कि क्या उसमें इसकी क्षमता थी, तथा क्या भविष्य में ऐसा संभावित था, एवं उन्होंने एक निश्चित भविष्यवाणी की कि वह गौतम बुद्ध से मिलेगी और अपनी आकांक्षा पूरी करेगी। केवल एक बुद्ध की ही दृष्टि इतनी विस्तृत हो सकती है तथा वे ही इस प्रकार की निश्चित भविष्यवाणी कर सकते हैं।

अत: जब बुद्ध ने पटाचारा को देखा, तो उन्हें ज्ञात हो गया कि, वह केवल उन्हीं की शरण में आ सकती है । जैसे ही शिष्यों ने उसे आते देखा, वे उसे दूर भगाना चाहे, किन्तु बुद्ध ने उनसे उसे आने की अनुमति देने के लिए कहा । जब वह आयी तो उन्होंने उससे कहा, 'अपनी उचित मनोदशा में लौट आओ ।' तथा उसे अकस्मात अपनी दशा का बोध हुआ एवं वह अपने निर्वस्त्र होने के कारण, लज्जा से धरती पर दुबक गई । किसी व्यक्ति ने उस पर अपना अंगरखा उसके ऊपर फेंक दिया । तब वह बुद्ध के निकट आई, तथा उनका अभिवादन कर उसे अपनी शरण में लेने के लिए उनसे कहा, एवं उसके साथ जो भी घटित हुआ था उसे बताया ।

बुद्ध ने उससे कहा, 'जन्म एवं मरण के इस चक्र में, तुम अपनी संतानों तथा प्रियजनों के ह्रास पर बारंबार रो चुकी हो । चार महासागरों में जितना जल है तुमने उससे भी अधिक आँसू बहाए हैं ।' तथा उन्होंने निम्न गाथा दी :-

''चतूसु समुद्देसु जलं परित्तकं, ततो बहुं अस्सुजलं अनप्पकं।
दुक्खेन फुट्ठस्स नरस्स सोचना, किं कारणा अम्म तुवं पमज्जसी''ति॥

मनुष्य ने जितने आँसू बहाये हैं, उसकी तुलना में चार महासागरों में जल की राशि अत्यंत अल्प है ।

दु: ख एवं पीड़ा से व्याकुल नारी, तू क्यों असावधान रहती हो?

जैसे ही उन्होंने यह बात कही, उसके शोक की प्रबलता कम होने लगी । यह देख कर कि उसके शोक की प्रचण्डता कुछ सीमा तक शांत हो गई थी, उन्होंने उससे कहा, 'पटाचारा, जो भी भविष्य के जीवन मार्ग पर है, उसके लिये संतान एवं प्रियजन आश्रय या शरण नहीं हो सकते । तो कितना कम वर्तमान जीवन में । नैतिक कार्यों के माध्यम से स्वयं को नियंत्रित कर बुद्धिमान व्यक्ति को इस प्रकार निब्बान के लिए मार्ग निर्बाध करना चाहिए।' बुद्ध के प्रवचन के अंत में, वह जागृति के पहले चरण में स्थापित हो गयी, तथा उसके अन्तर्मन की मैल जो संख्या में समूची पृथ्वी पर धूल के कणों के समान थी, भस्म हो गयी ।

उसने बुद्ध से भिक्खुणी संघ में प्रवेश के लिये अनुरोध किया एवं एक भिक्खुणी के रूप में पूर्ण जागृति के लिए साधना करने में लग गई । एक दिन वह अपने पैर धो रही थी तथा जब उसने पानी उंडेला तो कुछ जमीन पर गिर गया । जल थोड़ी दूर बह कर रुक गया । दूसरी बार, थोड़ा और आगे गया । तीसरी बार और भी आगे तक बहा । तथा उसने इसी को अपने ध्यान के विषय के रूप में प्रयोग किया । उसने सोचा 'जिस प्रकार मेरे द्वारा पहली बार छलका जल थोड़ी ही दूर तक गया, उसी प्रकार इस संसार में प्राणी अल्पायु में ही मृत हो जाते हैं । तथा जिस

प्रकार मेरे द्वारा छलका पानी दूसरी बार थोड़ा और आगे तक बहा, उसी प्रकार इस संसार में प्राणी अपने जीवन के उत्कर्ष में मृत होते हैं। तथा जिस प्रकार तीसरी बार जल कुछ और आगे तक गया, इस संसार में प्राणी अपनी वृद्धावस्था में मरते हैं।

गंधकुटी में विराजमान बुद्ध ने देखा कि अब वह पूर्ण मुक्ति के लिए तैयार थी। उन्होंने अपना देदीप्यमान बिंब भेजा और उससे कहा, 'पटाचारा, पंच स्कंध के उदय-व्यय को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से, उदय-व्यय को देखने वाले व्यक्ति का एक दिन का, यहां तक कि एक क्षण का, जीवन श्रेयष्कर होता है। तथा उन्होंने उस गाथा के माध्यम से निर्देश दिया जिसे हमने प्रारंभ में उद्धृत किया है।

यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं। एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं।।

(पंच स्कंध के) उदय-व्यय को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से, उदय-व्यय को देखने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन श्रेयष्कर होता है।

धम्मपद, गाथा ११३

गाथा के समापन पर पटाचारा को अलौकिक शक्तियों के साथ अर्हत्व प्राप्त हुआ, तथा वह धम्म निपुण भिक्खुणियों में सर्वोपरि बन गयी।

चार आर्य सत्य

इसमें कोई संदेह नहीं कि आस्था या श्रद्धा पूर्वापेक्षित होती है, किन्तु वास्तव में, धम्म-साधना ही गणनीय होती है। इसीलिए, बुद्ध ने कहा है :-

तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खाकारो तथागता।

तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा (अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को मार्ग पर स्वयं ही चलना होगा), तथागत तो आख्यात करते हैं (अर्थात बुद्ध तो केवल मार्ग दर्शन करते हैं)।[४]

आज, अपराह्न में हम आपको विपस्सना साधना में प्रशिक्षण देंगे। विपस्सना साधना सिखाने से पहले, हमें आपको चार आर्य सत्य का कुछ स्पष्टीकरण देना है। इस विषय में मैं सयाजी ऊबाख़ीं के लेखन से कुछ अंश पढ़ता हूं :-

बुद्ध द्वारा सर्वप्रथम धर्मोपदेश में दिये गये चार आर्य सत्य के आधार पर दर्शन की इस प्रणाली की स्थापना हुई है।[५] यह उपदेश धम्म-चक्क पवत्तन सुत्त, अर्थात धर्म रूपी चक्र को गतिमान करने वाले सूत्र के नाम से जाना जाता है। चार आर्य सत्यों में से पहले तीन बुद्ध के

दर्शन की व्याख्या करते हैं, जबकि चौथा अर्थात अष्टांगिक आर्य मार्ग, जो कि नैतिकता व दर्शन की आचार संहिता है, लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक साधन के रूप में कार्य करता है ।

तो चार आर्य सत्य क्या हैं? वे हैं :- (१) दु:ख सच्च; दुख का सत्य, (२) समुदय-सच्च, दुख की उत्पत्ति का सत्य, (३) निरोध-सच्च, दुख के अंत या दुख की समाप्ति का सत्य; तथा (४) मग्ग-सच्च, दुख की समाप्ति के लिए अग्रणी पथ का सत्य ।

दुखसत्य के बोध की आवश्यकता पर इसलिये बल दिया गया है, जिससे कि कोई भी व्यक्ति बौद्ध दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को पूरी तरह समझ सके । इस तथ्य के प्रति किसी भी संदेह को दूर करने के लिये, बुद्ध ने दो अलग अलग दृष्टिकोणों से समस्या का समाधान दिया :- तर्क द्वारा तथा अनुभव की प्रक्रिया द्वारा ।

तर्क के दृष्टिकोण का उपयोग कर, बुद्ध ने अपने शिष्यों को दिखाया कि जीवन एक संघर्ष है, जीवन दु:खद है, वृद्धावस्था दु:खद है, रुग्णावस्था दु:खद है, मृत्यु दु:खद है । किन्तु वासना का प्रभाव मानव जाति में इतना प्रबल होता है कि मनुष्य सामान्यत: स्वयं के हित को भूल जाते हैं, वे भूल जाते हैं कि उन्हें कामुक सुख के लिए क्या मूल्य चुकाना पड़ता है ।

एक क्षण के लिये जरा सोचिये कि पेट में प्रसव-पूर्व की अवधि शिशु के लिये कितनी दुखदायी होती होगी, तथा उसे जन्म के समय से अस्तित्व के लिए कैसा कैसा संघर्ष करना पड़ता होगा । सोचिये कि जीवन का सामना करने के लिए कितनी तैयारियों की आवश्यकता होती है, तथा एक वयस्क के रूप में भी संघर्ष आखिरी श्वास तक चलता ही रहता है । जीवन क्या है, इसकी आप बहुत अच्छी तरह से कल्पना कर सकते हैं । जीवन वास्तव में दुखमय है ।

व्यक्ति अहं से जितना ही अधिक संबद्ध होता है, दुख उतना ही अधिक होता है । किन्तु व्यक्ति को जो दुख एवं पीड़ा भोगनी पड़ती है, उसे क्षणिक कामुक सुख के पक्ष में दबा दिया जाता है । किन्तु यह क्षणिक कामुक सुख अंधकार में मात्र यदा कदा चमकते जुगनू के प्रकाश की तरह है । यदि यह विभ्रम तथा अज्ञान (मोह) जो उसे सत्य से दूर रखता है, न होता, तो मनुष्य अवश्य ही 'जीवन, दुख, एवं मृत्यु' के चक्र से मुक्ति का मार्ग निकाल चुका होता ।

अनुभव की प्रक्रिया का उपयोग करते हुए, बुद्ध ने बताया कि कैसे कोई भी यह स्वयं देख सकता है कि सभी अनुबंधित अवस्थाओं की वास्तविक प्रकृति क्या है । उनके शिष्यों को उनसे ज्ञात हुआ कि मानव शरीर कलापों (उप परमाणविक इकाइयों) से रचित है, तथा प्रत्येक कलाप जिस क्षण बनता है उसी क्षण नष्ट भी हो जाता है । प्रत्येक कलाप प्रकृति के आठ तत्वों से गठित एक पुंज है । पहले चार महाभूत कहलाते हैं, अर्थात वह आधारभूत भौतिक गुण जो एक कलाप

में सर्वाधिक है । वे हैं :-पथवी, आपो, तेजो तथा वायो, अर्थात विस्तार तत्व (या पृथ्वी), सामंजस्य तत्व (या जल), विकिरण तत्व (या शीतलता एवं उष्मा), तथा गति तत्व (या वायु) । अन्य चार तत्व केवल अनुषंगी हैं, जो पहले चार से उत्पन्न होते हैं तथा उनपर निर्भर करते हैं । वे हैं वण्ण, गंध, रस, ओज अर्थात रंग, गंध, स्वाद तथा पोषक सार या आहार ।

भौतिक स्तर पर स्पष्टत: कलाप एक सूक्ष्मतम कण है । जब आठ प्रकृति तत्व, जिनकी व्यवहार मात्र ही विशेषता है, एक साथ एकत्रित होते हैं, केवल तभी कलाप की इकाई का गठन होता है । दूसरे शब्दों में, एक अत्यंत संक्षिप्त पल की अवधि में, व्यवहार के इन आठ प्रकृति तत्वों का सह–अस्तित्व, जो एक पुंज है, कलाप के रूप में जाना जाता है । ये कलाप सतत परिवर्तन या प्रवाह की स्थिति में हैं । वे एक ऊर्जा की धारा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं, जिस प्रकार एक मोमबत्ती का प्रकाश या बिजली के एक बल्ब की ज्योति ऊर्जा की एक धारा हैं । यह जिसे हम शरीर कहते हैं, कोई इकाई नहीं है, जैसी कि प्रतीत होती है, अपितु जीवन शक्ति के सह अस्तित्व के साथ भौतिकता का प्रवाह है ।

किसी सामान्य व्यक्ति के लिए, लोहे का एक टुकड़ा गतिहीन होता है । किन्तु एक वैज्ञानिक को ज्ञात है कि यह इलेक्ट्रॉनों (अतिसूक्ष्म ऋणाणुओं या विद्युत्कणों) से गठित है, जो सभी सतत परिवर्तन या प्रवाह की स्थिति में हैं । यदि यह एक लोहे के टुकड़े का सत्य है, तो किसी जीवित जीव जैसे मनुष्य की स्थिति क्या होगी? एक मानव शरीर के भीतर हो रहे परिवर्तन तो और अधिक प्रचंड होंगे । क्या मनुष्य स्वयं के भीतर हो रहे उद्वेग और प्रकंपन का अनुभव करता है? क्या वह वैज्ञानिक, जो जानता है कि, सब कुछ परिवर्तन या प्रवाह की स्थिति में है, कभी यह भी अनुभव करता है, कि उसका स्वयं का शरीर मात्र ऊर्जा एवं प्रकंपन है? उस व्यक्ति की मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया क्या होगी, जो अन्तरावलोकन द्वारा देखता है, कि उसका स्वयं का शरीर मात्र ऊर्जा एवं प्रकंपन है? अपनी प्यास बुझाने के लिए, कोई व्यक्ति गांव के किसी कुएं का एक गिलास पानी पी सकता है । किन्तु, मानलीजिये कि उसकी आंखें एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र की तरह शक्तिशाली हों । तो वह कुएं का पानी जिसमें उसे आवर्धित रोगाणु दिखाई देंगे, उसे पीने में निश्चित रूप से वह संकोच करेगा । उसी प्रकार, जब वह स्वयं के भीतर सतत परिवर्तन (नश्वरता, अनित्य, पालि में अनिच्च) का अनुभव करने लगता है तो, वह उसके फलस्वरूप, अवश्य ही दुख के सत्य को समझने लगेगा । अपने भीतर हो रहे विकिरण, प्रकंपन तथा परमाणविक इकाइयों के घर्षण के तीक्ष्ण अनुभव के माध्यम से, उसे ऐसा बोध होता है । वास्तव में जीवन, अन्दर और बाहर दोनों, दुखमय है, सभी प्रतीतियों में तथा परम सत्य के रूप में भी ।

तो दुख का उद्भव क्या है? बुद्ध ने कहा है कि, दुख की उत्पत्ति तृष्णा (पालि में तण्हा) या

लालसा है। एक बार इच्छा का बीज बो जाने पर, वह उगकर लोभ के रूप में बढ़ता है, तथा सत्ता या आर्थिक लाभ के लिये लालसा या वासना का प्रजनन करता है। वह मनुष्य जिस में यह बीज बो दिया गया है, इन लालसाओं का दास बन जाता है तथा वह स्वत: ही जीवन पर्यंत उनके पीछे अनवरत मानसिक एवं शारीरिक प्रयास करने के लिए प्रेरित हो जाता है। निश्चित रूप से, इसका अंतिम परिणाम उन बुरी मानसिक शक्तियों का संचय होता होगा, जो उसके स्वयं के कार्यों, शब्दों, तथा उसके भीतर निहित इच्छा या लोभ तथा क्रोध या द्वेष (पालि में दोस) द्वारा प्रेरित विचारों से उत्पन्न होते हैं।

दार्शनिक रूप से, ये संस्कार (पालि में, संखार) अर्थात मानसिक कर्म शक्तियां हैं, जो समय के साथ कर्म करने वाले व्यक्ति पर प्रतिक्रिया करती हैं, तथा ये संखार ही शारीरिक एवं मानसिक धारा प्रवाह, अर्थात भीतर भीतर दुख की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी हैं।

तो फिर, वह मार्ग क्या है जो दुख की समाप्ति की ओर अग्रणी होता है? वह मार्ग बुद्ध के सर्वप्रथम धर्मोपदेश में बताये गये अष्टांगिक आर्य मार्ग के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, इस अष्टांगिक पथ को तीन मुख्य चरणों, अर्थात शील (पालि में सील), समाधि, तथा प्रज्ञा (पालि में पञ्ञा) में विभाजित किया गया है।

सील (नैतिकता) में तीन चरण सम्मिलित हैं :- सम्यक वाणी, सम्यक कार्य एवं सम्यक आजीविका। सम्यक परिश्रम, सम्यक सजगता, एवं सम्यक एकाग्रता, ये तीन चरण समाधि (मन की समता) में सम्मिलित हैं। तथा प्रज्ञा (पञ्ञा) या विवेक में दो चरण हैं :- सम्यक संकल्प तथा सम्यक दृष्टि। सील एवं समाधि के अंतर्गत आने वाले पहले छह चरणों पर हम पहले से ही विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। अब हम पञ्ञा के अंतर्गत सम्यक संकल्प (पालि में, सम्मा संकप्पो) तथा सम्यक दृष्टि (पालि में, सम्मा दिट्ठि) की जांच करते हैं।

सत्य का समुचित ज्ञान ही बौद्ध धर्म का उद्देश्य एवं लक्ष्य है, तथा सम्यक संकल्प का अर्थ है अन्दर एवं बाहर दोनों क्षेत्रों में मानसिकता एवं भौतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन जिससे सत्य का ज्ञान हो सके। कुछ विद्वान सम्यक संकल्प का अर्थ समुचित चिंतन भी बताते हैं।

मन तथा भौतिकता के लिये पालि में नाम एवं रूप शब्द हैं। नाम इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसकी प्रवृत्ति ज्ञानेन्द्रियों की विषय वस्तु की ओर झुकाव या नमन की होती है। रूप इसलिए कहा जाता है, क्योंकि सतत परिवर्तन के कारण यह नश्वर होता है। नाम तथा रूप के लिये अंग्रेजी में निकटतम शब्द माइण्ड एवं मैटर तथा हिन्दी में मन एवं पदार्थ हैं।

वास्तव में, नाम शब्द का प्रयोग चेतना या विज्ञान (पालि में, विञ्ञान), संवेदना (पालि

में, वेदना), संज्ञान या संज्ञा (पालि में, सञ्ञा), तथा इच्छाशक्ति ऊर्जा या संस्कार (पालि में, संखार) के लिये होता है । ये तथा पदार्थ (रूप) मिलकर, पंच स्कंध (पालि में, पंच-खंध) बनाते हैं । इन्हीं पंच स्कंधों में बुद्ध ने अस्तित्व की सभी मानसिक एवं भौतिक प्रकृयाओं, जो वास्तव में मन तथा पदार्थ के सह-अस्तित्व की निरंतरता हैं, का सार अभिव्यक्त किया है, किन्तु जो सामान्य व्यक्ति के लिये उसका अहं या व्यक्तित्व हैं ।

सम्यक संकल्प में, साधक जिसने समाधि का शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी विकसित किया है, वह अपना ध्यान स्वयं में केंद्रित करेगा तथा आत्मविश्लेषी ध्यान से प्रथम भौतिकता की प्रकृति, तत्पश्चात मन एवं मानसिक गुणों की प्रकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेगा । वह कलापों को उनकी वास्तविक स्थिति में अनुभव करता है तथा कभी कभी उनका अवलोकन भी करता है । वह समझने लगता है कि भौतिकता एवं मन दोनों निरंतर परिवर्तनशील हैं । वे नश्वर एवं क्षणभंगुर हैं । जैसे जैसे उसकी एकाग्रता बढ़ती है, उसके भीतर की शक्तियों की प्रकृति और स्पष्ट होती जाती है ।

यह स्पष्टीकरण सयाजी ऊबा ख़ीं के व्याख्यान 'बौद्ध धर्म है क्या' (*What Buddhism Is)* में दिया गया है ।

संदर्भ सूची

[1]*Buddhist Legends*, I 146-158. (चक्खुपाल)

[2]*Buddhist Legends*, I 159-165. (मट्ठकुण्डली)

[3]*Buddhist Legends*, II 250-256. (पटाचारा)

[4]See the Buddha’s discourse to Ganaka-Moggallana, *The Middle Length Sayings*, I 52-57.

[5]This discussion is based on Sayagyi U Ba Khin’s *What Buddhism Is* (see *Dhamma Texts*, pp. 15ff.

पंचम दिवस, सायं प्रवचन

तिलक्खन (त्रिलक्षण): तीन लक्षणों पर ध्यान

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा। सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पापकर्मों (अकुशल कर्मों) को करने से बचना, पुण्यकर्मों की संपदा संचित करना, (पांच नीवरणों से) अपने चित्त को परिशुद्ध करना – यही बुद्धों की शिक्षा है ।

धम्मपद, गाथा १८३

''सब्बे सङखारा अनिच्चा''ति, यदा पञ्ञाय पस्सति। अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

'सारे संस्कार अनित्य (नश्वर) हैं' । इस (सत्य) को जब कोई प्रज्ञा (चक्षु) से देख लेता है, तब उसको दुखों से निर्वेद प्राप्त होता है (अर्थात दुखक्षेत्र से अनासक्ति हो जाती है) – यह विशुद्धिमार्ग ऐसा है!

''सब्बे सङखारा दुक्खा''ति, यदा पञ्ञाय पस्सति। अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

'सारे संस्कार दु:ख हैं' । इस (सत्य) को जब कोई प्रज्ञा (चक्षु) से देख लेता है, तब उसको दुखों से निर्वेद प्राप्त होता है – यह विशुद्धिमार्ग ऐसा है!

''सब्बे धम्मा अनत्ता''ति, यदा पञ्ञाय पस्सति। अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

'सभी (लौकिक अथवा लोकोत्तर) धर्म अनात्म हैं' । इस (सत्य) को जब कोई प्रज्ञा (चक्षु) से देख लेता है, तब उसको दुखों से निर्वेद प्राप्त होता है – यह विशुद्धिमार्ग ऐसा है!

धम्मपद, गाथायें २७७-२७९

इनमें से सबसे पहली गाथा के विषय में जो कथा धम्मपद टीका में प्रस्तुत है, वह इस प्रकार है :- एक बार पांच सौ भिक्षुओं ने बुद्ध से ध्यान लगाने के लिये कर्मस्थान प्राप्त किया था । उन्होंने पूरा प्रयास किया किन्तु पूर्ण जागृति प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके । अत: वे बुद्ध के पास वापस आये जिससे कि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ध्यान लगाने का विषय प्राप्त कर सकें । बुद्ध ने अपने मन में सोचा, ' इन भिक्षुओं के लिये ध्यान लगाने का कौन सा कर्मस्थान सबसे लाभदायी होगा?' और उन्होंने उनके अतीत को देखा । बुद्ध काश्यप के समय इस भिक्षु वर्ग ने बीस हजार वर्षों तक अनित्यता (नश्वरता) के लक्षण पर ध्यान लगाया था । अत: बुद्ध ने उन्हें अनित्यता पर ध्यान लगाना सिखाया । उन्होंने उनसे कहा, 'कामावचर तथा अकामावचर लोकों में सभी स्कंध नश्वर (अनित्य) हैं । अंतत: उनमें कोई वास्तविकता नहीं है ।' अत: उन्होंने वह गाथा सुनाई, जो 'सब्बे संखारा अनिच्चा (सभी संस्कार अनित्य हैं) से प्रारम्भ होती है ।

सभी संस्कारों के दुखमय स्वभाव के बारे में, दूसरी गाथा एक अन्य भिक्षु समुदाय को दी गयी थी । उनकी कथा भी पहले समूह के समान ही थी, अतिरिक्त इसके कि उन्होंने अपने पिछले जन्म में दुख के लक्षण को अपना ध्यान लगाने का विषय बनाया था ।

तीसरी गाथा की कहानी भी वैसी ही है, अतिरिक्त इसके कि इस भिक्षु समुदाय ने अपना ध्यान लगाने का कर्मस्थान किसी भी नियंत्रक या स्थायी आत्मा के अभाव, अर्थात अनात्म को चुना था ।

तथा सभी तीनों समूहों ने अपने अनुकूल कर्मस्थानों पर साधना कर, अर्हत्त्व प्राप्त किया ।

सया जी ऊ बा ख़ीं ने अपने प्रवचन 'बौद्ध धर्म के व्यावहारिक पक्ष की अनिवार्यतायें' (The Essentials of Buddha-Dhamma in Meditative Practice) में अनिच्च, दुख़ और अनत्ता को सही तरीके से समझने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया । सभी संस्कारों के ये तीन लक्षण हैं । सया जी ऊ बा ख़ीं ने कहा, 'यदि आप अनिच्च को सही तरह से समझते हैं, तो उसके परिणाम दुख, तथा अनत्ता रूपी परम सत्य को भी समझ जाएँगे । किंतु इन तीनों को एक साथ समझने में काफ़ी समय लगेगा ।

'इन सभी में सबसे महत्वपूर्ण घटक अनिच्च है, जिसे हमें सबसे पहले अनुभव करना होगा, फिर अभ्यास द्वारा समझना होगा । केवल बौद्ध ग्रंथों को पढ़ लेना या बुद्ध-धर्म का किताबी ज्ञान प्राप्त कर लेना ही सच्ची नश्वरता को पूर्ण रूप से समझने के लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि उससे अनुभव के पहलू का अभाव रहेगा । उस परिवर्तनशील (अनिच्च) स्वभाव को, जो स्वयं आप के भीतर निरंतर बदलने की प्रक्रिया के रूप में प्रकट होता है, उसे बुद्ध के अनुसार जिस प्रकार से आपको समझना है, वह मात्र अनुभव से ही संभव है । जैसा कि बुद्ध के समय अनेक ऐसे लोगों ने, जिन्हें बौद्ध ग्रंथों का कुछ भी किताबी ज्ञान नही था, यह अनिच्च-बोध विकसित किया था, वैसे ही अब भी किया जा सकता है ।

'अनिच्च को समझने के लिए व्यक्ति को अष्टांगिक आर्य मार्ग का दृढ़ता तथा परिश्रमपूर्वक पालन करना पड़ेगा, जो तीन भागों – सील, समाधि एवं पञ्ञा, अर्थात सदाचार, चित्त एकाग्रता तथा अन्तर्दृष्टि - में विभाजित है ।

'समाधि, अर्थात एक बिंदु पर एकाग्रता के लिये चित्त नियंत्रण, का आधार सील अथवा सदाचारपूर्ण जीवन है । व्यक्ति पञ्ञा या विवेक तभी विकसित कर सकता है जब उसकी एकाग्रता उत्तम हो ।

'अतः पञ्ञा के लिए सील और समाधि पूर्वाकांक्षित या आधार हैं। पञ्ञा या अन्तर्दृष्टि का अर्थ है विपश्यना (पालि में विपस्सना) या अन्तर्दृष्टि ध्यान के अभ्यास द्वारा अनिच्च, दुख तथा अनत्ता का ज्ञान।

गवेषणा द्वारा पूर्ण आबोध

अब हम संस्कारों के तीन लक्षणों के विवरण को तथा गवेषणा द्वारा पूर्ण आबोध (तिरन-परिञ्ञा) को देखते हैं, जिसे सयाजी ऊबा ख़ीं के आचार्य के आचार्य ने दिया है। आदरणीय लेदी सयादॉ इन तीन लक्षणों की परिचर्चा अपनी पुस्तक 'विपस्सना दीपनी'[१] में करते हैं। लेडी सयादॉ गत शताब्दि के प्रारंभ में बर्मा में एक अत्यंत विद्वान भिक्षु थे।

वे तीन प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :- नश्वरता का लक्षण (अनिच्च लक्खन), दुख का लक्षण (दुख लक्खन), तथा अनात्म का लक्षण (अनत्ता लक्खन)। आज की संध्या में हम नश्वरता पर विचार करेंगे।

आमूल परिवर्तन तथा सूक्ष्म परिवर्तन

नश्वरता के दो पहलू हैं :- आमूल परिवर्तन तथा एक लंबी अवधि में होने वाला परिवर्तन जिसे सूक्ष्म परिवर्तन कह सकते हैं।[२] पालि में आमूल परिवर्तन को विपरिणाम कहा जाता है, तथा सूक्ष्म परिवर्तन को अञ्ञथाभव (जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'कुछ और होता जा रहा है')। यदि आमूल एवं सूक्ष्म परिवर्तनों को साफ देखा जाय, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि मानसिक तथा भौतिक घटनायें वास्तव में नश्वर हैं। सूक्ष्म परिवर्तन के पांच प्रमुख लक्षण हैं :- जन्म, विकास, निरंतरता, क्षय, और मृत्यु।

आचार्य सयाजी ऊ बा ख़ीं का परामर्श है, 'विपस्सना साधना में प्रगति के लिए साधक को अनिच्च-बोध यथासंभव निरंतर रखना चाहिए।' बुद्ध ने कहा है, 'यदि आप अपने निवृत होने आदि नित्यकर्मों के समय भी अनिच्च की जानकारी बनाये रहें, तो वह आपके लाभ के लिए होगा।'

आइये, अब हम अभिधर्म (पालि में, अभिधम्म) के दर्शन की दृष्टि से पुनः विवेचन करते हैं। जब हम जानते हैं कि पंच स्कंध तत्क्षण उदय होते हैं एवं फिर तत्काल नष्ट हो जाते हैं, तो यह समझना कठिन नहीं है कि सब कुछ नश्वर है। वे उत्पन्न होते हैं और तब विलीन हो जाते हैं (उदयव्वय, अर्थात 'उत्थान और पतन, जन्म एवं मृत्यु', **खन्धानं उदयब्बयं**, अर्थात 'स्कन्धों का उदय और व्यय')।

केवल आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु बौद्ध धर्म में भी मौलिक कण या कलाप होते हैं। मानव शरीर में कोटि कोटि परमाणु तथा कोशिकायें हैं। ये कलाप चार

प्राथमिक गुणवत्ताओं के अस्थायी संयोजन से बने हैं, जिनकी चर्चा हम कल रात कर चुके हैं। ये सूक्ष्मतम कण, कलाप उदय होते हैं एवं विलीन हो जाते हैं। अत: अनिच्च या नश्वरता की अवधारणा को जन्म देते हुए, प्राचीन का स्थान नवीन लेता रहता है।

स्वयं के भीतर की प्राकृतिक वास्तविकताओं पर अंतर्मुखी साधना के द्वारा, बुद्ध को यह स्पष्ट हो गया कि मानव शरीर में जैसा कि प्रतीत होता है, वैसा कोई ठोसपन नहीं है। यह इन असंख्य कोटि कलापों के संयोजन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उनमें से प्रत्येक कलाप गृष्म ऋतु में किसी रथ के पहिये से उड़ी धूल के एक कण के एक भाग के समान है, जब कि कण को ४६,६५६ भागों में विभाजित किया गया हो। आचार्य सया जी ऊ बा ख़ीं ने अपने एक व्याख्यान में इसी प्रकार यह समझाया था।

भगवान बुद्ध के अंतिम शब्द, परिनिर्वाण में पारित होने के ठीक पहले ये थे, '**वय धम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथ**। सभी संखार नाशवान हैं; अप्रमाद के साथ (आलस्य न करते हुये) [जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये] संपादन करो (दीघ निकाय,१६: महापरिनिब्बान सुत्त)।' वास्तव में, पैंतालीस वर्षों के लम्बे शासन काल में, उनके सभी शिक्षणों का सारांश यही है।

आचार्य सया जी ऊ बा ख़ीं ने स्मरण दिलाया, 'अनिच्च, जो सभी घटकों में निहित है, यदि आप उसके बोध को बनाये रखें, तो कालान्तर में आप अवश्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करेंगे।' तथा उन्होंने आगे कहा, "जैसे जैसे आप में अनिच्च-बोध विकसित होगा, वैसे वैसे 'प्रकृति का सत्य क्या है' उसमें आपकी अंतर्दृष्टि अधिक से अधिक स्थापित होती जायेगी – यहां तक कि तीन लक्षणों, अनिच्च, दुख, एवं अनत्ता के विषय में कोई संदेह नहीं रहेगा। केवल तभी आप उस अवस्था को प्राप्त करेंगे, जहां से लक्ष्य आपको समक्ष दिखाई देगा।"

तो इससे हमें नश्वरता या अनिच्च के महत्व के मूल्यांकन के लिये एक परिचय मिलता है। सभी संस्कारों के अन्य दो लक्षणों – दुख, एवं अनत्ता – की चर्चा हम भावी प्रवचनों में करेंगे।

पंच स्कंध[३]

आइये, अब हम पंच स्कंध (पालि में, पंच खंध) का निरीक्षण करें :-

(१) पदार्थ (रूप-खंध) वह है जिसे हम भौतिक वस्तुओं के रूप में अपने भीतर एवं बाहर पाते हैं।

(२) संवेदनायें (वेदना खंध) हमारी वे अनुभूतियां हैं, जो हमारे शरीर के पदार्थों अथवा विचारों के संपर्क में आने से होती हैं।

(३) संज्ञान या संज्ञा (सञ्ञा खन्ध) अर्थात रंग, आकार या ध्वनि आदि की पहचान या धारणा।
(४) इच्छाधारी कार्य या संस्कार (संखार खंध) वे मानसिक कार्य हैं, जो संपर्क से उत्पन्न होने वाली हमारी प्रतिक्रिया हैं।
(५) चेतना या विज्ञान (विञ्ञान खंध) जो विषयों के प्रति मात्र जागरूकता है; इसके पहले कि हम समझें कि हम क्या अनुभव कर रहे हैं।

मानस एवं काया. अस्तित्व के इन पांच स्कंधों को देखने पर हमें पता चलता है कि मानस का क्या महत्व है। इन पांच में से केवल एक ही ऐसा है, जिसे हम ठोस पदार्थ, या भौतिक अस्तित्व कह सकते हैं। चार ऐसे हैं जिन्हें हम मानस या मानसिक कार्यकलाप कहते हैं। अपने आप को मानस एवं भौतिक पदार्थ में, जैसे वे बराबर बराबर हों, विभाजित करने की अपेक्षा, यह सत्य बहुत ही भिन्न है। वास्तव में, मानस अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे लिये इस पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है। जो कुछ हम अपने बाहर देखते या अनुभव करते हैं, उसी को हम वास्तविक समझने के अभ्यस्त हैं। संभवतः, हम अपने शरीर को अपने मन से अधिक वास्तविक समझते हैं। आइये, हम इस पर थोड़ी और बारीकी से गौर करें।

भौतिक पदार्थ. चार मौलिक तत्वों (पालि में, चत्तारो महाभूता) जो पारंपरिक रूप से कठोरता, तरलता, उष्णता या शीतलता, तथा गति, अर्थात पृथ्वी, जल, उष्ण एवं वायु (पालि में, पथवी, आपो, तेजो, वायो) जाने जाते हैं, उनके संयोजन का परिणाम ही भौतिक पदार्थ है।

(१) ठोसपन, कठोरता, दृढ़ता या पृथ्वी तत्व में वह सब सन्निहित है, जो कसाव, दबाव या स्पर्श की संवेदना के माध्यम से पहचानने योग्य है।
(२) तरलता या जल तत्व में निरंतरता, संयोजन या सामंजस्य सम्मिलित है।
(३) उष्णता या अग्नि तत्व में गर्मी और ठंड के विभिन्न स्तर सम्मिलित हैं।
(४) गति या वायु तत्व में, चलन या संसरण सन्निहित है।

ये चारों तत्व विभिन्न अंशों में सभी पदार्थों में विद्यमान हैं। किसी पदार्थ-विशेष की अभिव्यक्ति में कोई एक तत्व प्रबल होगा तथा उसकी विशेषताओं को निर्धारित करेगा। उदाहरणस्वरूप, एक मिट्टी के ढेले को मुख्यतः पृथ्वी तत्व के रूप में अनुभव किया जाएगा। किन्तु उसमें कुछ अंश संयोजन (जल तत्व) का है जो सबको संयोजित किये हुए है। कुछ गर्मी भी है। तथा यदि हम उनकी परमाणु संरचना के अंदर देख पाते, तो एक अद्भुत मात्रा में चलन या गति दिखती।

संयोजन के अतिरिक्त, हम इन सभी तत्वों का अनुभव कर सकते हैं। हम ठोसपन, कठोरता या दृढ़ता का अनुभव कर सकते हैं, जैसे भार, भारीपन या हल्कापन। हम गर्मी या ठंढक महसूस कर सकते हैं। हम गति या चलन का अनुभव करते हैं। किंतु संयोजन को हम बौद्धिक स्तर पर ही तर्कसंगत अनुमान के रूप में जान सकते हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि वस्तुयें स्वत: विखर कर उड़ंछू नहीं हो जातीं। लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव के स्तर पर, हम एक समय में केवल एक ही बात महसूस कर सकते हैं, इस प्रकार एक के बाद ही दूसरी बात को। यदि हमारी एकाग्रता शक्ति अत्यधिक विकसित न हो, तो हमें ऐसा लगता है जैसे एक बात दूसरे में सन्निहित है, किन्तु वास्तव में हमारा मानस एक समय में केवल एक ही बात जानता है।

इन चार मौलिक तत्वों के संयोजन से, माध्यमिक गुणवत्ताओं, अर्थात रंग या वर्ण (पालि में, वण्ण), गंध, स्वाद या रस, तथा पोषण या ओज उत्पन्न होते हैं। हमारा मिट्टी की ढेला लाल, भूरा या बादामी, आदि रंग का होगा। यदि हमारी घ्राण शक्ति अच्छी है, तो हम उसे सूंघ भी सकेंगे। इत्यादि, इत्यादि।

ये आठों तत्व सभी निर्जीव भौतिक वस्तुओं में विद्यमान हैं। उनमें जीवन होने के लिए, जीवन शक्ति का विद्यमान होना आवश्यक है। संवेदी अनुभव के लिए, भौतिक ज्ञानेद्रियों का होना आवश्यक है, अर्थात देखने के लिये आंखें, सुनने के लिए कान, सूंघने के लिये नाकें, स्वाद के लिए जिह्वाएं, स्पर्श के अनुभव के लिये शरीर, तथा विचारों एवं कल्पनाओं के लिये मन।

मानस. जिसे हम मानस कहते हैं, वह अन्य चार स्कंधों का संकलन है।

सबसे पहले हम विज्ञान या चेतना को लेते हैं। इस संदर्भ में, चेतना या विज्ञान बहुत ही सीमित अर्थ में प्रयुक्त है। इसका अर्थ अवगत होना मात्र है; जो भी अनुभव किया जा रहा है, बिना उसकी पहचान या बिना उसके प्रति किसी प्रतिक्रिया के। उस ज्ञानेद्रिय के आधार पर जिससे चेतना उत्पन्न होती है, चेतना के छह प्रकार होते हैं, अर्थात आंख, कान, नाक, जिह्वा, काया तथा मन – क्योंकि जैसे चक्षु प्रकाश ग्रहण करता है, उसी प्रकार मन मानसिक विषयों को ग्रहण करता है। ये मानसिक विषय वे विचार हैं, जो पिछले अनुभवों पर आधारित हैं, तथा पिछले अनुभव पहली पांच ज्ञानेद्रियों के माध्यम से हुये थे।

बुद्ध ने यह स्पष्ट किया कि इसकी तुलना विभिन्न प्रकार की अग्नि से की जा सकती है।[४] जब घास जलती है, तब हम उसे घास की आग कहते हैं। जब लकड़ी जलती है, तो हम उसे लकड़ी की आग कहते हैं। तो ऐसा ही चेतना के साथ है। जब दृष्टि उत्पन्न होने के लिए सभी सही घटक एकजुट होते हैं, तो वहां 'चक्षु चेतना' होती है। इन घटकों में सम्मिलित हैं

:- *भौतिक पदार्थ या रूप* – अर्थात चार महाभूतों से बनी काया या कोई वस्तु, याने दृश्य; *जीवन* – आप जीवित होने पर ही देख पायेंगे; *चक्षु* (या चक्षु आधार) – यदि आप अंधे हैं, तो नहीं देख सकेंगे; *प्रकाश* – यदि बिल्कुल अंधेरा है तो कुछ भी नहीं देख सकते; तथा *ध्यान* (या चेतना) यदि आप सम्मूर्छित हैं या गहन निद्रा में हैं तो आप नहीं देख सकेंगे। दृष्टि चेतना होने के लिए इन सभी तत्वों का उपस्थित होना आवश्यक है। यदि हम कहते हैं, 'वह नहीं देख रहा है' तो हम दृष्टि चेतना के अभाव का वर्णन कर रहे हैं। जब इन तत्वों में से कोई एक भी तत्व विद्यमान नहीं होता, तब वह नहीं होती। उदाहरणस्वरूप, रात के अंधेरे में यदि कोई प्रकाश का स्रोत न हो, तो आंख के अंग में दृष्टि चेतना नहीं जागेगी। यह अस्थायी रूप से निलंबित हो जाती है। किन्तु यदि वहां अग्नि का प्रकाश हो जाय तो वह उदय हो जायेगी। तथा यदि प्रकाश को बुझा दिया जाय, तो दृष्टि चेतना भी समाप्त हो जाएगी।

जिस प्रकार भौतिक पदार्थों में परिवर्तन के पांच मुख्य रूप हैं, ठीक उसी प्रकार मानसिक घटनाओं, जैसे चेतना के भी वही पांच रूप हैं। जैसे एक लौ से प्रकाश अस्तित्व में आता है, संवर्धित होता है, बना रहता है, क्षय होता है, तथा बुझ जाता है, उसी प्रकार दृष्टि चेतना, जो प्रकाश पर निर्भर है, अस्तित्व में आती है, बढ़ती है, क्षय होती है, तथा बुझ जाती है।

जिस चेतना की उपस्थिति या अनुपस्थिति सुनने, सूंघने, चखने और छूने पर निर्भर करती है, उसे भी उसी प्रकार समझा जा सकता है, जैसे कि हमने दृष्टि चेतना के विषय में बताया है। कर्ण के लिए ध्वनि उपस्थित होनी चाहिये, नासिका के लिए गंध, जिह्वा के लिए स्वाद, और मन के लिए विचार तथा काल्पनिक चित्र होने चाहिए। तथा ये सब, निःसन्देह, आमूल परिवर्तन एवं सूक्ष्म परिवर्तन, दोनों दृष्टि से नश्वर हैं। मानसिक चेतना की विभिन्न प्रकार की अनेक अभिव्यक्तियां हैं। विभिन्न प्रकार के विचारों के परिवर्तन के माध्यम से आमूल एवं सूक्ष्म परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट हैं। उदाहरणस्वरूप, विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के साथ मानसिक चेतना में परिवर्तन बहुत स्पष्ट होते हैं, चाहे वह परिवर्तन हर्ष, पीड़ा, शोक का हो, या किसी तटस्थ भावना का। कोई भी यह सरलता से देख सकता है कि, जब वह अकेले बैठा होता है, तो उसके चित्त को विभिन्न प्रकार के अनेक भाव, लोभ, अरुचि, घृणा, मेत्ता, ईत्यादि राग रंजित करते रहते हैं, एक के बाद एक उदय होते रहते हैं।

अब हम अगले स्कंध, संज्ञान या संज्ञा पर आते हैं। जब हमें कोई बात विदित होती है, जो हमारी ज्ञानेंद्रियों के क्षेत्र में आयी हो, तब हमें उसका संज्ञान या उसके विशिष्ट पहलुओं की पहचान होती है, जैसे, लाल, नीला या पीला, भड़कीला या कोमल, खुरदुरा या चिकना,

इत्यादि। चेतना की ही तरह, संज्ञान भी, छह ज्ञानेंद्रियों पर निर्भर करते हुये, छह प्रकार के होते हैं।

विषय के संज्ञान के पश्चात संवेदना (पालि में, वेदना) आती है। पुनः, उन छह ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर जिनसे ये उत्पन्न होती हैं, संवेदनायें या अनुभूतियां भी छह प्रकार की होती हैं। अतः संवेदनायें हैं, जो दृश्य संपर्क, श्रवण संपर्क, आदि के माध्यम से अस्तित्व में आती हैं।

किन्तु यहाँ कुछ नया भी है; एक और आयाम जो विज्ञान या चेतना एवं संज्ञान में हमें नहीं मिलता। ये संवेदनायें हमारे लिये शारीरिक या मानसिक रूप से सुखद होती हैं। अथवा शारीरिक या मानसिक रूप से दुखद होती हैं। अंत में, ऐसी भी संवेदनायें हैं, जो न सुखद हैं और न दुखद।

तटस्थ संवेदनायें आसानी से अनदेखी हो जाती हैं, क्योंकि हम रहने देने मात्र के बजाय, उन्हें स्वीकारने अथवा अस्वीकारने के बहुत अधिक अभ्यस्त हैं। इनमें से अधिकांश तटस्थ संवेदनायें हमारे ऊपर उतनी प्रबल प्रभावकारी नहीं होतीं, जितनी कि सुखद या दुखद संवेदनायें होती हैं।

विपस्सना में, हम संवेदनाओं के प्रति जागरूकता विकसित करते हैं, तथा प्रिय, अप्रिय, एवं तटस्थ संवेदनाओं का उपेक्षा के साथ अनुभव करना सीखते हैं। यह छह इंद्रियों में से किसी भी एक के माध्यम से किया जा सकता है, किन्तु स्पर्श की अनुभूति उपेक्षा के विकास के लिए सबसे अच्छी है। अन्य पांच इंद्रियों को उत्तेजित करने वाले विषय अत्यधिक निर्बल होते हैं। आंख पर प्रकाश के प्रभाव अथवा कान पर ध्वनि के प्रभाव, इत्यादि से हम स्पष्ट रूप से अवगत नहीं होते। अधिकांश ज्ञानेन्द्रिय-विषयों के प्रभाव तटस्थ संवेदनाओं के साथ उदित होते हैं। उस अल्पकाल में, जिसमें हम केवल इस तथ्य से अवगत होते हैं कि आँख प्रकाश को ग्रहण कर रही है – इसके पहले कि हम में उस प्रकाश द्वारा प्रकट की गई छवि के प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न हो – किसी छवि विशेष को, न तो हम पसंद अथवा नापसंद करते हैं। प्रतिक्रिया बाद में होती है।

किन्तु, स्पर्श के साथ, जो नैतिक कार्यों से सुखद संवेदना, तथा अनैतिक कार्यों से जो दुखद संवेदना जुड़ी होती है, वह तत्क्षण होती है। पालि टीका[५] में जो तुलना दी गई है, उसके अनुसार पांच इंद्रियों पर जो प्रभाव पड़ता है, वह बहुत ही अस्पष्ट होता है, जैसे किसी रूई के फाहे पर किसी अन्य रूई के फाहे से प्रहार करने से होता है। स्पर्श की संज्ञा के साथ ऐसा होता है, जैसे रूई के फाहे को किसी निहाई पर रख कर हथौड़े से उसपर प्रहार किया जाय; तो हथौड़ा रूई को कुचल देगा तथा निहाई टनटन बजने लगेगी।

अब हम अंतिम स्कंध पर आते हैं, जो हमारे लिये इस साधना शिविर में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह वास्तविकता का ऐसा पहलू है, जिसके विषय में हम कुछ कर सकते हैं, तथा इस के बारे में उचित प्रयास करने से, हम अपने दुख से बाहर निकलना प्रारंभ कर सकते हैं। ये हैं संस्कार (पालि में संखार) अर्थात इच्छायुक्त कार्य।

वास्तव में, यह प्रतिक्रिया का क्षेत्र है – भौतिक पदार्थ एवं मानस के मिलाप का। चेतना के, ज्ञानेंद्रियों के, तथा ज्ञेय विषयों के संयोजन का परिणाम, वस्तु विशेष का संज्ञान, एक संवेदना होती है। और उसके प्रति प्रतिक्रिया होती है। हम पसंद करते हैं। या हम नापसंद करते हैं। या हम उदासीन होते हैं। संवेदना या तो सुखद, अप्रिय, या तटस्थ होती है। हम प्रतिक्रिया करते हैं।

जो सुखद है उसे हम चाहते हैं, अप्रिय को अस्वीकार करते हैं, तथा तटस्थ को अनदेखा करते हैं। हम कार्यवाही करते हैं। या तो हम कुशल कार्य करते हैं या अकुशल। इस कार्य के साथ जुड़ी ऊर्जा को कर्म (पालि में कम्म) कहा जाता है। हम मन, वाणी, या शरीर से काम करते हैं। इन कृत्यों के परिणाम होंगे, अर्थात कार्य-कारण प्रभाव। कुशल या अच्छे कार्य अच्छे परिणाम लाएंगे। अकुशल या बुरे कृत्य बुरे या अप्रिय परिणाम लाएंगे। तटस्थ कृत्य कोई परिणाम नहीं लाएंगे।

प्रतिक्रिया होने के पहले ही यदि हम रोक सकें, तो उस क्षण तक जो कुछ भी हुआ है, उससे कुछ भी नहीं होगा। संवेदनायें तब भी सुखद, दुखद या तटस्थ होंगी, किन्तु हमारी उनमें आसक्ति या घृणा नहीं होगी। हम उसे वहीं जैसे का तैसा रहने देंगे।

हमने अभी क्या कहा है, यदि आप उस पर ध्यानपूर्वक विचार करें, तो आप को कुछ आश्चर्यजनक जैसा लगेगा। क्या हम वास्तव में ऐसा कह रहे हैं कि अच्छे कार्य करना बंद कर देना चाहिए? यह उतना सरल नहीं है। कार्यों का दो प्रकार से मूल्याङकन कर सकते हैं। (१) जिस व्यक्ति ने वह कार्य किया है उसके चारों ओर के परिवेश पर उस कृत्य के क्या परिणाम होंगे, उसके आधार पर कोई उस कार्य का मूल्याङकन कर सकता है। (२) जिस व्यक्ति ने वह कार्य किया है उस पर उस कृत्य के क्या परिणाम होंगे, उसके आधार पर कोई उस कार्य का मूल्याङकन कर सकता है।

यदि हम ऐसे व्यक्ति की बात करें, जो इन संखारों अर्थात इच्छाधारी कृत्यों या प्रतिक्रिया के बिना रहने में सक्षम है, तो हम पायेंगे कि उस व्यक्ति के सभी सचेतन कृत्य, उसके परिवेश के कल्याण के लिए होते हैं। किन्तु, चूंकि वे सभी कृत्य कर्म बनाने की ऊर्जा से रहित होते हैं, उनका उस व्यक्ति पर कोई परिणाम नहीं होगा। यदि हम उस व्यक्ति के अंदर झांक कर देख सकें, तो हम पायेंगे कि वह कोई प्रतिक्रिया नहीं करता। उसके कृत्य

परिणामों की अभिलाषा अथवा तिरस्कार से प्रेरित नहीं होते। हमें उसमें केवल सहज कृत्य ही मिलेंगे। सही मायने में सहज कृत्य दूसरों के लिए सदैव लाभप्रद होंगे। हानिकर कृत्य सदैव प्रतिक्रिया से उत्पन्न होंगे। जैसा कि आप ने अनुमान लगाया होगा, सहज या स्वाभाविक कृत्य वही व्यक्ति कर सकता है जो पूर्णतया जागृत, पूर्णतया मुक्त हो।

जब हम अपने लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे तब हम सहज, स्वाभाविक कृत्य करने में समर्थ हो जायेंगे। इस बीच, हम सीख रहे हैं। और हमारे पास जो कुछ भी है, हमें उसी के साथ काम करना है। हम इस समय जहां हैं, हमें वहीं से प्रारंभ करना है।

इसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने के लिए, हमें अपने मानस को इतना विकसित करना होगा कि हम पूरी तरह उसका नियंत्रण कर सकें। ऐसा करने के लिये आनापान तथा विपस्सना माध्यम हैं। इस बीच, हमें अच्छे या कुशल कार्यों को संवर्धित करना चाहिये, भले ही हमारे अच्छे कार्य किसी जागृत व्यक्ति की शुद्धता के साथ न सम्पन्न होते हों।

यह एक सुचक्र है :- हम जितने ही अधिक अच्छे या कुशल कार्य करते हैं, अच्छा जीवन जीना उतना ही आसान हो जाता है, तथा इसके कारण ध्यान केन्द्रित करना उतना ही सुगम हो जाता है, जिससे हमें अंतर्दृष्टि विकसित करने में सहायता प्राप्त होती है, जो हमें अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित करती है।

अनुरुद्ध की कथा[६]

अनुरुद्ध एक सुकुमार युवक थे जिन्हें हमेशा सभी प्रकार की विलासिता प्रदान की गई थी। '**नत्थि**' अर्थात 'कुछ नहीं' की अभिव्यक्ति उनके द्वारा कभी नहीं सुनी गई थी। एक दिन, वे अन्य शाक्य राजकुमारों के साथ कंचे खेल रहे थे। उनकी मां ने पुवा (मोदक) बना कर युवकों के लिए भेजा, तथा वे उन्हें खा कर आगे खेलते रहे। अनुरुद्ध हार रहे थे तथा उन्होंने तीन बार और पुवे मंगवाये। किन्तु जब उन्होंने चौथी बार मंगवाया, तो उनकी माँ ने सोचा, "मुझे इसे 'नत्थि' अर्थात 'कुछ नहीं है' शब्दों का अर्थ सिखाना चाहिए। अत: उन्होंने संदेश भेजा, '**नत्थि पुवा**'। अनुरुद्ध ने सोचा कि यह किसी नये प्रकार के पुवे का नाम है, अत: उन्होंने अपनी मां के पास कहला भेजा, "कृपया 'नत्थि पुवा' भेजिये"। उनकी माँ ने उन्हें 'नत्थि' का अर्थ समझाने के लिए, एक स्वर्ण पात्र को एक दूसरे स्वर्ण पात्र से ढंक कर भेजने का निर्णय लिया।

नगर के संरक्षक देवताओं को यह पता था कि किसी पिछले जन्म में अनुरुद्ध ने अपने भाग का भोजन एक प्रत्येक बुद्ध को इस आकांक्षा के साथ दिया था, कि उनको 'नत्थि' शब्द फिर से कभी सुनने को नहीं मिलेगा। यदि उन्होंने ऐसा होने दिया तो वे देवताओं की

परिषद में भाग लेने में सक्षम नहीं हो सकेंगे तथा उनके सिर सात टुकड़ों में विभाजित हो जायेंगे। अतः उन्होंने कटोरे को दैवी पुवों से भर दिया। जब ढंकने वाला पात्र उठाया गया, तो मिष्ठान्न की सुगन्ध समूचे नगर में फैल गई, तथा जब युवकों ने उसे चखा, तब उनके मुंह की सात हजार स्वाद कोषिकाएं प्रफुल्लित हो गईं। जब अनुरुद्ध घर गये तो उन्होंने अपनी माँ से पूछा कि क्या वे उन्हें प्यार करती हैं। तो वे बोलीं 'पुत्र, तुम मेरे लिए उतने ही प्रिय हो, जितनी कि एक आंख वाले व्यक्ति की आंख प्यारी होती है।' 'तो आपने इसके पहले मेरे लिये 'नत्थि पुवा' कभी क्यों नहीं बनाया?' माँ समझ गई कि पुवे देवताओं से आये होंगे। उसके बाद जब तक अनुरुद्ध घर पर रहे, और जब जब उन्होंने पुवा मंगवाया, तब तब उनकी मां एक खाली पात्र भिजवा देतीं तथा देवता उसे दिव्य पुवों से भर देते।

एक दिन, अनुरुद्ध के भ्राता महानाम ने कहा कि या तो अनुरुद्ध को या उन्हें स्वयं भिक्खु बनना चाहिये, जिससे परिवार में कम से कम एक पुत्र उच्च जीवन व्यतीत करे। अनुरुद्ध ने पूछा कि उसमें क्या करना होता है। महानाम ने बताया कि भिक्खु दाढ़ी तथा सिर मुण्डित करा कर, पीले चीवर पहन कर, टहनियों से बने शयनासन पर सोते हैं, तथा भिक्षाटन पर जाते हैं। अनुरुद्ध ने निर्णय लिया कि वे इसके लिए अत्यंत सुकुमार थे। अतः उन्होंने पूछा कि गृहस्थ जीवन में क्या करना होता है। वे इन सब बातों के बारे में इतने अनभिज्ञ थे कि वे समझते थे कि भोजन मणियों से जड़ी सोने की कटोरी में उगता है, ठीक उसी तरह जैसे उन्हें परोसा जाता है। जब उनको पता चला कि कृषि के लिये क्या क्या करना होता है, तथा यह सब पुनः पुनः प्रत्येक वर्ष प्रारंभ करना होता है तो - यह उनके लिये बहुत ज्यादा था। अतः उन्होंने भिक्खु बनने का निर्णय लिया तथा इस प्रकार, वे छह में से एक राजकुमार थे जिन्होंने एक साथ प्रव्रज्या ग्रहण की।

उन छह में से, आदरणीय भद्दिय ने प्रथम वर्षावास में ही, जब भिक्खु एकान्तवास कर रहे थे, पूर्ण जागृति प्राप्त कर ली। तत्पश्चात, अनुरुद्ध ने अपना लक्ष्य प्राप्त किया। आनंद, जो कालान्तर में बुद्ध के परिचर होंगे, जागृति के पहले चरण में स्थापित हुए। स्थविर भगु एवं किम्बिल अर्हत हुए। किन्तु देवदत्त ने कुछ लौकिक शक्तियां मात्र प्राप्त कीं, बस इसके आगे कुछ नहीं। ये शक्तियां चित्त एकाग्रता के माध्यम से विकसित की जा सकती हैं। परन्तु हम देवदत्त की कथा आपको कल संध्याकाल में सुनायेंगे।

संदर्भ सूची

१. The Wheel Nos. 31, 32
२. See Ven Ledi Sayadaw. The Manuals of Buddhism, p.24

३. For a detailed discussion of the five aggregates, see Ashin Buddhaghosa, *The Path of Purification*, Ch. III, ¶¶ 32-230; the Dhammasangani, (translated by Jagdish Kashyap, *Abhidhamma Philosophy* {reprinted by Bharatiya Vidya Prakashan, 1982}; and by Mrs Rhys Davids, *A Buddhist Manual of Psychological Ethics* {P.T.S., reprinted 1984}); and Egerton C. Baptist, *Abhidhamma for the Beginner* (Colombo, Sri Lanka, ca. 1959).
४. *The Middle Length Sayings,* I 315.
५. Ashin Buddhaghosa, Atthasalini, 263 (*The Expositor*, 349f.).
६. धम्मपद अट्ठकथा, १; १२. देवदत्तवत्थु

षष्ठ दिवस, प्रात: प्रवचन

एक दिन के लिए अमर पद देख लेना, बिना अमर पद देखे सौ वर्षों से भी श्रेयस्कर

यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं अमतं पदं । एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो अमतं पदं ।।

अमृत पद (निर्वाण) को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से, अमृत पद को देखने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन भी श्रेयष्कर होता है ।

धम्मपद, गाथा ११४

किसा गौतमी की कथा[१]

कल मैंने आपको पटाचारा की कथा सुनाई जिसने अपना समस्त परिवार खो दिया था । यह भी वैसी ही एक कथा है, जो दर्शाती है कि विश्व कितना दुखमय है ।

किसा गौतमी नामक एक युवा मां थी । वह एक गरीब परिवार में जन्मी थी, तथा लोग उसे तिरष्कार की दृष्टि से देखते थे । उसके नाम 'किसा' का अर्थ 'पतली' या 'लघु' होता है । फिर विवाह के उपरान्त उसे एक पुत्र हुआ, और इस कारण वह लोकप्रिय हो गयी । किन्तु उसके पुत्र की अल्प आयु में ही मृत्यु हो गई, तथा जिससे उसके जीवन का महत्व था, वह समाप्त हो गया । मृत्यु से उसका सामना कभी नहीं पड़ा था, अत: वह यह समझ नहीं पायी । उसने सोचा कि बच्चा गंभीर रूप से बीमार है, अत: वह उसके उपचार की तलाश में, उसे कूल्हे पर रख कर चारों ओर घूम रही थी । किसी ने उसे बुद्ध के पास जाने की सलाह दी । तब तक वह लगभग पागल सी हो गयी थी । लोग उस पर हंस रहे थे, एवं वह अत्यंत व्याकुल हो रही थी ।

जब वह बुद्ध के पास पहुंची, वे जेतवन कुञ्ज में निवास कर रहे थे तथा उस समय भिक्खुओं को उपदेश दे रहे थे । वह सभागार में खड़ी हुई तथा उसने बुद्ध से उस चिकित्सा के लिये अनुरोध किया जिसकी तलाश अबतक व्यर्थ थी । बुद्ध ने देखा कि इसके पहले उसने किसी मृत व्यक्ति का सामना नहीं किया था तथा वह धम्म में स्थापित होने के लिए तैयार थी । उन्होंने उससे कुछ सरसों के बीज लाने के लिए कहा । जब वह जाने लगी, तो बुद्ध ने कहा कि एक क्षण प्रतीक्षा करो और बताया कि 'सरसों का बीज उस घर से आना चाहिए जहां कभी कोई मृत्यु न हुई हो ।'

अत: किसा गौतमी अपने मृत बच्चे को कूल्हे पर रखे नगर में चारों ओर घूमने लगी, इस आशा से कि उसे वह प्राप्त हो जायेगा जिससे उसके बेटे की चिकित्सा होगी । किन्तु उसे शीघ्र ही यह पता चल गया कि मृत्यु जैसा नियमित आगंतुक कोई और नहीं है । उसे अनुभव होने लगा

कि मृत्यु सार्वभौमिक है। मृत्यु की प्रबलता से वह अभिभूत हो गयी, तथा समझ गयी कि बुद्ध उसे एक सबक सिखाना चाहते थे। वह बच्चे को श्मशान ले गयी। अब वह समझ गयी कि केवल उसका पुत्र ही नहीं था जिसकी मृत्यु हुई हो।

वह बुद्ध के पास लौट आई तथा एक भिक्खुणी बन गयी। उन्होंने पूर्व जन्मों में जो साधना की थी उनसे उनको लाभ मिला। कुछ भी शाश्वत नहीं है, इस ज्ञान का अनुभव करने में उन्हें कठिनाई नहीं हुई। वे समझ गईं कि अस्तित्व के सभी लोकों में, यहां तक कि ब्रह्म लोकों में भी प्राणियों की मृत्यु होती है। केवल एक अर्हत ही पूर्ण रूप से चला जाता है, फिर कभी पैदा नहीं होगा, फिर कभी मरेगा नहीं। वे अब उच्चतम चिकित्सा के लिए तैयार थीं जिससे उनका उपचार सदैव के लिये हो जायेगा।

बुद्ध ने उन्हें चार जलप्लावनों (ओघ) पर एक प्रवचन दिया, जो हम सभी को विह्वल कर देते हैं। इन्हें चार दूषणों या मादकों (आसवों) के रूप में भी जाना जाता है। ये हैं :- (१) कामेच्छा, (२) अमर अस्तित्त्व की इच्छा, (३) अनुचित विचारों का धारण, व (४) अज्ञानता। इन लजप्लावनों को पार करने वाला (**ओघतिन्नो**) ही एक अर्हत होता है। किसा गौतमी को वह सत्य समझ में आ गया जिसे साधारण मनुष्य समझने में असमर्थ होते हैं। जब उन्होंने अमर पद प्राप्त कर लिया तो बुद्ध ने वह गाथा सुनायी कि अमृत पद (निर्वाण) को न देखने वाले व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से, अमृत पद को देखने वाले व्यक्ति का एक दिन का जीवन भी श्रेयष्कर होता है।

माँ विशाखा की कहानी[२]

एक अन्य अवसर पर, प्रमुख गृहस्थ महिला शिष्या, विशाखा बुद्ध के पास आयीं। उनके कपड़े और बाल भीगे थे। जब बुद्ध ने इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बताया, 'भन्ते, मेरा एक अत्यंत प्रिय नाती मर गया है। इसी कारण मैं अपने भीगे वस्त्र एवं बालों के साथ इस असामान्य समय पर आई हूं।' यह एक शोक का संकेत था।

बुद्ध ने विशाखा से पूछा, 'जितने कि श्रावस्ती में मनुष्य हैं, क्या आपको उतने ही नाती पोते चाहिये?' इस संसार की सबसे बड़ी खुशी अनेक बच्चों का होना माना जाता था। अत: विशाखा ने बुद्ध के प्रश्न का उत्तर हाँ में दिया।

बुद्ध ने पूछा, 'किन्तु विशाखा, श्रावस्ती में प्रत्येक दिन कितने लोगों की मृत्यु होती है?'

उन्होंने कहा, 'भंते, श्रावस्ती में प्रत्येक दिन एक से लेकर दस लोगों की मृत्यु होती है। कोई भी ऐसा दिन नहीं होता जब किसी न किसी की मृत्यु न हो।'

बुद्ध ने पूछा, 'तो फिर क्या आप कभी भी भीगे वस्त्र एवं भीगे बालों के बिना रह पायेंगी?'

विशाखा के उत्तर दिया, 'नहीं, भन्ते, मेरे पास अब पर्याप्त नाती पोते हैं ।'

तथा बुद्ध ने उनसे कहा कि जिसके एक सौ प्रियजन हों उन्हें एक सौ कष्ट होगा । यहां तक कि एक प्रियजन का अर्थ होगा पीड़ा । बुद्ध ने कहा 'जिनका कोई प्रियजन नहीं है, उन्हें कोई पीड़ा नहीं है । वे शोकरहित, निराशा रहित एवं आवेशहीन होते हैं ।' तथा उन्होंने निम्नलिखित गाथायें सुनायीं[३] :-

''ये केचि सोका परिदेविता वा, दुक्खा च लोकस्मिमनेकरूपा।
पियं पटिच्चप्पभवन्ति एते, पिये असन्ते न भवन्ति एते॥
''तस्मा हि ते सुखिनो वीतसोका, येसं पियं नत्थि कुहिञ्चि लोके।
तस्मा असोकं विरजं पत्थयानो, पियं न कयिराथ कुहिञ्चि लोके''ति॥

प्रियजनों के कारण ही इस संसार में दुख एवं शोक, तथा प्रत्येक प्रकार की पीड़ा होती है । जब कोई प्रियजन न हो तो वे समाप्त हो जाती हैं । जिनका कोई प्रियजन नहीं होता, वे सुखी एवं शोकरहित होते हैं । वह व्यक्ति जिसे शोकरहित आवेशहीनता की तलाश है, उसका कोई भी प्रियजन नहीं होना चाहिये ।

हमें याद रखना चाहिये कि, यहाँ जब बुद्ध प्रिय की बात करते हैं, तो वे आसक्त होने के अर्थ में करते हैं ।

विशाखा, मिगार की मां के रूप में जानी जाती थीं । मिगार वास्तव में उनके श्वशुर थे । वे विशाखा के कारण ही धम्म में स्थापित हुए थे, तथा उन्होंने उनसे बताया कि इसी कारण वे उनकी माँ के समान थीं । इसी भाव में छात्र सयामा जी को माँ सयामा जी कहकर संबोधित करते हैं ।

जब विशाखा ने कहा कि उनके पर्याप्त बच्चे तथा नाती पोते थे तो वह एक महत्वपूर्ण टिप्पणी थी, क्योंकि उनको दस पुत्र एवं दस पुत्रियां थीं । प्रत्येक संतान को दस पुत्र एवं दस पुत्रियां थीं । इस प्रकार चार सौ नाती पोते हुए । प्रत्येक नाती को बीस बच्चे थे । इस तरह ८ 000 परपोते हुए । अत: विशाखा एवं उनके पति को मिलाकर, परिवार में ८४२२ सदस्य थे । जब विशाखा अपनी बेटियों, पोतियों, तथा पर पोतियों के साथ बैठी होती थीं, तो यह बताना असंभव होता था कि उनमें विशाखा कौन हैं । अपनी वृद्धावस्था के कारण उठते समय जब वे अपने घुटनों पर हाथों का दबाव डालती थीं, केवल तभी यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उनमें से विशाखा कौन हैं । उनकी सुंदरता अतुलनीय थी । तथा वे एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रहीं ।

अपने जीवन भर उन्होंने श्रावस्ती के भिक्खुओं को खिलाया । ऐसा कहा जाता था कि श्रावस्ती में रहने वाले एक भी भिक्खु ऐसे नहीं थे जिन्होंने उनका भोजन न चखा हो । प्रत्येक दिन वे हजारों भिक्खुओं, भिक्खुणियों तथा गृहस्थ शिष्यों को भोजन कराती थीं ।

माँ विशाखा सात वर्ष की आयु में ही प्रथम फल (अर्थात स्रोतापन्न) पद में स्थापित हो गई थीं, किन्तु जैसा कि हमने देखा, इससे उनके जीवन के सारे दुख नष्ट नहीं हो पाये थे । जब उन्होंने उस आनंदमयी फल पद का वास्तव में अनुभव किया था, तो उस समय उन्हें दुख बिल्कुल नहीं था, किन्तु जहां सदैव के लिये दुख का निर्मूल नाश हो जाता है, उस पद तक पहुंचने के लिए, उन्हें आगे और भी साधना करने की आवश्यकता होगी ।

दु:ख[४]

कल हमने अस्तित्व की तीन विशेषताओं के बारे में बात की :- नश्वरता (अनिच्च), पीड़ा (दु:ख), तथा किसी स्थायी स्वयं का अभाव (अनत्ता), तथा हम नश्वरता के विषय में कुछ विस्तार में गये । आज प्रातः, हम और अधिक सूक्ष्मता से दुख, पीड़ा या कुण्ठा की जांच करते हैं ।

सयाजी ऊबा ख़ीं ने कहा है :- 'नश्वरता या अनिच्च की विशेषताएं, दु:ख या कुण्ठा की विशेषताओं से अंतरंग रूप से बंधी हैं । चाहे परिवर्तन आकस्मिक हो – जैसे मृत्यु एवं पुनर्जन्म – या एक लंबी अवधि में हो, जब तक शरीर जीवित है, मृत्यु की संभावना की अनिवार्यता विद्यमान है । जब तक परिवर्तन तथा नश्वरता है, वहाँ दुख एवं कुण्ठा है ।'

बुद्ध ने अपने सर्वप्रथम उपदेश 'धम्मचक्क पवत्तन सुत्त' में चार आर्य सत्य के विषय में बताया । चार अर्य सत्यों में प्रथम दुख सत्य है । हमने यह प्रवचन आपको दूसरे दिन प्रात:काल में दिया था ।

बुद्ध ने कहा, 'तो भिक्खुओं, यह दुख का आर्य सत्य है :- जन्म दुखद है, वृद्धावस्था दुखद है, रोग दुखद है, मृत्यु दुखद है, अप्रिय का साथ दुखद है, प्रिय से विरह दुखद है, इच्छानुकूल वस्तु प्राप्त न कर पाना दुखद है – संक्षेप में, पाँचो स्कंध [अर्थात भौतिक रूप, संवेदना, संज्ञा, संस्कार एवं चेतना] जो अस्तित्व का नवीनीकरण करते रहते हैं, दुखद हैं ।

'तो भिक्खुओं, दुख की उत्पत्ति का आर्य सत्य यह है:- वह है तृष्णा (पालि में, तण्हा) जो पुनर्जन्म की ओर ले जाती है, जो विभिन्न प्रकार की इच्छाओं द्वारा आह्लादित होती है, जिसकी संगत उमंग एवं हर्ष से होती है; अर्थात कामुक इच्छा की लालसा, एक शाश्वत अस्तित्व की लालसा, तथा अस्तित्वहीनता की लालसा ।

'तो भिक्खुओं, दुख के समापन का आर्य सत्य यह है:- वह है समाप्ति, तृष्णा की पूर्ण

अनुपस्थिति, त्याग, मुक्ति, स्वतंत्रता, निष्काम उदासीनता ।

'तो भिक्खुओं, दुख की समाप्ति के लिए प्रमुख मार्ग का आर्य सत्य यह है:- वह है अष्टांगिक आर्य मार्ग अर्थात सम्यक संकल्प, सम्यक दृष्टि, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक सति एवं सम्यक एकाग्रता ।

चार में से प्रथम आर्य सत्य में बुद्ध हमारे दैनिक जीवन की स्थितियों की चर्चा करते हैं । प्रत्येक मनुष्य जन्म लेता है, जरण या आयुर्वृद्धि के साथ अनेक प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोग एवं व्याधियां होती हैं, और अंततः प्रत्येक मनुष्य को मरना पड़ता है । प्रत्येक दिन हमें उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों से संबद्ध होना पड़ता है, जिनसे हम नहीं होना चाहते, तथा प्रत्येक दिन हमारा उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों से वियोग होता है जिनके हम सदैव संपर्क में रहना पसंद करते हैं । प्रत्येक दिन हम उन चीजों के लिए काम करना चाहते हैं जिन्हें हम प्राप्त नहीं कर सकते ।

अब मैं दुख के इस आर्य सत्य के विषय में सयाजी ऊबा ख़ीं के लेखन से एक उद्धरण पढ़ता हूं । सयाजी ऊबा ख़ीं ने अपने व्याख्यान, 'बौद्ध धर्म है क्या', में लिखा है:-

'जब मैं कहता हूँ कि बुद्ध के अनुसार जीवन दुख है, तो कृपया, यह मत सोचिये कि जीवन दूभर है, जीने योग्य नहीं है, तथा बौद्ध दुख की अवधारणा एक भयानक संकल्पना है, जो एक सुखी जीवन का उचित अवसर नहीं देगी । सुख क्या होता है? विज्ञान ने भौतिकता के क्षेत्र में जो उपलब्धि की है, क्या उससे संसार के लोग सुखी हैं? वे यदा कदा ऐन्द्रिय सुखों को पा सकते हैं किन्तु, जो कुछ भी हुआ है, हो रहा है तथा होने वाला है, उससे उनको हार्दिक प्रसन्नता नहीं होती । क्यों? यह इस कारण से है कि भले ही मनुष्य ने प्रकृति पर तो विजय प्राप्त कर ली है, किन्तु वह अभी अपने मन पर विजय नहीं पा सका है ।

मन की आंतरिक शांति से उत्पन्न हर्ष या प्रीति (पालि में, पीति), जो बौद्ध ध्यान की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त हो सकती है, उसकी तुलना में वासना के भोग से उत्पन्न आनन्द कुछ भी नहीं है । जैसे कोई गंवार व्यक्ति अपने शरीर की खुजली को सावधानी से खुजलाने में आनन्द पाता है, इंद्रिय सुख वैसे ही, या तो पहले या बाद में पीड़ा एवं कष्ट देते हैं, जबकि पीति पहले या बाद में इस प्रकार की समस्याओं तथा पीड़ा से मुक्त होती है । यह पीति क्या है, आपके लिये इसका कामुक दृष्टिकोण से मूल्यांकन कर पाना कठिन है । किन्तु मुझे पता है कि आप इसका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं तथा एक तुलनात्मक मूल्यांकन के लिए इसका स्वाद भी ले सकते हैं । अत: इस परिकल्पना में कुछ भी नहीं है कि बौद्ध धर्म आप को वह सिखाता है, जिससे आप को दुख के दु:स्वप्न से पीड़ा होगी । किन्तु मेरे विचार से, यह जीवन की सामान्य परिस्थितियों से मुक्ति दिलाता है, जैसे स्वच्छ जल के तालाब में एक कमल अपने उग्र परिवेश से

प्रतिरक्षित होता है। यह आपको वह आंतरिक शांति देगा जिससे यह संतोष प्राप्त होगा कि आप न केवल दैनिक जीवन की कठिनाइओं से परे हो रहे हैं, किन्तु धीरे धीरे और निश्चित रूप से जीवन, पीड़ा तथा मृत्यु की सीमाओं से भी परे हो रहे हैं।'

डॉ. राइट का अनुभव

अब मैं आपको एक ऐसे व्यक्ति की कहानी सुनाता हूं जो मन की आंतरिक शांति प्राप्त करने में तथा ध्यान के माध्यम से उपलब्ध आनन्द का स्वाद चखने में सक्षम हुए।

यंगॉन के अमरीकी दूतावास में एक श्याम वर्ण के अमरीकी, सांस्कृतिक दूत या अटैचे के रूप में काम करते थे, जो अप्रैल १९५७ में सया जी तथा सयामा जी के अंतर्गत साधना करने अंतर्राष्ट्रीय सधना केन्द्र में लाये गये। वे बर्मा के एक लघु न्यायालय के न्यायाधीश के मित्र थे। ये न्यायाधीश एक अन्य बौद्ध साधना की विधि का अभ्यास कर चुके थे तथा दूसरों को सिखाते भी थे। वे आई एम सी यंगॉन में ध्यान लगाने के लिए आये, और जब सयामा जी ने उन्हें बताया कि उन्हें एक घंटे तक बैठना होगा तो वे हँसे। उन्होंने कहा कि उनकी तो बाईस घंटे तक बिना हिले डुले बैठने की आदत थी। चूंकि वे स्वयं साधना के एक आचार्य थे, अत: उन्होंने, विशेष रूप से एक महिला के मार्गदर्शन में काम करने के कारण, थोड़ी अरुचि के साथ साधना प्रारंभ की। किन्तु एक घंटा समाप्त होने के पहले ही उन्हें समझ में आ गया कि वे एक अत्यंत शक्तिशाली विधा के संपर्क में थे। वे पहले की तरह एक घंटे भी नहीं बैठ सके। तथा तब से उनके मन में सयामा जी के लिए गहरा सम्मान उत्पन्न हुआ।

अत: उन्होंने उन श्याम वर्ण अमरीकी, डॉ. राइट को सयाजी एवं सयामा जी के अंतर्गत साधना के लिए प्रोत्साहित किया। न्यायाधीश एक पुराने छात्र थे, अत: वे काम के बाद आकर ध्यान लगाते, रात बिताते, तथा प्रात: अपने काम के लिए जा सकते थे। इस प्रकार उन्होंने डॉ. राइट को और प्रोत्साहित किया।

डॉ. राइट केंद्र पर आने से पहले बर्मा में कई आध्यात्मिक गुरुओं से मिल चुके थे, किन्तु यह उनका पहला साधना शिविर था। सदैव की तरह, दिन में सया जी ऊबा ख़ीं अपने कार्यालय में होते थे, तथा सयामा जी प्रभारी होती थीं। विपस्सना एसोसिएशन की कार्यकारी समिति के एक सदस्य, ऊ माँग माँग ख़ीं, जो सयाजी ऊ बा ख़ीं द्वारा स्थापित विपस्सना शोध संस्था के सदस्य भी थे, कोर्स करने हेतु केन्द्र पर थे। अत: वे सयामा जी एवं डॉ. राइट के लिए अनुवाद कर सके थे।

एक दिन, डॉ. राइट अशांत हो गये, तो उन्होंने ऊ मॉङग मॉङग ख़ीं से सयामा जी को

बताने के लिए अनुरोध किया । यंगॉन के केंद्र पर छात्र या तो किसी कोशिका में या पगोडा के चारों ओर के आठ कक्षों में से एक में ध्यान लगाते हैं, तथा आचार्य पगोडा के मध्य में ऊंचे मंच पर बैठते हैं । डॉ. राइट बोधि वृक्ष के पक्ष में एक कोशिका में थे, तथा सयामा जी आयीं एवं केंद्र में अपने स्थान पर बैठीं ।

डॉ. राइट ने स्पष्ट किया कि उन्हें कठिनाई हो रही थी, क्योंकि जब वे अपनी आँखें बंद करते थे तो उन्हें एक राक्षस की आकृति आमने सामने दिखाई देती थी । सयामा जी ने, यह सोचकर कि उन्हें भी उनकी सलाह स्वीकार करने में कठिनाई हो सकती है, यह परामर्श दिया कि कार्यालय से लौट आने पर सयाजी से वे इसके बारे में पूछें । किन्तु डॉ. राइट ने कहा, 'आपके वचन को मैं आधिकारिक मानूंगा । आप जैसा कहेंगी मैं बिल्कुल वैसा ही करूंगा ।' तो उन्होंने कहा, 'आपके पास कोई ऐसी वस्तु है, जिससे आपको लगाव हो गया है, किन्तु वह आपकी साधना के लिए अनुकूल नहीं है ।'

डॉ. राइट ने अपनी जेब से एक छोटा बर्मी पर्स बाहर निकाला और उन्हें देने लगे । सयामा जी ने कहा, 'मुझे मत दें, इसे मॉङग मॉङग ख़ीं को लेना चाहिए ।'

ऊ मॉङग मॉङग ख़ीं हिचकिचाये । वे उस वस्तु के संपर्क में आने के विषय से थोड़ा चिंतित थे । अत: माँ सयामा जी ने यह समझा कर जोर दिया कि यदि इससे वे प्रभावित हुईं तो वहां कोई आचार्य नहीं होगा, किन्तु यदि उसे उन्होंने ले लिया, तो वे उन्हें सुरक्षा प्रदान करने में समर्थ होंगी । अत: ऊ मॉङग मॉङग ख़ीं ने उसे ले लिया तथा दूर रख दिया । डॉ. राइट ने राक्षस के प्रति करुणा अनुभव की तथा उसके साथ पुण्य बांटने की कामना की । तथा उन्होंने सूचित किया कि उन्हें ऐसा लगा कि मानो एक महान तूफान ने राक्षस को उड़ा दिया हो । तत्पश्चात वे ठीक से ध्यान लगाने लगे ।

उस सायंकाल जब न्यायाधीश वापस आये तो उनको उस घटना के विषय में बताया गया । सयाजी ने कहा, 'क्यों न इसे फेंक दिया जाय?' आप ने इसके प्रभाव को देखा है । क्या आप को अभी भी इसमें उतनी ही आसक्ति है?' तो डॉ. राइट ने बाड़े के उस पार केंद्र के पीछे निर्जन जमीन के टुकड़े में उसे फेंक दिया ।

वास्तव में, सयाजी के समय केंद्र पर छात्रों के लिये एक सूचना टँगी होती थी कि यदि उनके पास कोई मनका या धागा हो तो वे उसे प्रबंधक को दे दें । कभी कभी, डॉ. राइट की तरह, इस तरह के निर्देशों का विवेक हमें कठिन तरीके से सीखना पड़ता है ।

उस घटना के बाद, डॉ. राइट ने अपनी आंतरिक चक्षु से सयाजी का एक विम्ब देखा कि वे बृहदाकार थे तथा बुद्ध की मूर्ति के बगल में थे, एवं उनके बगल में एक बहुत ही छोटी काली

आकृति देखी, और डॉ. राइट ने उसे स्वयं की आकृति समझा – उन्होंने कहा, 'ऐसा लग रहा था जैसे कोई बंदर की तरह चारों ओर कूद फांद रहा हो।'

जब उन्होंने विपस्सना की, तो डॉ. राइट ने बहुत अच्छा किया। उस समय, ध्यान के लिये भूतल कोशिकाओं का निर्माण चल रहा था। उनकी कोशिका से पांच फीट से भी कम की दूरी पर लोग कॉंक्रीट की ढलाई कर रहे थे। तथा जब वे साधना करते थे, तो वे डेढ़ डेढ़ घंटे तक निर्माण स्थल से शोर सुने बिना ध्यानमग्न रह सकते थे।

डॉ. राइट अमरीका वापस चले गये, तथा १९६३ में सयाजी ऊ बा ख़ीं ने उन्हें आनापान शिक्षण में अधिकृत करने के लिए एक पत्र भेजा। वे बर्मा के बाहर साधना के आचार्य के रूप में अधिकृत किये जाने वाले पहले व्यक्ति थे। वह पत्र बर्मा दूतावास, वाशिंगटन, डीसी में, बर्मा के राजदूत द्वारा एक सार्वजनिक समारोह में उन्हें प्रस्तुत किया गया। डॉ. राइट ने सूचित किया कि तीन वर्ष के भीतर १०,००० लोगों को; महाविद्यालयों के पुरुषों तथा महिलाओं को एवं अपने जैसे इसाई पादरियों को, उन्होंने उपदेश दिये।

सयाजी ऊ बा ख़ीं उस समय की कहानी बड़े चाव से सुनाते थे जब इंग्लैंड की पालि टेक्स्ट सोसायटी की सचिव यंगॉन के केंद्र पर आयी थीं। जब उन्हें पता चला कि अमरीका के एक धर्म प्राचार्य, जिन्होंने पालि ग्रंथों का कभी अध्ययन नहीं किया था, बौद्ध धर्म पर व्याख्यान देते हैं, तो उन्होंने पूछा कि ऐसा कैसे संभव हो सकता है। सयाजी ने उन्हें बताया कि डॉ. राइट को अपने व्यक्तिगत अनुभव से बुद्ध धम्म का ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होंने यह भी बताया कि सयामा जी ने भी गंभीरता से ग्रंथों का अध्ययन कभी नहीं किया था, तथापि वे किसी भी प्रश्न का उत्तर दे सकती हैं, चाहे वे प्रश्न गृहस्थ द्वारा हों या विद्वान भिक्खुओं द्वारा। वे अपने अनुभव से, तथा व्यक्तिगत रूप से प्राप्त ज्ञान के कारण उनका उत्तर दे सकती हैं। यदि आप अपने अनुभव से उत्तर देते हैं, तो आप कैसे गलत हो सकते हैं?

संदर्भ सूची

[1]We use the version of this story given in the commentary to the Theri-gatha (see *Psalms of the Sisters*, pp. 106-108). A slightly different version is found in *Buddhist Legends*, II, 257-260.
[2]For the story of Visakha see *Buddhist Legends* II 59-84. On the death of her granddaughter, see *op. cit.*, 84f.
[3]Udana, p. 92 (*Verses of Uplift*, pp. 111f.; also in *The Life of the Buddha*, p. 156).
[4]This discussion of *dukkha* is based on Ledi Sayadaw's *Exposition of Insight* (Burma ed., *The Manuals of Buddhism*, p. 26; *The Wheel* 3132, pp. 67-72).

षष्ठ दिवस, सायं प्रवचन

अपने चंचल मन को सीधा करें

फन्दनं चपलं चित्तं, दूरक्खं दुन्निवारयं। उजुं करोति मेधावी, उसुकारोव तेजनं ।।

वारिजो व थले खित्तो, ओकमोकत उब्भतो। परिफन्दतिदं चित्तं, मारधेयं पहातवे ।।

चित्त जो चंचल है, चपल है, कठिनता से संरक्षित होता है, तथा कठिनता से जिसका निवारण होता है, उसे मेधावी व्यक्ति वैसे ही सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को। जैसे जल से निकाल कर धरती पर फेंकी गई मछली तड़फड़ाती है, वैसे ही मार के फंदे से निकलने के लिये यह चित्त (तड़फड़ाता है)।

धम्मपद, गाथा ३३, ३४

आचार्य के परामर्श के पालन का महत्व[१]

बुद्ध ने यह शिक्षा मेघिय थेर के संदर्भ में दी, जब वे चालिक पर्वत पर रह रहे थे। मेघिय बुद्ध के परिचर के रूप में काम करने वाले आठवें भिक्खु थे। तथा उनके बाद, बुद्ध के चचेरे भाई, आनंद ने बुद्ध के शेष जीवन पर्यंत, परिचर के रूप में उनकी सेवा की तथा विशिष्टता के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया।

एक अवसर पर, जब मेघिय अभी भी उनके परिचर थे, भिक्षा लेकर वापस आये तथा जंतुगाम के निकट, किमिलाल नदी के किनारे गये। वहाँ, उन्होंने एक आम का बगीचा देखा तथा सोचा कि यह स्थान उनके ध्यान लगाने के लिए उपयुक्त होगा। वे बुद्ध के पास वापस लौट आये तथा उस आम के बगीचे में ध्यान लगाने के लिए अनुमति का अनुरोध किया।

बुद्ध ने उत्तर दिया, 'मेघिय, कुछ समय के लिए प्रतीक्षा करें। जब तक कोई अन्य भिक्खु न आ जाय, तब तक प्रतीक्षा करें। मैं अकेला हूँ।'

किन्तु मेघिय ने उसी बात के लिये तीन बार अनुरोध किया। अंत में बुद्ध ने कहा, 'चूंकि आप बार बार प्रयास करने की बात कर रहे हैं, तो मैं क्या कह सकता हूँ? मेघिय आप जो चाहें करें।'

तो मेघिय बुद्ध को अकेला छोड़ कर उस आम्र कुन्ज में चले गये। जब वे ध्यान लगा रहे थे

तो उनके मन में तीन प्रकार के अकुशल विचार आये :- कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार, तथा क्रूर विचार।

मेघिय ने सोचा, 'यह बहुत अजीब बात है। जब मैंने इतने विश्वास के साथ संसार त्याग किया है, तो मुझे क्यों ऐसे दूषित, अकुशल विचारों से ग्रसित होना चाहिये? तथा वे बुद्ध के पास लौट आए और उन्हें सूचित किया, 'भन्ते, जब मैं आम्र कुञ्ज में ध्यान लगा रहा था, तो तीन प्रकारके अकुशल विचार मेरे मन में उत्पन्न हुए :- कामुक विचार, द्वेषपूर्ण विचार, तथा क्रूर विचार।'

ऐसा था कि, पिछले जन्म में मेघिय, उस आम्रकुञ्ज में रहने वाले एक राजा थे, तथा चूंकि वहां उनका एक स्त्रीगृह, अर्थात अन्त:पुर या हरम था, उनके मन को कामुक विचार ग्रसित करने लगे; तथा राजा के रूप में उन्होंने अपराधियों को प्राणदण्ड का आदेश दिया था, जिसके परिणामस्वरूप घृणा से भरे क्रूर विचार उन्हें ग्रसित कर रहे थे। बुद्ध ने उन्हें याद दिलाया कि, उन्होंने उन्हें बगीचे में जाने से रोकने का प्रयास किया था, लेकिन वे इस अविवेकी कार्य को करने पर अड़ गये थे।

मुक्ति के लिए प्रथम अनुकूल परिस्थिति : अच्छा मित्र

तब बुद्ध ने वह गाथा सुनायी जिसे हमने उद्धृत किया है तथा एक प्रवचन दिया। इस प्रवचन में उन्होंने मन की मुक्ति (पालि में, चेतो विमुत्ति) के लिए पाँच अनुकूल परिस्थितियों के विषय में मेघिय को निर्देश दिए। ये हैं :- (१) अच्छा मित्र, (२) एक नैतिक जीवन, (३) शिक्षाओं को सुनना, (४) धम्म या उपदेशों के अनुसार साधना करना, तथा अंत में (५) अंतर्दृष्टि, प्रज्ञा की प्राप्ति।

एक अच्छा मित्र वह है जिसकी वाणी उचित हो, जिसकी उपस्थिति में वह सुनने को मिलता हो, जो कभी सुना न गया हो, जो पहले से सुना है उसे वह संशोधित करता है, संदेह से मुक्ति दिलाता है, जो किसी की सोच को ठीक करता है, तथा जो श्रद्धा के विकास में सहायक होता है। अर्थात यह वह है जो हमें श्रद्धा, नैतिकता, अध्ययन, उदारता, एवं ज्ञानोपार्जन में प्रशिक्षित करता है। नि:सन्देह, सबसे अच्छे मित्र स्वयं बुद्ध हैं। जैसा कि उन्होंने कहा है,'चूंकि मैं एक अच्छा कल्याण मित्र हूं, जीवित प्राणी जो जन्म के अधीन हैं वे स्वयं को जन्म से मुक्त करने में सक्षम हो पाते हैं।' बुद्ध हमारे लिए हमारा ध्यान भले न लगा पायें, किन्तु हम उन्हीं के कारण यह सीख पा रहे हैं कि हमें साधना कैसे करनी है, तथा उन्हीं के कारण एवं उनके उन अनुयाइयों

के कारण जो उनकी शिक्षा के अनुसार काम करते हैं, हम प्रगति के लिए आवश्यक सुरक्षा एवं मार्गदर्शन प्राप्त कर पा रहे हैं। हमने पहले ही कल्याण मित्र के रूप में ध्यान के आचार्य के विषय में विशुद्धि मार्ग से उद्धरण दिया है। बुद्ध से प्रारंभ कर नीचे उतरते हुए, सबसे अच्छा वह कौन व्यक्ति है जिसके पास ध्यान लगाना सीखने के लिये जाना चाहिये? 'वह आचार्य जो ग्रंथों को जानता है, परंपरा का पालन करता है, विरासत की रक्षा करता है, तथा जो अपनी राय के बजाय अपने आचार्य के मत का अनुसरण करता है।'[२]

जोतिपाल की कथा[३]

स्वयं बुद्ध के एक अच्छे मित्र थे, जिन्होंने उनके अतीत के जन्मों में से एक जन्म में उनकी सहायता की थी। उस जन्म में उनका नाम जोतिपाल था, तथा वह उनके पहले के बुद्ध, काश्यप (पालि में, कास्सप) बुद्ध का समय था। जोतिपाल को कास्सप बुद्ध से नियतविवरण (अंतिम सुनिश्चित भविष्यवाणी) प्राप्त करनी थी। उनके मित्र, घटिकर ने सुझाव दिया कि वे बुद्ध के दर्शन के लिये चलें, किन्तु जोतिपाल ने कहा, 'किसी मुण्डित भिक्खु से कौन मिलना चाहता है!' तथा उस प्रतिकूल टिप्पणी से संबद्ध दूषित संस्कार (मानसिक इच्छाशक्ति) के कारण, जब वे बोधिसत्व सिद्धार्थ हुये, तो उन्हें अपनी पूर्ण जागृति के लिये छह वर्षों तक काम करना पड़ा। यदि उन्होंने वैसा न कहा होता, तो उनकी उपलब्धि शीघ्र हो गई होती।

जोतिपाल के मित्र ने निर्णय लिया कि उन्हें यथोचित बुद्धिसम्मत बनाना पड़ेगा, भले ही इसके लिये धृष्ट होना पड़े। अत: जब वे नदी में स्नान कर रहे थे, तो उन्होंने जोतिपाल के सिर के बाल पकड़ कर उन्हें धमकाया कि यदि उन्होंने काश्यप बुद्ध के दर्शन के लिये जाने से मना कर दिया तो वे उन्हें डुबा देंगे। और इससे काम बन गया।

देवदत्त एवं अजातशत्रु की कथा[४]

अनुचित प्रकार के मित्र से हमें अत्यंत दुख हो सकता है। बुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त एक भिक्खु थे जिन्होंने पहले बहुत परिश्रम किया, तथा यद्यपि उन्होंने कोई फल पद नहीं प्राप्त किया, किन्तु समाधि या ध्यान (पालि में झान) पदों को अवश्य विकसित किया। वे इतने अच्छे भिक्खु थे, कि बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में से एक, आदरणीय सारिपुत्र (पालि में, सारिपुत्त) ने उनकी अत्यधिक प्रशंसा की। किन्तु वे महत्वाकांक्षा से ग्रसित हो गये, तथा उन्होंने निर्णय लिया कि उन्हें संघ

समुदाय का प्रमुख बनना है । उन्होंने बुद्ध को संघ समुदाय के अध्यक्ष के रूप में देखा तथा सोचा कि यह भूमिका किसी और को भी पारित की जा सकती है । जब बुद्ध ने देवदत्त को संघ का प्रमुख बनाने से मना कर दिया, तो उन्होंने यह पद बल द्वारा प्राप्त करने का निर्णय लिया ।

देवदत्त, राजा बिम्बिसार के पुत्र, राजकुमार अजातशत्रु (पालि में, अजातसत्तु) के मित्र थे, तथा उन्हौंने राजकुमार से कहा कि वे अपने पिता की हत्या कर, सिंहासन ग्रहण कर लें, एवं देवदत्त बुद्ध की हत्या कर संघ ग्रहण कर लेंगे । वे बुद्ध को तो नहीं मार सके, यद्यपि उन्हौंने कई प्रकार के प्रयास किये, जिसमें बुद्ध पर एक बड़ी चट्टान गिराना, उनके विरुद्ध एक जंगली हाथी भेजना, तथा उनपर बाण चलाने के लिये तीरंदाजों को भेजना, सम्मिलित था । किन्तु अजातसत्तु ने अपने पिता की अवश्य हत्या कर दी ।

तो, पिता का वध, पांच प्रमुख अपराधों में से एक है, जिसका अनिवार्य रूप से अर्थ यह है कि अगले ही जीवन में निम्नतम नरक में पुनर्जन्म तथा एक अविश्वसनीय लंबी अवधि का वह जीवन । अत: अपने मित्र के कारण अजातसत्तु अपरंपार दुख भोग रहे हैं ।

किन्तु वास्तव में, अजातसत्तु की पीड़ा ने प्रारंभ होने के लिये अगले जन्म की प्रतीक्षा नहीं की । उनका अंतर्मन स्वच्छ नहीं था । सम्राट बनने के बाद, एक पूर्णिमा की संध्या को अजातसत्तु बुद्ध के दर्शन के लिए गये, तथा उस आम्र कुंज में पहुंचने पर जहां बुद्ध अनेक भिक्खुओं के साथ ध्यान में बैठे थे, वे चिंतित हो गये क्योंकि वहां कोई ध्वनि नहीं थी । उन्होंने सोचा कि इसका अर्थ है कि उनके विरुद्ध कोई षडयंत्र है । तथा जब उन्होंने बुद्ध का उपदेश सुना तो वे उस पर अपना पूरा ध्यान केंद्रित नहीं कर पाये, क्योंकि वे अपनी चिंताओं से विचलित हो गये थे । उनके जाने के बाद, बुद्ध ने भिक्खुओं से कहा कि यदि अजातसत्तु ने अपने पिता की हत्या न की होती तो वह धर्मोपदेश उनके सोतापन्न होने के लिए पर्याप्त हुआ होता ।

द्वितीय आवश्यकता : नैतिकता

तो हम मन को मुक्ति दिलाने के लिए दूसरी अनुकूल स्थिति, नैतिकता की ओर आते हैं । यदि कोई भिक्खु है, तो संघ के मार्गदर्शन के लिए बुद्ध द्वारा निर्धारित नियम (पातिमोक्ख) हैं । किसी भिक्खु या भिक्खुणी को देखना चाहिए कि छोटा से छोटा अपराध करने में भी क्या खतरा है । तथा हम गृहस्थ जनों को स्थायी रूप से पंचशील अर्थात पाँच शिक्षापदों के पालन का महत्व समझना चाहिये, तथा विशेष दिवसों पर अथवा साधना शिविर में भाग लेते समय, आठ शिक्षापदों का ।

तीसरी आवश्यकता : धम्म प्रवचन सुनना

तीसरी गुणवत्ता जो हमें मुक्ति के लिए तैयार करती है, वह है बुद्ध की शिक्षा के विषय में प्रवचन सुनना। बुद्ध ने दानव आलवक को बताया था कि ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग धम्म पर प्रवचन सुनना था।[५] इसमें हम धम्म पर पुस्तकें पढ़ना भी सम्मिलित कर सकते हैं। हम इससे एक अच्छा सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, तथा इससे हमें साधना के लिए प्रेरणा मिलेगी और हमें बेहतर काम करने में सहायता प्राप्त होगी। कई बार, कोई प्रवचन सुनने से या कोई धम्म साहित्य पढ़ने से अपने पिछले अनुभवों को समझने में सहायता मिल सकती है। कभी कभी, आप को कोई विशेष प्रवचन अरुचिकर या उबाऊ लगेगा। फिर जब आप अभ्यास द्वारा कुछ अनुभव प्राप्त कर लेते हैं, तो वही प्रवचन अचानक जीवित या स्पष्ट हो जाएगा। पहले जो नीरस सिद्धांत प्रतीत होते थे, वे ही वास्तविक लगने लगेंगे।

यहां इसमें हम सम्यक वाणी भी सम्मिलित कर सकते हैं। बुद्ध ने मेघिय को बताया कि ऐसी दस प्रकार की वाणी है जो ध्यानात्मक मन को उन्मुक्त करने के लिये उपयुक्त होती है; वाणी जो दोषों का अत्यधिक ह्रास करती है, तथा निर्णायक रूप से सांसारिक मोह माया से मुख मोड़ लेने के लिए अनुकूल होती है, एवं जो निष्काम भाव की ओर, निरोध की ओर, मन की शांति की ओर, उच्च बुद्धिमत्ता की ओर, और अंत में पूर्ण जागृति या निर्वाण (पालि में, निब्बान) की ओर ले जाती है।

जब हमने अष्टांगिक आर्य मार्ग के एक भाग के रूप में सम्यक वाणी के विषय में बात की थी तो हमने कई प्रकार की वाणी का उल्लेख किया था जिनके प्रयोग से बचना चाहिये। यहाँ हम सम्यक वाणी के अधिक सकारात्मक पक्ष को देख सकते हैं।

बुद्ध ने बताया कि (१) कम इच्छा के बारे में बात करना, (२) संतोष के बारे में बात करना, (३) एकांत, जो कि शारीरिक या मानसिक एकांत हो सकता है तथा उच्चतम एकांत, निब्बान हो सकता है, के बारे में बात करना, (४) अकेले रहने के बारे में बात करना, (५) सम्यक प्रयास करने के बारे में बात करना, (६) नैतिकता के बारे में बात करना, (७) समाधि या एकाग्रता के बारे में बात करना, (८) पञ्ञा, विवेक, या समझ के बारे में बात करना, (९) उद्धार या विमुक्ति (पालि में विमुत्ति) अर्थात निब्बान या आर्य फल की मनोदशाओं के बारे में बात करना, तथा अंत में, (१०) विमुक्ति ज्ञान दर्शन (पालि में विमुत्ति ञान दस्सन) अर्थात भूतलक्षी ज्ञान या प्रत्यवेक्षण ज्ञान (पालि में, पच्चावेक्खन ञान) के बारे में बात करना। समाधि या ध्यान (पालि में, झान) पद को अथवा जागृति के चार चरणों में से किसी भी चरण के मार्ग या फल पद को

प्राप्त कर लेने के तत्काल पश्चात प्रत्यवेक्षण ज्ञान उत्पन्न होता है। उदाहरणस्वरूप, फल पद के पश्चात साधक सिंहावलोकन द्वारा मार्ग पद, फल पद, परित्यक्त दोष, शेष दोष, यदि कोई बचा है, तथा परिप्रेक्ष्य में निब्बान देखता है।

चौथी आवश्यकता : धम्म का अभ्यास

मन की मुक्ति के लिए चौथी अनुकूल गुणवत्ता धम्म की साधना है। इसका अर्थ है ध्यान के माध्यम से एकाग्रता प्राप्त करने के लिए साधना। साधक को प्रयास करना चाहिये तथा सभी अहितकर मन:स्थितियों के निर्मूलन के लिये एवं हितकर मन:स्थितियों की प्राप्ति के लिये दृढतापूर्वक कार्य करना चाहिए। उसे अपने प्रयास में द्ृढ़ होना चाहिए तथा हितकर मन:स्थितियों के अभ्यास से वंचित नहीं होना चाहिए। बुद्ध ने कहा है कि केवल ऊर्जावान ही दुख से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। बारंबार प्रयास के पश्चात ही सफलता प्राप्त होती है।

पांचवीं आवश्यकता : अंतर्दृष्टि

अंत में, मन की मुक्ति के लिये पांचवी गुणवत्ता अंतर्दृष्टि या विवेक है, अर्थात वास्तविकता के वास्तविक स्वरूप को वास्तव में समझना। यह केवल विपस्सना के माध्यम से संभव है। मात्र विपस्सना से ही वह विवेक उत्पन्न होता है, जिससे प्रक्रियाओं के उदय एवं विनाश का प्रभेद ज्ञात हो। मात्र विपस्सना ही दोषों को नष्ट करती है। मात्र विपस्सना ही दुख की संपूर्ण एवं अंतिम समाप्ति की ओर, अर्थात निब्बान की ओर ले जाती है।

बुद्ध ने मेघिय को यह बताते हुए बहुत स्पष्ट कर दिया कि इन गुणों के विकास को निम्न विधियों से पूरा करना चाहिए, (१) शरीर के घृणास्पद पहलू की भावना द्वारा कामोन्माद (राग) का उन्मूलन; यह भिक्खुओं के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जिन्हें गृहस्थ व्यक्तियों से अधिक गंभीरता एवं पूर्णता के साथ कामुक इच्छाओं का सामना करना होगा तथा उन पर प्रभुत्व स्थापित करना होगा। (२) व्यक्ति को मैत्री (पालि में मेत्ता) भावना करनी चाहिये, तथा द्वेष या व्यापाद के उन्मूलन के लिये उसे विकसित करना चाहिए। (३) तब साधक को आन एवं अपान के संज्ञान या सति पर कार्य करना चाहिये, जिससे कि विचारों की अवधारणा (वितर्क, पालि में, वितक्क) का दमन हो सके अर्थात विचारों को पकड़ना, उनपर ध्यान देना। (४) साधक को 'अहं' के दंभ (**अस्मि-मान**) का उन्मूलन करने के लिये नश्वरता (अनित्य, पालि में

अनिच्च) के लक्षण की भावना करनी चाहिये। बुद्ध ने कहा, 'मेघिय, जो नश्वरता या अनिच्च का विशिष्ट लक्षण साकार करता है, वह स्वत: अनात्म का विशिष्ट लक्षण आत्मसात करता है। जो अनात्म का विशिष्ट लक्षण आत्मसात करता है, वह 'मैं हूँ (**अस्मि मान**)' की अवधारणा का उन्मूलन कर, इसी जीवन में निब्बान उपलब्ध करता है।'

अपने प्रवचन के समापन पर बुद्ध ने वह गाथा दी जिसको हमने इस प्रवचन के प्रारंभ में उद्धृत किया है।

फन्दनं चपलं चित्तं, दूरक्खं दुन्निवारयं। उजुं करोति मेधावी, उसुकारोव तेजनं।।

वारिजो व थले खित्तो, ओकमोकत उब्भतो। परिफन्दतिदं चित्तं, मारधेय्यं पहातवे।।

चित्त जो चंचल है, चपल है, कठिनता से संरक्षित होता है, तथा कठिनता से जिसका निवारण होता है, उसे मेधावी व्यक्ति वैसे ही सीधा करता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को। जैसे जल से निकाल कर धरती पर फेंकी गई मछली तड़फड़ाती है, वैसे ही मार के फंदे से निकलने के लिये यह चित्त (तड़फड़ाता है)।

धम्मपद, गाथा ३३, ३४

बुद्ध द्वारा मेघिय को दिये गये परामर्श पर हम कितने खरे उतरते हैं? यहाँ, हम अच्छे मित्रों से संबद्ध हैं, जो बुद्ध के बताये मार्ग पर चल रहे हैं। हम नैतिकता विकसित कर रहे हैं, हम धम्म पर प्रवचन सुनते हैं, हम एकाग्रता के विकास का अभ्यास करते हैं, तथा हम अंतर्दृष्टि विकसित कर रहे हैं। अत: हम पांच में से पांचों के पात्र हैं।

अनात्म (पालि में, अनत्ता)

अब हम लौकिक स्थितियों की तीसरी विशेषता, अनत्ता, किसी प्रकार की शाश्वत आत्मा का अभाव, अहं का अभाव, अनियंत्रणीय पहलू को विस्तार से देखते हैं। अस्तित्व की भौतिक या मानसिक घटनाओं में या उनके बाहर, परम अर्थ में, कोई भी आत्मनिर्भर अहं या आत्मा, कोई स्थायी पदार्थ नहीं पाया जा सकता है। यही बौद्ध धर्म का केंद्रीय सिद्धांत है। जब तक यह बात समझ में नहीं आती, तब तक बौद्ध धर्म का कोई वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाता। इस समझ के बिना, हम सोचते हैं कि हमारा व्यक्तित्व दुख भोगता है, कि हमारा व्यक्तित्व अच्छे एवं बुरे कार्य करता है तथा उन कृत्यों के परिणाम अनुभव करेगा, कि हमारा व्यक्तित्व अष्टांगिक आर्य मार्ग पर चलता है, कि हमारा व्यक्तित्व निब्बान में प्रवेश करेगा।[६]

पालि में, अनत्ता शब्द अन एवं अत्ता को जोड़ कर बना है। अन निषेध का संकेत है तथा अत्ता का साधारण अर्थ सार या आवश्यक पदार्थ होता है। बुद्ध ने स्पष्ट किया है कि भाषा के दो स्तर होते हैं।[७] हम अपने दैनिक जीवन में पारंपरिक भाषा का प्रयोग करते हैं, तथा एक भाषा वह भी है जो परम सत्य के अनुरूप है। यह दूसरे प्रकार की भाषा अतीव परिशुद्ध होती है तथा इसे अत्यंत सटीक एवं अचूक होना चाहिए। पालि ग्रंथों के तीसरे भाग अभिधम्म, जिसका अर्थ है परम सत्य, में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग है। हमें उन ग्रंथों में व्यक्ति का उल्लेख नहीं मिलेगा, अपितु उसके स्थान पर 'शारीरिक एवं मानसिक घटनाओं की प्रक्रिया' का। प्रवचनों के संग्रह सूत्र (पालि में सुत्त) के अनेक ग्रंथों में भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग है, जो मात्र मूलभूत को संबोधित करती है। किन्तु बुद्ध ने सत्य के विषय में पारंपरिक भाषा का भी उपयोग कर उपदेश दिया था, तथा उन्होंने यह अच्छी तरह स्पष्ट भी किया कि कोई उनकी बात का गलत अर्थ न लगाये। 'मैं' के स्थान पर 'इस शारीरिक-मानसिक घटना प्रक्रिया' जैसे शब्दों का प्रयोग यदि वे सामान्य लोगों को दिये गये उपदेशों में करते तो यह अत्यंत असुविधाजनक हुआ होता। किन्तु बुद्ध ने कहा कि जब भी उन्होंने 'मैं' 'मुझे' या 'मेरा' जैसे शब्दों का प्रयोग किया, उनके मन में कोई ऐसा अनुचित विचार नहीं था कि किसी नियंत्रणकारी, स्थायी स्वयं का अस्तित्व है।

''यथापि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तोति सम्मुती''ति॥ (सं॰ नि॰ १.१७१)।

जैसे पुर्जों के समागम से 'रथ' शब्द अभिव्यक्त होता है, उसी प्रकार जब स्कंध विद्यमान होते हैं तो, सामान्य भाषा में उसे 'व्यक्ति' कहा जाता है।

संयुत्त निकाय, १, १३५[८]

आचार्य बुद्धघोष लिखते हैं कि जब धुरियां, पहिये, ढांचे आदि घटक पुर्जे जुड़ते हैं तो हम उसे एक रथ कहते हैं।[९] किन्तु, मूलभूत अर्थ में कोई भी भाग रथ नहीं है। जब विभिन्न सामग्रियां सही तरीके से किसी रिक्त स्थान को घेरती हैं तो हम उसे एक घर कहते हैं। जब उंगलियों एवं अंगूठे को एक निश्चित तरीके से नियोजित किया जाता है तो हम उसे एक मुट्ठी कहते हैं। उसी प्रकार, जब पंच स्कंध अर्थात भौतिक रूप, संवेदना, संज्ञा, संस्कार, तथा चेतना या विज्ञान एकजुट होते हैं, तो हम उसे सामान्य भाषा में 'एक व्यक्ति' या 'एक प्राणी' कहते हैं। किन्तु अंतिम अर्थ में, यदि प्रत्येक घटक की अलग अलग जांच की जाय तो 'मैं' या 'मैं हूँ' की पूर्वधारणा का कोई आधार नहीं है।

आदरणीय लेदी सयादॉ ने कहा है कि शाश्वत आत्मा की मिथ्या धारणा को दूर करने के लिये, अंतर्दृष्टि द्वारा अनत्ता का ज्ञान आवश्यक है।[१०] यदि हम ऐसा करना चाहते हैं, तो नश्वरता (अनिच्च) का अंतर्दृष्टि ज्ञान विकसित करना आवश्यक है, क्योंकि जब नश्वरता का अच्छा ज्ञान हो जाता है, तो अनात्म की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना सरल हो जाता है। दुख का अंतर्ज्ञान पूरी तरह प्राप्त होने में और समय लगता है, तथा यही कारण है कि मुक्ति प्राप्त करने के चार चरण हैं, क्योंकि अर्हत्व पद न प्राप्त होने तक, सूक्ष्म लालसा एवं दंभ बने रहते हैं।

जिन लोगों ने ऐसे समय का साक्षात्कार किया है, जिसमें बुद्ध के शिक्षण उपलब्ध हैं, उनके लिये आवश्यक है कि वे निम्नतर लोकों में पुनर्जन्म की पीड़ा से बचने के लिए अब काम करें। जब बुद्ध की शिक्षा नहीं उपलब्ध होती तो इसके लिए काम करना संभव नहीं हो पाता। अत: हमें अनात्म का अंतर्दृष्टि ज्ञान प्राप्त करने के क्रम में नश्वरता पर मनन या ध्यान करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

हमारे काम करने के लिए मुख्य बात ज्ञान की परिपक्वता है। यदि हमारा ज्ञान परिपक्व है, तो कोई प्रवचन सुनते समय या साधारण गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हुए भी नश्वरता की अंतर्ज्ञान प्राप्ति संभव हो सकती है।

लेदी सयादॉ ने आगे कहा, 'जिसका ज्ञान विकसित हो गया है, उसके लिये अपने स्वयं के भीतर की या बाहर की, अपने घर के भीतर की या बाहर की, अपने गांव या शहर के भीतर की या बाहर की प्रत्येक वस्तु ऐसा विषय है जिसके साक्षात्कार से नश्वरता की अंतर्दृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास हो सकता है।' यह आवश्यक नहीं है कि हम अभिधम्म ग्रंथों का अध्ययन कर, आँख की एक झपकी के दौरान असंख्य बार होने वाली क्षणिक मृत्यु पर विचार करें। ध्यान के माध्यम से, हम स्वयं के शरीर में होने वाले आमूल तथा सूक्ष्म परिवर्तन का अनुभव कर सकते हैं।

बौद्ध धर्म में अनत्ता का सत्य मौलिक है, तथा समझने की दृष्टि से यह शिक्षा का सबसे कठिन भाग भी है।यहां तक कि यदि हमें भले ही स्पष्ट सैद्धांतिक समझ हो, तब भी हम 'मैं', 'मुझे', 'मेरा' की सोच के साथ विचार या कार्य करते हैं। जब हम नश्वरता या अनिच्च को, सभी भौतिक एवं मानसिक घटनाओं के त्वरित उदय एवं विलय के बोध के माध्यम से समझते हैं, तभी हम वास्तव में अनत्ता को समझते हैं।

इसके पहले कि हम स्वयं के अनुभव के माध्यम से यह जानें, हमें अपने आप को इस पर विश्वास करने के लिए मजबूर करना आवश्यक नहीं है। यदि हम अपने आप को विश्वास करने के लिए मजबूर करने की कोशिश करते हैं, तो इससे केवल संघर्ष उत्पन्न होगा तथा आगे साधना

करना और कठिन हो जायेगा। इसीलिये हमने सयाजी ऊबा ख़ीं को उद्धृत किया था, जिन्होंने कहा था कि उनके मार्गदर्शन में काम करने वाले किसी भी शिष्य से यह आशा नहीं की जाती। उन्होंने कहा, 'जब आप देखेंगे, तब आप विश्वास करेंगे।'

विश्वास के विषय पर कालामाओं को प्रवचन

बुद्ध के समय में, गृहस्थों के एक समूह ने बुद्ध से पूछा कि यह कैसे पता करें कि किस पर विश्वास करना चाहिये। केसमुत्ति सुत्त में उपलब्ध इस कथा को आइए अधिक विस्तार से देखें।[११] बुद्ध भिक्खुओं के एक विशाल शिष्यवर्ग के साथ कौशल राज्य के जनपदों में, चारों ओर जा रहे थे। वे कालामाओं के बाजारू शहर, केसपुत्त पहुंचे। कालामा बुद्ध के विषय में सुन चुके थे कि वे संपूर्ण रूप से जागृत, प्रशिक्षक बुद्ध, ज्ञान संपन्न तथा समुचित आचरण युक्त, संपूर्ण, विश्व के ज्ञाता, मनुष्यों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मनुष्यों, देवताओं एवं ब्रह्माओं के प्रशिक्षक, जागरूक एवं तेजवान थे। उन्होंने स्वयं ही परम सत्य का अनुभव कर लिया था, तथा वे इस लोक के साथ साथ देवताओं, मारों, ब्रह्माओं के लोक के, एवं भिक्खुओं, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदायों के भी ज्ञाता थे। वे ऐसे धम्म का उपदेश देते थे जो अर्थ में समृद्ध है, जो प्रारंभ में अच्छा, मध्य में अच्छा, तथा अंत में अच्छा है। उन्होंने वह उच्च साधना सिखाई जो परिपूर्ण, संपूर्ण एवं शुद्ध है। बुद्ध की प्रतिष्ठा ऐसी थी।

तो, कालामा बुद्ध के पास इस आशा के साथ गये कि वे उनके लिए एक प्रश्न का स्पष्टीकरण करने में सक्षम होंगे। उन्होंने कहा, 'भन्ते, ऐसे अनेक भिक्खु तथा ब्राह्मण हैं, जो केसपुत्त में आते हैं। वे अपने अपने विचारों को समझाते हैं तथा उनकी व्याख्या करते हैं, एवं दूसरों के विचारों पर घृणा और अवमानना के साथ छींटाकशी करते हैं। तब अन्य भिक्खु एवं ब्राह्मण आते हैं, जो अपने विचारों की शिक्षा देते हैं तथा दूसरों के विचारों पर आक्षेप करते हैं। अत: हमें इन विचारों के बारे में संदेह है, हम उनके बारे में अनिश्चित हैं। कौन सच बोलता है और कौन झूठ बोलता है?'

बुद्ध ने उत्तर दिया कि उनका संदेह उचित कारणों से है। उन्होंने कहा, ''**एथ तुम्हे, कालामा, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन , मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरूति।** हे कालामों आओ। तुम किसी बात को केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि यह बात अनुश्रुत है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि यह बात परम्परागत है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो

कि यह बात इसी प्रकार कही गई है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि यह हमारे धर्म ग्रन्थ (पिटक) के अनुकूल है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि यह तर्क संगत है, केवल इसलिये मत स्वीकार करो कि यह न्याय (शास्त्र) संगत है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि आकार प्रकार सुन्दर है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि यह हमारे मत के अनुकूल है, केवल इस लिये मत स्वीकार करो कि कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है, केवल इस लिले मत स्वीकार करो कि कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है । **यदा तुम्हे, कालामा, अत्तनाव जानेय्याथ – 'इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती'''ति, अथ तुम्हे, कालामा, पजहेय्याथ।** हे कालामो । जब तुम आत्मानुभव से अपने आप ही यह जानो कि ये बातें अकुशल हैं, ये बातें सदोष हैं, ये बातें विज्ञ पुरुषों द्वारा निन्दित हैं इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दुख होता है तो हे कालामो! तुम उन बातों को छोड़ दो ।"

तथा प्रश्नोत्तरों के माध्यम से उन्होंने कालामों को समझाया कि जब किसी व्यक्ति में लोभ उत्पन्न होता है, तो वह उसकी हानि करेगा । लोभयुक्त व्यक्ति जब लोभ से इतना मनोग्रहीत एवं ग्रसित हो जाता है कि वह प्राणियों की हिंसा, चोरी, तथा व्यभिचार करता है, और झूठ बोलता है, तथा इस तरह के कृत्य करने के लिए अन्य लोगों से आग्रह करता है तो इससे उसे लंबे समय तक हानि एवं दुख होगा । बैरभाव के कारण ऐसे कृत्य करने वाले व्यक्ति को भी इसी प्रकार एक लंबे समय तक भुगतना होगा । अज्ञानता के कारण किये गये अनुचित कृत्यों के परिणाम भी वही हैं ।

तत्पश्चात बुद्ध ने कालामों को समझाया कि जब व्यक्ति में लोभ अनुपस्थित होगा, तब वह जीव हत्या, चोरी, या व्यभिचार नहीं करेगा तथा झूठ नहीं बोलेगा, एवं वह ऐसा करने के लिए दूसरों से कहेगा नहीं । यह उसके लिए अच्छा होगा । तथा हमें इस प्रकार की बातें स्वीकार कर लेनी चाहिए जिनका हम स्वयं अनुभव करते हैं कि वे हमारे लिये अच्छी हैं, दोषहीन हैं, बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं, तथा उनके अभ्यास से आनन्द एवं कल्याण होता है । इस प्रकार के आचार व्यवहार को हमें अर्जित करना चाहिये तथा अपने जीवन में हमें उन्हें अपनाना चाहिये । अत: जब लोभ अनुपस्थित हो, द्वेष अनुपस्थित हो, भ्रम अनुपस्थित हो तो अच्छे कर्म होंगे तथा उन कर्मों के अच्छे परिणाम आएंगे ।

तब बुद्ध ने कालामों को चार साधनाओं में प्रशिक्षित किया जो ब्रह्म लोक या ब्रह्म विहार की ओर ले जाती हैं । हम इनका वर्णन पहले ही कर चुके हैं, ये हैं :- मेत्ता, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा (पालि में, उपेक्खा) । बुद्ध ने कालामों को इस प्रकार निर्देश दिया, 'मनुष्य को अपने द्वेष

रहित, उपेक्खापूर्ण, प्रचुर, उत्कृष्ट, असीमित विचारों से ऊपर, नीचे, आरपार, सभी दिशाओं में चारों ओर, विश्व में सर्वत्र भरते हुए रहना चाहिए।'

चाहे हम कुछ भी विश्वास करें, इस साधना के परिणाम अच्छे हो सकते हैं। इससे आनंद पूर्ण उच्च लोक में पुनर्जन्म हो सकता है। यदि कोई दूसरा संसार नहीं है, तथा कारण कार्य विधान नही है, तो भी हमारा वर्तमान जीवन सुखमय होगा, क्योंकि हम शत्रुता, द्वेष, एवं पीड़ा से मुक्त होंगे। यदि बुरे काम करने वालों का बुरा होता है, तो वह सुखमय जीवन के प्रति आश्वस्त हैं क्योंकि उसने अच्छे काम किये हैं। यदि बुरे काम करने वालों का बुरा नहीं होता, तो भी वह सुखी होगा, क्योंकि उसने कुछ बुरा नहीं किया है।

बुद्ध द्वारा उन्हें दिये गये प्रवचन को समझने में कालामा सक्षम थे, तथा सत्य इतना स्पष्ट हो गया कि उन्होंने त्रिरत्न में शरण ली। हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि बुद्ध ने देखा कि वे अंतर्दृष्टि ध्यान के लिए अभी तैयार नहीं थे, क्योंकि अपने प्रवचन में वे इसका उल्लेख नहीं करते, तथा अन्य प्रवचनों से हम जानते हैं कि चार ब्रह्म विहार हमें अंतर्दृष्टि ध्यान के लिए तैयार करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है, क्योंकि बुद्ध यह जानने में सक्षम थे कि उनके श्रोता क्या समझ सकते हैं, तथा वे अपने प्रवचन सदैव अपने श्रोताओं के उपयुक्त देते थे।

संदर्भ सूची

[1]*The Gradual Sayings* IV 234-237 (we include the repeated section of the discourses from IV 231-233).

[2]*The Path of Purification*, Chap. III, ¶ 64.

[3]*Middle Length Sayings* IV 243-246. For this and other occasions in past lives when the Bodhisatta did deeds he had to suffer for in his last life as a Buddha, see the translation of the Apadana verses in *The* Udana *Commentary* 633–635 and the notes on pp. 713–722.

[4]For references concerning Devadatta, see The Dictionary of Pali Proper Names, I 1106-11. For Ajatasattu's visit to the Buddha, see *Dialogues of the Buddha*, I 65-95.

[5]*The Group of Discourses*, 30f., and *The Kindred Sayings* I 275-278.

[6]See Nyanatiloka, *Buddhist Dictionary*, *s.v. anatta*.

[7]See, for example, *Dialogues*, I 263.

[8]We use the translation of Bhikkhu Ñanamoli, *The Path of Purification,* Chapter XVIII, ¶ 25.

[9]*The Path of Purification*, Chapter XVIII, ¶ 28.

[10]Ledi Sayadaw, *Manual of Insight* (*The Wheel* 3132, pp. 77-80) and *Manuals of Buddhism*, pp. 29f.

[11]*The Gradual Sayings* I 170-175.

सप्तम दिवस, प्रातः प्रवचन

विशुद्धि मार्ग

सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति, यदा पञ्ञाय पस्सति ।

अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ।।

सारे संखार अनिच्च हैं । इस (सत्य) को जब कोई स्वयं की पञ्ञा से देख लेता है, तब उसको दुखों से निर्वेद प्राप्त होता है (अर्थात, दुख क्षेत्र के प्रति भोक्ताभाव टूट जाता है) – ऐसा है यह विशुद्धि मार्ग !

सब्बे सङ्खारा दुक्खाति, यदा पञ्ञाय पस्सति ।

अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ।।

सारे संखार दुख हैं । इस (सत्य) को जब कोई स्वयं की पञ्ञा से देख लेता है, तब उसको दुखों से निर्वेद प्राप्त होता है – ऐसा है यह विशुद्धि मार्ग !

सब्बे धम्मा अनत्ताति, यदा पञ्ञाय पस्सति ।

अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ।।

सभी धम्म अनत्ता हैं । इस (सत्य) को जब कोई स्वयं की पञ्ञा से देख लेता है, तब उसको दुखों से निर्वेद प्राप्त होता है – ऐसा है यह विशुद्धि मार्ग !

धम्मपद, गाथा २२७-२७९

समूची शिक्षा मुक्ति पर आधारित है । बुद्ध ने कहा है, 'जिस प्रकार महासागर का केवल एक ही स्वाद होता है – नमकीन स्वाद, धम्म शिक्षा का केवल एक ही स्वाद है – मुक्ति का स्वाद ।'[१] लक्ष्य जागृति के चारो चरणों के मार्ग पदों एवं उनके फल पदों (मग्ग-फल) की प्राप्ति है, तथा उनके माध्यम से, अंतिम निब्बान । इन्हें अन्तर्दृष्टि साधना अर्थात विपस्सना-भावना के अभ्यास के बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता । ग्रंथों में यह कई स्थानों में स्पष्ट किया गया है । उदाहरण के लिए, यहाँ धम्मपद (गाथा २७६) से एक गाथा है:

तुम्हेहि किच्चम् आतप्पं, अक्खातारो तथागता ।

पटिपन्ना पमोक्खन्ति, झायिनो मारबन्धना ।।

तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा, तथागत तो (मार्ग को मात्र) आख्यात करते हैं । इस मार्ग पर आरूढ़ होकर ध्यान करने वाले, मार के बंधन से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं ।

आइए हम बुद्ध के उस प्रवचन को देखें, जो इस गाथा के लिये सर्वाधिक प्रासंगिक है ।[२]

गृहस्थ अनाथपिण्डिक द्वारा दिए गए जेतवन विहार में निवास करते समय बुद्ध ने यह प्रवचन दिया था। उन्होंने भिक्खुओं को बताया कि जो भी संस्कारित (अनुबंधित या निष्पन्न) धर्मों (घटनाओं) को स्थायी या नित्य (पालि में, निच्च) समझता है, उसके लिये अंतर्दृष्टि ज्ञान (विपस्सना ञान) से भर पाना संभव नहीं है। अंतर्दृष्टि ज्ञान के बिना आश्वासन पथ (सम्मत्त-नियम) में प्रवेश असंभव है। तथा आश्वासन पथ में प्रवेश किये बिना, जागृति के चार चरणों, जिनकी पराकाष्ठा पूर्ण जागृति में होती है, अर्थात सोतापन्न, सकदागामि, अनागामि, एवं अर्हत पद का अनुभव करना असंभव है। अत: आप देख सकते हैं कि निब्बान का स्वाद चख लेने के बाद भी काफी काम बाकी रहता है, क्रमश: और भी चढ़ाई चढ़नी होती है।

जो भी यह समझता है कि सभी संस्कारित धर्म अनित्य (अनिच्च) हैं, तो उसके लिये यह संभव है, कारण एवं औचित्य है कि वह अंतर्दृष्टि ज्ञान से भर जाय, जिससे वह आश्वासन पथ में प्रवेश करे, तथा जागृति के चार चरणों के फल पदों का अनुभव करे।

इसी प्रकार, यदि कोई संस्कारित धर्मों को सुख समझता है, आत्मा (पालि में, अत्ता) युक्त समझता है, तो उसके लिये सफलतापूर्वक प्रशिक्षण पूरा कर पाना असंभव है। किन्तु यदि कोई संस्कारित धर्मों को असंतोषजनक (दु:ख) तथा अनात्म (पालि में, अनत्ता) समझता है तो उसके लिये यह प्रशिक्षण पूरा करना संभव है।

अंत में, यदि निब्बान को असंतोषजनक या (दु:ख) माना जाता है, तो ऐसी कोई संभावना नहीं है, कारण एवं औचित्य नहीं है, कि कोई अंतर्दृष्टि ज्ञान से भर जाय, जिससे वह आश्वासन पथ में प्रवेश करे, तथा जागृति के चार चरणों के फल पदों का अनुभव कर सके। जब निब्बान को सुख के रूप में देखा जाता है, केवल तभी यह प्रशिक्षण पूरा करना संभव है। ज़ाहिर है कि निब्बान का सुख दैनिक जीवन के संस्कारित धर्मों के सुख जैसा नहीं है।

तो हम यह कैसे आत्मसात करें कि सभी संस्कारित धर्म नश्वर, असंतोषजनक, एवं अनात्म हैं? आप को स्मरण होगा कि ये तीनों विशेषताएं एक दूसरे से घनिष्ठता से जुड़ी हुई हैं। यदि एक समझ में आ गयी तो दूसरों को भी समझना सरल हो जाएगा। अत:, हम तीन में से केवल एक के अनुभव के लिये प्रयास करना प्रारंभ कर सकते हैं। सही समझ का अर्थ है प्रत्यक्ष समझ, स्वयं का अनुभव। इन तीन विशेषताओं में से एक की सच्चाई का अनुभव, उसके विषय में सिद्धांतों को स्वीकार करने से बहुत अलग सिद्ध होगा। सिद्धांत एवं मत सरलता से संशोधित, परिवर्तित, या विकृत हो जाते हैं, गलत सिद्ध होते हैं, अथवा उनके मिथ्याबोध होते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव से हमें ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है जो हमारे साथ रहता है। हम ने स्वयं क्या सिद्ध किया है इस विषय में हमें कोई संदेह नहीं होगा।

अत: हमारा प्रयत्न होगा कि हमारी संवेदनाओं में जैसे जैसे परिवर्तन हो, हमें उनका पता लगता रहे। यह वही कुञ्जी होगी जो हमारे लिए, प्रत्यक्ष ज्ञान, अंतर्दृष्टि ज्ञान का द्वार खोलेगी।

नश्वरता के विषय में जागरूकता

सयाजी ऊबा ख़ीं का हमारे लिए परामर्श यह है कि हम यथासंभव निरंतरता के साथ अनित्य (अनिच्च) को जानते रहें।[३] भिक्खुओं को बुद्ध का परामर्श यह है कि उन्हें सभी मुद्राओं में, चाहे वे बैठे हों, खड़े हों, चल रहे हों, या लेटे हों, अनिच्च, दु:ख या अनत्ता की जागरूकता बनाए रखने के लिए प्रयास करते रहना चाहिए। ज़ाहिर है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि इन तीन विशेषताओं में कौन सी विशेषता हमारे कर्मस्थान, अर्थात ध्यान के विषय के रूप में कार्य करती है। हमारे लिये आवश्यक है कि हम प्रति पल अनिच्च बोध करते रहें। अनिच्च बोध की निरंतरता ही, जो दु:ख बोध एवं अनत्ता बोध की ओर भी ले जाती है, सफलता का राज है। महा परिनिर्वाण में जाने के पहले तथा अपनी आखीरी श्वास लेने के पहले बुद्ध के अंतिम शब्द थे, '**वय धम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथ।** सभी संस्कार नाशवान हैं; अप्रमाद के साथ (आलस्य न करते हुए) (जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये) संपादन करो।'(दीघ निकाय, सुत्त १६: महापरिनिब्बान सुत्त)[४]

वास्तव में, उनके बुद्धत्व की पैंतालीस वर्षों की अवधि की समस्त शिक्षा का सार यही है। यदि आप सभी घटक वस्तुओं में निहित अनिच्च के विषय में जागरूकता बनाये रखें, तो आपका कभी न कभी लक्ष्य तक पहुँचना सुनिश्चित है।

इस बीच, जैसे जैसे आप अपने अनिच्च की समझ को विकसित करते हैं, वैसे वैसे आपके प्रकृति के सत्य के ज्ञान में बृद्धि होती जायेगी। अंतत:, यह उस सीमा तक विकसित होगा कि आपको तीनों विशेषताओं, अनिच्च, दु:ख एवं अनत्ता के विषय में कोई संदेह नहीं रहेगा। उसके बाद ही, आप लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, आगे बढ़ने की स्थिति में हो पाएंगे।

अब जब आप जान गये हैं कि अनिच्च ही प्रथम आवश्यक कारक है, तो आपको चाहिए कि अनिच्च क्या है, उसे पूरी स्पष्टता के साथ एवं यथासंभव व्यापक रूप से समझने की कोशिश करें, जिससे कि साधना करते समय या विचार विमर्श के समय कोई भ्रम न हो।

अनिच्च का वास्तविक अर्थ है नश्वरता या क्षय, अर्थात ब्रह्मांड में विद्यमान प्रत्येक वस्तु, चाहे वह चेतन हो या निर्जीव, उसमें नश्वरता या क्षय की प्रकृति अंतर्निहित है।

कलाप

अनिच्च के सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिये बुद्ध ने भौतिक पदार्थों के व्यवहार से प्रारंभ किया, तथा उनके अनुसार भौतिक पदार्थ आधुनिक विज्ञान द्वारा पाये गये परमाणु की तुलना में और भी सूक्ष्म हैं। इस ब्रह्मांड में विद्यमान प्रत्येक वस्तु, चेतन एवं निर्जीव दोनों, कलापों से रचित है, जो उत्पन्न होने के साथ साथ नष्ट हो जाते हैं। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि कलाप चार प्रमुख भौतिक गुणों तथा उन पर निर्भर चार सहायक गुणों के संक्षिप्त समुच्चय हैं। किसी भी कलाप का जीवन-काल मात्र एक क्षण है। एक मानव की पलक की एक झपकी की अवधि में एक खरब ऐसे क्षण होते हैं। वे सब सदैव परिवर्तन या प्रवाह की स्थिति में हैं। विपस्सना साधना में विकसित छात्र के लिए, वे ऊर्जा की एक धारा के रूप में अनुभव किये जा सकते हैं। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु मानव शरीर में कोई सार तत्व नहीं है; बल्कि यह एक भौतिक स्कंध (रूप) तथा जीवन बल (नाम) के सह-अस्तित्व की निरंतरता है।

जब हम जानने लगेंगे कि हमारा शरीर सूक्ष्म कलापों से बना है, जो सभी परिवर्तन की स्थिति में हैं, तो हम परिवर्तन या क्षय की वास्तविक प्रकृति को समझने लगेंगे। कलापों के निरंतर विघटन एवं प्रतिस्थापन के परिणामस्वरूप परिवर्तन तथा क्षय होता है। सभी एक दहन की स्थिति में हैं जिन्हें आवश्यकरूप से विसाद की पहचान या दुख-सत्य समझना चाहिये। जब आप अस्थायित्व को दुख के रूप में अनुभव करेंगे, केवल तभी आप चार में से प्रथम आर्य सत्य, अर्थात दुख-सत्य का बोध कर पायेंगे, जिस पर बुद्ध की शिक्षा में इतना जोर दिया गया है। क्यों? क्योंकि जब आप को दु:ख की सूक्ष्म प्रकृति का एहसास होगा, तथा यह एहसास होगा कि संस्कारित होने के नाते आप इससे एक पल के लिए भी बच नहीं सकते, तो आप अपने अस्तित्व के प्रति सही अर्थ में, भयभीत, घृणापूर्ण एवं अनिच्छुक हो जायेंगे, तथा ऐसे मार्ग की तलाश करेंगे जो मुक्ति दिला कर दुख से बाहर ले जाय। मनुष्य जीवन में भी उस स्थिति को जान पाना तथा उसका स्वाद चख पाना संभव है। यह तब होता है जब कोई जागृति के पहले चरण, सोतापत्ति (या सोतापन्न) पद को प्राप्त करता है। तब आप इतने विकसित हो सकेंगे कि आंतरिक शान्ति या असंस्कारित पद, निब्बान में जा सकें।

किन्तु सकारात्मक परिणाम अत्यंत शीघ्र दिखाई पड़ेंगे। जैसे ही आप अपने दैनिक जीवन में अनिच्च के प्रति जागरूकता बनाए रखने में सक्षम होते हैं, आप को स्वयं पता लगने लगेगा कि शारीरिक एवं मानसिक दोनों रूपों में, आप के भीतर एक श्रेयष्कर परिवर्तन हो रहा है।

यहाँ आपका ध्यान मुख्य रूप से, शरीर की संवेदनाओं पर अर्थात, भौतिकता के परिवर्तनशील स्वरूप पर होता है। कभी कभी, मात्र संवेदनाओं में परिवर्तन पर ध्यान होगा। अन्य समयों पर आपका ध्यान उन विचार तत्वों पर होगा, जो संवेदनाओं की परिवर्तनशील प्रक्रिया पर प्रक्षेपित हैं। जब आप भौतिक पदार्थों में परिवर्तन पर मनन कर रहे होते हैं, तो आपको लगता है कि उस जागरूकता के साथ साथ उत्पन्न होने वाले जो विचार तत्व हैं, वे भी अवस्थांतर या परिवर्तन की स्थिति में हैं। ऐसी परिस्थिति में, आप मन और पदार्थ (नाम-रूप) दोनों में अनिच्च का बोध कर रहे हैं।

छः ज्ञानेन्द्रियों, अर्थात नेत्र, कान, नाक, जिह्वा, शरीर, या मन, में से किसी भी एक के माध्यम से अनिच्च बोध विकसित करना संभव है। तथापि, व्यावहारिक रूप से, हमने पाया है कि सभी प्रकार की संवेदनाओं या संवेगों में, शरीर के घटक भागों के साथ स्पर्श के संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली संवेदनाएं, अंतर्दर्शनात्मक ध्यान के लिए एक व्यापक क्षेत्र में विस्तृत हैं। न केवल क्षेत्र विस्तृत होता है, अपितु ये संवेदनाएं भी अधिक स्पष्ट होती हैं। वास्तव में, ये संवेदनाएं शरीर के भीतर कलापों के घर्षण, विकिरण तथा प्रकंपन की परिणाम हैं, तथा सदैव परिवर्तनशील हैं। विपस्सना ध्यान की साधना प्रारंभ करने वाला व्यक्ति शरीर की संवेदनाओं के माध्यम से अनिच्च बोध और अधिक सरलता से प्राप्त कर सकता है। कोई भी किसी अन्य साधन द्वारा प्रयास करने के लिए स्वतंत्र है, परन्तु हमारा परामर्श है कि इसके पहले कि आप किन्हीं अन्य ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्रयास करें, आप को चाहिए कि शरीर की संवेदना के माध्यम से अनिच्च बोध में अच्छी तरह स्थापित हो जांय।

अंतर्दृष्टि ज्ञान के दस स्तर

विपस्सना में ज्ञान प्राप्ति के दस स्तर हैं।[५]

(१) निकट निरीक्षण एवं विश्लेषण द्वारा अनिच्च, दुःख, तथा अनत्ता का ज्ञान (**सम्मसन**), प्रथम चरण है।

(२) दूसरा चरण, पदार्थ एवं मन (रूप एवं नाम) की उत्पत्ति तथा विघटन का ज्ञान है। जब भी हम अपनी संवेदनाओं में हो रहे परिवर्तनों का अनुभव करते हैं, तो हम इस स्तर (**उदयब्बय**) पर होते हैं।

(३) तीसरा चरण, पदार्थ एवं मन की तीव्र परिवर्तनशील प्रकृति का ज्ञान है। यह एक तीव्र प्रवाहमयी धारा या स्फुरित ऊर्जा के रूप में अनुभव होता है। इस स्तर (**भंग**) पर क्षय पहलू,

या कलापों का विघटन सबसे प्रमुख है ।

(४) चूंकि हमारे मन और शरीर के सभी पहलू अवास्तविक अनुभूत होते हैं, ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि यह अस्तित्व ही बहुत भयानक है (**भय**) ।

(५) हम यह जानने लगते हैं कि यह अस्तित्व ही बुराइयों से भरा (**आदीनव**) है ।

(६) हम जानने लगते हैं कि यह अस्तित्व घृणास्पद (**निब्बिद**) है ।

(७) हम जानने लगते हैं कि इस अस्तित्व से बचने की तत्काल आवश्यकता (**मुञ्चितुकम्यता**) है।

(८) हम समझते हैं कि अब अनिच्च को आधार बनाकर, मुक्ति के लिए जी जान से पूरी तरह काम करने का समय आ गया है (**पटिसंखा**) ।

(९) हम समझते हैं कि हमें सभी संस्कारों से स्वयं को पृथक करने के लिए तथा अहंकार से अलग होने (**संखार उपेक्खा**) के लिये मंच अब तैयार हो गया है ।

(१०) तथा अंत में, हमें वह ज्ञान प्राप्त होता है जो लक्ष्य तक पहुंचने के प्रयास में तेजी लाये (**अनुलोम**) ।

जो लोग अल्प समय में ही लक्ष्य तक पहुँचते हैं, उन्हें इन दस चरणों का पता सिंहावलोकन द्वारा होगा । जब आप अनिच्च बोध में अपनी प्रगति करते हैं, तो समय समय पर एक योग्य आचार्य द्वारा समायोजन एवं सहायता के माध्यम से आप इन दस स्तरों को प्राप्त करने में सफल होंगे । आप को किसी भी प्रकार की उपलब्धि के पूर्वानुमान से बचना चाहिए, क्योंकि उनकी प्रतीक्षा से अनिच्च की जागरूकता की निरंतरता से आपका ध्यान विचलित होगा । मात्र यह निरंतर जागरूकता ही आपको वांछित लक्ष्य दिला सकेगी ।

गृहस्थ के रूप में साधना

किन्तु आप में से सभी लोग अल्प समय में अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पायेंगे । अत: आइये, हम गृहस्थ के रूप में लाभ प्राप्त करने के लिये यहीं-और-अभी काम करने के तरीके को देखते हैं । सर्वप्रथम, हमें अपने भीतर अनिच्च जगाना होगा, अर्थात अपनी आंतरिक अस्मिता को अनिच्च में अनुभव करना होगा, तथा अंततः यह हमें अपने भीतर और बाहर, शांति और संतुलन की स्थिति में लायेगा । यह लक्ष्य अनिच्च की अनुभूति में तन्मयता द्वारा प्राप्त होगा ।

आज, जब विश्व को गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिनमें से अनेक मानव जाति के लिये भयावह हैं, अब समय परिपक्व है, कि प्रत्येक व्यक्ति विपस्सना साधना करे, तथा

यह सीखे कि जो कुछ भी हो रहा है, उसके बीच शांति का एक गहरा कुण्ड कैसे पाया जाय। अनिच्च प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है। यह प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच के भीतर है। अनिच्च का अनुभव करें, अनिच्च में तन्मय हो जांय, तो विचारों की बाहरी दुनिया से कटकर निकलना संभव हो जाएगा। अनिच्च जीवन की वह मणि होगा, जिसे आप एक शांत एवं संतुलित ऊर्जा के भंडार के सृजन हेतु, निधि की तरह सजोयेंगे, जिससे स्वयं का तथा समाज का कल्याण हो।

जब अनिच्च को समुचित रूप से विकसित किया जाता है, तो वह आपके शारीरिक एवं मानसिक दोषों के मूल पर प्रहार करता है तथा शनैः शनैः उन सभी बुराइओं को दूर करता है, जो आपकी शारीरिक और मानसिक रुग्णताओं के स्रोत हैं।

बुद्ध के समय, श्रावस्ती (पालि में, सावत्थी) तथा आस पास के देहात की जनसंख्या लगभग ९ करोड़ थी। उनमें से लगभग ५ करोड़ आर्य थे जो जागृति के पहले चरण में पहुंच गये थे।[६] अत: विपस्सना करने वाले गृहस्थ जनों की संख्या भिक्षुओं की संख्या से भी अधिक रही होगी। मात्र उन्हीं व्यक्तियों के लिये अनिच्च आरक्षित नहीं है, जिन्होंने संसार का त्याग कर दिया हो। उन कमियों के बावजूद, जो गृहस्थ जीवन को आजकल व्याकुल बना देती हैं, कोई सक्षम आचार्य या गुरु एक अपेक्षाकृत कम समय में, अनिच्च सक्रिय कराने में, छात्र की सहायता कर सकते हैं। एक बार सक्रिय हो जाने पर, साधक को मात्र उसे संरक्षित रखने का प्रयास करने की आवश्यकता होगी। किन्तु उसे यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि, जब भी उसे अवसर प्राप्त हो, वह विपस्सना ज्ञान के तीसरे स्तर के लिए काम करे। पदार्थ एवं मन की तीव्र गति से परिवर्तनशील प्रकृति (भंग) के ज्ञान के साथ यह स्थिति आती है। यदि आप इस स्तर तक पहुँच जाते हैं, तब कोई समस्या नहीं होगी या कम से कम होगी, क्योंकि तब आपको बिना अधिक प्रयास के ही अनिच्च का अनुभव, लगभग स्वतः, करने में सक्षम हो जाना चाहिए।

इस स्थिति में, अनिच्च आपका आधार बन जाएगा, जहां आप अपने दैनिक जीवन की घरेलू आवश्यकताओं के समाप्त होते ही, शीघ्र वापस आ सकते हैं। हालांकि, यदि आप अभी तक भंग की अवस्था में नहीं पहुँचे हैं तो आप के लिये कुछ कठिनाई की संभावना है। आप के लिए, भीतर का अनिच्च तथा शारीरिक एवं मानसिक बाहरी गतिविधियों के बीच, यह केवल एक रस्साकशी की तरह हो जाएगा। अत: आप के लिये इस आदर्श वाक्य का पालन करना विवेकपूर्ण होगा, 'जब आप काम कर रहे हों तो काम करें; जब आप खेल रहे हों तो खेलें।' आप के लिये सदैव अनिच्च सक्रिय करना आवश्यक नहीं होगा। यदि आप इसे दिन तथा रात में नियमित समय या समयों के लिए सीमित रखें तो यह पर्याप्त होना चाहिए। कम से कम इस अवधि में, मन तथा ध्यान को शरीर के भीतर, विशेष रूप से अनिच्च बोध के साथ, रखने का प्रयास किया

जाना चाहिए। आपका अनिच्च बोध क्षण प्रतिक्षण होना चाहिये; इतना निरंतर कि आप किसी भी तर्कमूलक या ध्यानभंगकारी विचारों के प्रक्षेप की अनुमति न दें, क्योंकि वे आप की प्रगति के लिए निश्चित रूप से हानिकारक हैं।

यदि यह संभव नहीं है, तो आप को वापस अपने श्वास के बोध का अर्थात सति का अभ्यास करना होगा, क्योंकि अनिच्च की कुञ्जी समाधि है। तथा अच्छी समाधि के लिए शील उत्कृष्ट होना चाहिये, चूंकि समाधि शील पर बनी है। अच्छे अनिच्च के लिए, समाधि अच्छी होनी चाहिए। यदि समाधि उत्कृष्ट है, तो अनिच्च बोध भी उत्कृष्ट होगा।

पूर्ण रूप से संतुलित मन के उपयोग, तथा साधना की विषय वस्तु पर ध्यान के प्रक्षेपण के अतिरिक्त, अनिच्च सक्रिय करने के लिए कोई अन्य विशेष तकनीक नहीं है। विपस्सना में कर्मस्थान, अर्थात ध्यान का विषय अनिच्च है। अत: यदि आप शरीर की संवेदनाओं पर अपना ध्यान वापस लाने के अभ्यस्त हैं, तो आप सीधे अनिच्च का अनुभव करने में सक्षम हो जाएंगे। पहले आप शरीर के उस भाग या क्षेत्र में अनिच्च का अनुभव करें, जहां ध्यान केन्द्रित करना सरल हो, फिर सिर से पैरों तक तथा पैरों से सिर तक, ध्यान के क्षेत्र को बदलते रहें। कभी कभी अपने शरीर के भीतरी अंगों की भी जांच करें। शरीर रचना पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्ष ध्यान पदार्थ अर्थात कलापों की उत्पत्ति पर तथा उनके निरंतर परिवर्तनशील स्वभाव पर होना चाहिये।

यदि इन निर्देशों का पालन होता है, तो प्रगति निश्चित रूप से होगी, किन्तु प्रगति अतीत की पारमिताओं या पारमी पर, तथा इस साधना में आपकी निष्ठा पर भी निर्भर करती है। यदि आप ज्ञान के उच्च स्तर को प्राप्त कर लेते हैं, तो आपकी तीनों विशेषताओं, अर्थात अनिच्च, दु:ख, एवं अनत्ता को समझने की शक्ति में वृद्धि होगी तथा तदनुसार आप लक्ष्य के अर्थात आर्यपद के याने जिसने निर्वाण को चख लिया है, के निकटतर आते जाएंगे। इस लक्ष्य को आपको अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

संदर्भ सूची

[1]*The Gradual Sayings,* IV 139.

[2]*The Path of Discrimination*, pp. 401-404.

[3]The following discussion is based on "The Essentials of Buddha-Dhamma in Practice," *Dhamma Texts*, pp. 89-98

[4]*Dialogues of the Buddha*, II 173.

[5]The ten are given in Venerable Anuruddha's *Compendium of Philosophy*, pp. 210f. (See also U Shwe Zan Aung's introductory essay to the translation, pp. 65f.)

[6]See *Buddhist Legends*, I 147.

सप्तम दिवस, सायं प्रवचन

ध्यान का तेज

दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा ।

सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो ।

अथ सब्बमहोरत्तिं, बुद्धो तपति तेजसा ।।

दिन में सूर्य तपते हैं, रात में चंद्रमा भासते हैं, कवच पहन क्षत्रिय चमकता है, ध्यान लगाता हुआ ब्राह्मण चमकता है, तथा (अपने) तेज से सारे रात-दिन बुद्ध चमकते हैं ।

धम्मपद, गाथा ३८७

बुद्ध ने यह गाथा तब सुनाई जब वे माँ विशाखा द्वारा दिए गए विहार में रह रहे थे । स्थविर आनन्द ने जो देखा था, यह उसकी पुष्टि में कही गयी थी ।[१] एक विशेष पर्व के दिन, कौशल के राजा पसेनदि अपने कवच आदि सभी राजसी वेशभूषा में, माला एवं इत्र धारण कर विहार पहुंचे । उस समय स्थविर कालूदयी भिक्षु संघ की परिधि पर गहरे ध्यान में प्रवेश कर बैठे हुए थे । उनका स्वर्णिम शरीर देखने योग्य था । उसी समय, चंद्रमा प्रकट हुए एवं सूर्य अस्त । आनन्द थेर ने अस्त होते हुए सूर्य की कांति को तथा उदय होते हुए चंद्रमा की कांति को देखा । तब उन्होंने राजा के शरीर की कांति को, ध्यानमग्न स्थविर की कांति को तथा बुद्ध की कांति को देखा । उन सभी में बुद्ध की ही कांति सर्वोत्तम थी ।

आदरणीय आनंद ने बुद्ध का अभिनन्दन किया तथा बोले, 'भन्ते, आज जब मैंने इन सभी निकायों की कांति को निहारा तो केवल आपकी कांति मुझे संतोषजनक लगी । क्योंकि आपकी कांति इन सभी की कंाति में सर्वोत्तम है ।' तो बुद्ध ने कहा, 'आनन्द, सूर्य दिन में, चन्द्रमा रात्रि में, तथा राजा अपने कवच आदि आभूषण में ज्योतिर्मय होता है । अर्हत तब ज्योतिर्मय होते हैं, जब वे मानव समाज को पीछे छोड़ ध्यानमग्न हो जाते हैं, किन्तु बुद्ध दिन एवं रात्रि दोनों में ज्योतिर्मय होते हैं । वे पांचगुनी कांति के साथ चमकते हैं ।' तथा उन्होंने वह गाथा कही जिससे हमने प्रारंभ किया है ।

ग्वाला नन्द की कथा

दिसो दिसं यं तं कयिरा, वेरी वा पन वेरिनं ।

मिच्छापणिहितं चित्तं, पापियो नं ततो करे ।।

शत्रु शत्रु की अथवा बैरी बैरी की जितनी हानि करता है, कुमार्ग पर लगा हुआ चित्त, उससे कहीं अधिक हानि करता है ।

धम्मपद, गाथा ४२

बुद्ध ने यह गाथा तब सुनाई जब वे भिक्खुओं को नंद की मृत्यु के विषय में समझा रहे थे । नंद गृहस्थ शिष्य अनाथपिण्डिक के मवेशियों की देखभाल करता था । नंद ने अपने घर पर आने के लिए बुद्ध को आमंत्रित किया, किन्तु बुद्ध जानते थे कि अभी वह तैयार नहीं था, अतः उन्होंने उसके विवेक के परिपक्व होने की प्रतीक्षा की । अंत में, जब उन्हें लगा कि अब नंद लाभान्वित हो सकता है, तो वे उसके पास गये तथा उसे जागृति के पहले चरण में स्थापित किया । बुद्ध जब वापस आने लगे तो नंद उनके पीछे पीछे छोड़ने आया, और कुछ देर के बाद बुद्ध ने उससे विदा ली । फिर अपने घर लौटते समय मार्ग में ही नंद एक शिकारी के तीर से मारा गया ।

बुद्ध के साथ जो भिक्खु थे उन्होंने कहा, 'शास्ता, यदि आप नहीं आये होते, तो वह मारा नहीं गया होता।' तो बुद्ध ने कहा, 'भिक्खुओं, चाहे मैं आता या नहीं, उसके लिए मृत्यु से बचना संभव नहीं था, भले ही वह चारों दिशाओं तथा चारों कोणों में से किसी भी ओर जाता ।' नंद का निधन निस्संदेह, पूर्वजन्म में उसके कुछ बुरे कर्मों का परिणाम था । यह तो अनुचित रूप से निर्देशित मन है, जिसका वर्णन इस गाथा में किया गया है, जो कि अनुचित कर्म के लिए उत्तरदायी है, जिसका परिणाम अत्यंत हानिकारक होता है ।

मन दस प्रकार की बुराइयों की ओर उन्मुख हो सकता है, जिनमें शिक्षापदों को भंग करना तथा तीन दूषित मूल सम्मिलित हैं । तीन दूषित मूल हैं :- राग, द्वेष एवं मोह – यहां मिथ्या विश्वासों के अर्थ में । अनुचित दिशा में निर्देशित मन जिन शिक्षापदों को भंग करने के लिये उन्मुख होता है, उनमें हत्या, चोरी, यौन दुर्व्यवहार, झूठ, निंदा, कठोर वाणी, तथा व्यर्थ भाषण सम्मिलित हैं । जैसा कि आप देख सकते हैं, वाणी संबंधित शिक्षापद के और प्रतिभाग करना संभव है, क्योंकि झूठ बोलने के अतिरिक्त अन्य बातें भी अनुचित वाणी में सम्मिलित हैं ।

सही समझ[३]

पहले कुछ दिनों में, जब हम आनापान का अभ्यास कर रहे थे, तब हमने अष्टांगिक आर्य मार्ग के उन छः भागों की चर्चा की जो आनापान पर लागू होते हैं । अब जब कि हम पूरी तरह विपस्सना

के मार्ग पर हैं, तो दो अंतिम चरणों, अर्थात सम्यक दृष्टि (पालि में, **सम्मा दिट्ठि**) तथा सम्यक संकल्प (पालि में, **सम्मा संकप्पो**) के विषय में विस्तृत चर्चा कर सकते हैं। यह चर्चा सयाजी ऊबा ख़ीं के आचार्य के आचार्य आदरणीय लेदी सयादॉ द्वारा रचित 'आर्य मार्ग के घटकों की नियम पुस्तिका' (*The Manual of Constituents of the Noble Path)* पर आधारित होगी।

सही समझ या समुचित दृष्टि को तीन पहलुओं में विभाजित किया जा सकता है :- (१) सही समझ कि केवल दो चीजें ही एक अस्तित्व से दूसरे अस्तित्व में प्राणियों का अनुसरण कर सकती हैं - कुशल एवं अकुशल कर्म (**कम्मास्सकत सम्मा दिट्ठि**); (२) अस्तित्व चक्र, साभिप्राय कर्मों के परिणाम, एवं मुक्ति से संबंधित दस प्रकार के विषयों की सही समझ; तथा (३) चार आर्य सत्यों की सही समझ।

इस संसार में भवन, वाहन, स्वर्ण तथा रजत जैसी संपत्तियां विद्यमान हैं। इस प्रकार की वस्तुएं हमारे वर्तमान अस्तित्व में हमारी हैं। मृत्यु के पश्चात वह संपत्ति हमारे साथ नहीं जा सकती। इस प्रकार की संपत्ति उधार संपत्ति की तरह है। केवल मानसिक, मौखिक और शारीरिक इच्छाशक्तिपूर्ण कर्म ही, इस जीवन में व भविष्य के जन्मों में हमारा साथ दे सकते हैं। अग्नि, जल, शासक, चोर, या शत्रुओं द्वारा इच्छाशक्तिपूर्ण कर्मों के नष्ट होने की संभावना नहीं है।

सभी जीवित प्राणी जागते समय सदैव तीन प्रकार के, अर्थात शारीरिक, मौखिक या मानसिक कर्म निष्पादित करते हैं। उनके सभी कार्य इन्हीं कर्मों द्वारा होते हैं। जब वे सो रहे होते हैं तो ये कर्म निष्क्रिय हो जाते हैं। जब वे मर जाते हैं, तो जहां तक कि उस शरीर का संबंध है, ये कर्म बंद हो जाते हैं। ये तीन प्रकार के कर्म या तो अच्छे होते हैं या बुरे, तथा वे अपना परिणाम या तो इस जीवन में, या भविष्य के जीवन में दे सकते हैं।

धम्मपद की दूसरी गाथा को उद्धृत करते समय, हमने दस प्रकार के अनैतिक आचरण के विषय में बताया था। हमें भौतिक वस्तुओं को उपलब्ध करने में, जीविका अर्जित करने में, तथा ज्ञान प्राप्त करने में अनुचित कर्मों से बचना चाहिए। इससे इस जीवन में कुशल कर्म होंगे। किन्तु यदि हमारा उद्देश्य भविष्य में किसी अच्छे लोक में जन्म लेना है, तो केवल अनैतिक आचरण से मुक्त होना पर्याप्त नहीं होगा, हमें कुछ और भी करना होगा। हमें अच्छे कर्म भी करने होंगे जैसे दान, तथा विशेष दिनों पर आठ शिक्षापदों का पालन। हमें ध्यान का अभ्यास करना होगा तथा त्रिरत्न अर्थात बुद्ध, धम्म, एवं संघ को नमन।

हम देख सकते हैं कि भूमि पर, जल में तथा आकाश में सभी प्रकार के प्राणियों द्वारा कैसे मानसिक, मौखिक तथा शारीरिक कर्म किये जा रहे हैं। स्वयं अपनी आँखों से यह देखने के बाद,

हम यह भी समझ सकते हैं कि ये प्राणी अपने अतीत के अनंत विश्वचक्रों के अस्तित्त्व से इसी प्रकार कर्म करते आये हैं । तथा वे भविष्य में भी इसी प्रकार का आचरण करते रहेंगे । और चारों दिशाओं में अनंत ब्रह्मांड हैं, जिनमें भूमि, जल एवं आकाश में जीव इन तीन प्रकार के कृत्य कर रहे हैं । अत: हम अनुमान लगा सकते हैं कि कुशल कर्मों से अच्छे परिणाम तथा अकुशल कर्मों से विभिन्न प्रकार के दुख फलित होते हैं । आप के पास कुछ भी न हो - एक सिक्का भी नहीं- फिर भी आप सुखी हो सकते हैं, यदि आप के पास ज्ञान तथा बुद्धि रूपी मानसिक कर्म हों ।

जो लोग इस जीवन में सांसारिक लाभ, जैसे संपत्ति, अधिकारी पद, तथा सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं, वे यदि यत्न करें तथा शिक्षा एवं ज्ञान अर्जित करें, तो वे अपनी इच्छा पूर्ण कर सकते हैं । ये चीजें केवल चाहने या प्रार्थना करने से नहीं आ जातीं । यदि ऐसा संभव होता, तो किसी को भी कला एवं विज्ञान सीखने अथवा कृषि इत्यादि करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । जिस प्रकार इस संसार में मनुष्य जो कुछ पाता है वह अपने प्रयासों के माध्यम से पाता है, उसी प्रकार जो भी कुशल कर्म, जिन्हें हम पहले ही बता चुके हैं, करता है तो भावी जन्म में वह अच्छे अस्तित्व में पैदा होगा । अत: बुद्ध ने कहा कि कर्म ही हमारी संपदा हैं (**सब्बे सत्ता कम्मस्सका**)। जो कर्म, अर्थात इच्छाशक्ति पूर्ण कार्य हम करते हैं, उनकी तुलना बीज से की जा सकती है । अतीत में किसी पौधे से बीज उत्पन्न हुआ । बीज में वह क्षमता या संभावनात्मक ऊर्जा है कि सही परिस्थितियों में वह उसी पौधे की तरह विकसित हो जाय, जिससे वह उत्पन्न हुआ है । तथा वह पौधा नये बीज उत्पन्न करेगा । जिस प्रकार एक बीज जिस पौधे से उत्पन्न हुआ है उसके समान होगा, उसी प्रकार कुशल कर्म हमें जीवन को अच्छे अस्तित्व में ले जायेंगे । अकुशल कर्म हमें असुर लोक, जन्तु लोक, भटकते प्रेत लोक, अथवा किसी नरक लोक के जीवन में ले जायेंगे ।

वनस्पति केवल एक भौतिक तथ्य है । वनस्पति में कोई इच्छाधारी चेतना नहीं होती । किन्तु संवेदनशील प्राणी शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रक्रियाओं से रचित होते हैं । मानसिक कारक सबसे महत्वपूर्ण है । एक मानसिक कारक केवल एक ही नए पुनर्जन्म की चेतना को उत्पादित कर सकता है । यद्यपि किसी अस्तित्व में प्राणी के अनेक कुशल एवं अकुशल कर्म होते हैं, किन्तु उनमें से एक ही पुनर्जन्म चेतना उत्पादित करेगा तथा उस जीवन को निर्धारित करेगा । कोई भी प्राणी किसी उच्चतर प्राणी द्वारा निर्मित नहीं होता । समुचित दृष्टि इस बात का एहसास है, कि प्राणी जैसे, मनुष्य, पशु, इत्यादि अपने अतीत के जीवन के कर्मों के बीज के कारण नये अस्तित्त्व में आते हैं ।

भौतिक वस्तुओं का उत्तराधिकार, केवल एक ही जीवन की अवधि के लिए, हमारी संपदा

कहा जा सकता है । किन्तु, मानसिक, मौखिक और शारीरिक कर्म हमारे सभी जन्मों में हमारा अनुसरण करेंगे । यही हमारी असली विरासत है । कुशल कर्म जैसे कुत्तों, सूअरों, मुर्गियों तथा अन्य पक्षियों को भोजन कराने के परिणाम स्वरूप अनेक सुखमय जन्म प्राप्त हो सकते हैं । शीलवान भिक्खुओं को भोजन कराने से असंख्य सुखमय अस्तित्व प्राप्त हो सकते हैं । किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी जानवर की, जैसे मछली, पक्षी, या सूअर की हत्या करता है, तो उसका एक हजार से अधिक भावी जन्मों में बध होगा ।

यदि हम एक नन्हा सा सेब का बीज बोते हैं, तो उससे एक बड़ा वृक्ष पैदा हो सकता है, जिसमें असंख्य सेब होंगे । उसी प्रकार, कुशल कर्मों, जैसे भिक्षा दान, नैतिकता, या ध्यान के बीज भविष्य के अस्तित्वों में अच्छे परिणाम लायेंगे । प्राणी के कर्मों के प्रभाव अनेक जन्मों में सदैव उसका अनुसरण करते हैं, तथा उपयुक्त समय पर अच्छे या बुरे परिणाम उपजाते हैं । इसी कारण, बुद्ध ने कहा है कि हमारे कर्म ही हमारी विरासत में मिली संपत्ति हैं (**सब्बे सत्ता कम्म दायदा**) ।

किसी पौधे के विकास के कई कारण होते हैं; बीज, पृथ्वी, तथा जल । प्रमुख कारण बीज होता है । मिट्टी तथा जल द्वितीय कारण हैं । किसी मनुष्य के लिए, अतीत के कुशल कर्म प्राथमिक कारण हैं । माता पिता माध्यमिक कारण हैं । इसी कारण बुद्ध ने कहा है कि हमारे कुशल एवं अकुशल कर्म ही हमारे अनेक जन्मों में भ्रमण के स्रोत हैं (**सब्बे सत्ता कम्म योनि**) ।

हमारे माता पिता, भाई बहन, बेटे बेटियां, संबंधी, मित्र एवं गुरु हैं जिनसे हमें प्रेम है तथा जिनपर हम निर्भर हैं, किन्तु अल्प समय के लिये ही, जब तक हम जीवित हैं । दूसरी ओर, हमारे कर्म निरंतर हमारे साथी रहेंगे । केवल हमारे कुशल कर्म ही हमें भविष्य के अस्तित्त्व में सुख एवं समृद्धि दे सकते हैं । इसी कारण बुद्ध ने कहा है, कि केवल कर्म ही हमारे सच्चे मित्र एवं संबंधी हैं, जो प्राणियों का उनके सभी जन्मों में अनुसरण करते हैं (**सब्बे सत्ता कम्म-बंधु**) ।

हमारे वर्तमान जीवन में कुशल कर्म हमारी संकटों से सुरक्षा करते हैं, तथा भविष्य के जन्मों में दुख से बचने के लिए हम इन्हीं पर भरोसा कर सकते हैं । प्रत्येक जन्म में हम इन्हीं कर्मों की शरण में होंगे, क्योंकि जो विधान इस ब्रह्मांड में लागू होता है, वही विधान अन्य असंख्य ब्रह्मांडों में भी लागू होता है, चाहे हम बुद्ध की शिक्षा *(बुद्ध शासन)* के विद्यमान होने के समय में हों या नहीं । यही कारण है कि बुद्ध ने केवल कर्म का उल्लेख किया है, त्रिरत्न का नहीं, जब उन्होंने कहा, 'प्राणी जहां कहीं भी तमाम जन्मों में भटकें, मात्र कर्म ही उनकी सच्ची शरण हैं *(***सब्बे सत्ता कम्मप्पतिसरण***)* ।

"शरण" अर्थात जिस पर निर्भर हों, या संकट तथा कठिनाई से बचाव के लिए आश्रय लें;

इसका अर्थ मात्र श्रद्धांजलि अर्पित करना नहीं है। शरण, पालि में सरण, शब्द का अर्थ है, वह जो सहारा या संरक्षण दे सके। तथा हम अपने दैनिक जीवन में, संरक्षण के लिये भौतिक सामग्रियों पर निर्भर करते हैं। उदाहरणस्वरूप, भोजन एवं जल दीर्घायु के आधार हैं; प्रभावी चिकित्सा के लिये औषधि एवं उचित आहार पर भरोसा किया जाता है; प्रशासन हमारी लुटेरों तथा अपराधियों से रक्षा करता है; एक भवन हमें शीत एवं वर्षा से बचाता है; पृथ्वी, अग्नि, जल तथा वायु सहारा हैं।

वर्तमान समय में, जब कि बुद्ध की शिक्षाएं अभी भी जीवित हैं, तीन और आश्रय हैं :- बुद्ध, धम्म, और संघ।

यही सही समझ या समुचित विवेक है कि, मात्र कुशल एवं अकुशल कर्म ही प्राणी का एक जन्म से दूसरे जन्म में अनुसरण करते हैं।

जीवन चक्र, कर्मों के परिणाम तथा दुख से मुक्ति के विषय में दस प्रकार की सम्यक दृष्टि (**दस वत्तुक सम्मा दिट्ठि**) होती है। प्रथम सम्यक दृष्टि यह है कि, एक अस्तित्व में परोपकार के साथ प्रदर्शित दानशीलता, भावी अस्तित्त्वों में लाभकारी परिणाम देगी (**अत्थि दिन्नं**)। द्वितीय सम्यक दृष्टि यह है कि प्राप्तकर्ताओं के पुण्य गुणों के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान के साथ बड़े पैमाने पर की गई उदारता, भविष्य के अस्तित्त्वों में लाभकारी परिणाम लाती है (**अत्थि यित्थं**)। तृतीय सम्यक दृष्टि यह है कि एक छोटे पैमाने पर दिया गया उपहार भी, यदि शुभकामना के साथ दिया गया हो, तो वह भविष्य के अस्तित्त्वों में लाभकारी परिणाम देगा (**अत्थि हुतं**)। चतुर्थ सम्यक दृष्टि यह है कि एक अस्तित्व में प्राणियों के प्रति किये गये क्रूर कर्मों के बुरे परिणाम भावी अस्तित्वों में होंगे, तथा इस प्रकार के बुरे कृत्यों से बचने से लाभकारी परिणाम होंगे (**अत्थि सुकत दुक्कतनं कम्मानं फलं विपाको**)।

आप देखेंगे कि इस तथ्य पर अधिक बल दिया गया है कि अधिकांश परिणाम इसी अस्तित्व में नहीं अपितु भविष्य के जन्मों में होते हैं। यदि इसका विपरीत सत्य होता, तो प्रत्येक व्यक्ति को यह स्पष्ट हो जाता कि कुशल एवं अकुशल कर्मों के परिणामस्वरूप पारितोषिक तथा दुख अपरिहार्य हैं।

पांचवीं तथा छठीं सम्यक दृष्टि हैं कि अपनी माता और अपने पिता के प्रति किये गये अच्छे एवं बुरे व्यवहारों के अच्छे और बुरे परिणाम भावी अस्तित्वों में होंगे। हम देख सकते हैं कि अपने माता - पिता के लिए हमारा कर्तव्य इतना महत्वपूर्ण है कि इसे अलग से दो बिन्दुओं में बताया गया है (**अत्थि माता, अत्थि पिता**)।

सातवां बिंदु वह सम्यक दृष्टि है कि, वास्तव में अदृश्य योनि में जन्म लेने वाले भी प्राणी होते हैं, जो मनुष्य की आंखों को दिखाई नहीं देते। अदृश्य योनियों में जन्म लेने वाले ओपपातिक प्राणी वे हैं जिनका किसी मां के गर्भाशय में गर्भाधान नहीं होता। अपने पूर्व कर्मों की शक्ति के कारण, वे शरीर के पूरे विकसित अंगों के साथ पैदा होते हैं, जो और अधिक विकसित नहीं होंगे, अपितु वैसे ही रहेंगे। अदृश्य जन्म के प्राणी, मनुष्यों एवं पशुओं की योनियों के अतिरिक्त सभी लोकों में होते हैं।

यहां तक कि, जब मनुष्य उन प्राणियों के निकट होते हैं, तब भी उनकी मानवीय आँखें उन्हें नहीं देख पातीं (**अत्थि सत्ता ओपपतिका**)। जब वे अपना रूप प्रकट करते हैं, केवल तभी वे मनुष्यों को दिखाई पड़ते हैं।

आठवां तथा नौवां बिंदु वह सम्यक दृष्टि है कि यह लोक मानव लोक है (**अत्थि अयं लोको**), अन्य लोकों में चार निम्न लोक, देव लोक, एवं ब्रह्मलोक सम्मिलित हैं (**अत्थि परो लोको**), तथा सभी दिशाओं में अनंत संख्या में ब्रह्माण्ड हैं।

अंत में, हम सम्यक दृष्टि के दसवें बिंदु पर आते हैं। वह यह है कि, सर्वज्ञ बुद्ध, भिक्खु, एवं ब्राह्मण (बुद्ध द्वारा इस शब्द का प्रयोग 'एक सदाचारी व्यक्ति' के अर्थ में किया गया था) वास्तव में इस मानव लोक में होते हैं, जो सच्चे धम्म की साधना करते हैं तथा मन की शांति पाते हैं, एवं जो अपनी स्वयं की अंतर्दृष्टि के माध्यम से इस लोक तथा अन्य लोकों को ज्ञात तथा सिद्ध कर दूसरों को इसका ज्ञान प्रदान करते हैं (**अत्थि लोके समन-ब्राह्मणा समग्गता सम्मापतिपन्ना ये ईमं च लोकं परं च लोकं सयं आभिञ्ञा सच्चिकत्वा पवेदेन्ति**)।

चार आर्य सत्यों की सम्यक दृष्टि, दुख के सत्य, दुख के मूल के सत्य, दुख के विनाश के सत्य, तथा दुख की समाप्ति के लिए अग्रणी मार्ग के सत्य की छेदक अंतर्दृष्टि है। इन्हें हम पूर्ववर्ती प्रवचनों में बता चुके हैं।

सम्यक संकल्प

अष्टांगिक आर्य मार्ग का अंतिम चरण सम्यक संकल्प (पालि में, **सम्मा संकप्पो**) है। हम इसे तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं :- (१) निष्काम संकल्प (पालि में, **नेक्खाम संकप्पो**) अर्थात लोभ एवं कामुक इच्छाओं से मुक्त विचार तथा पुनर्जन्म के दौर से मुक्ति का लक्ष्य, (२) अव्यापाद संकल्प (पालि में, **अब्यापाद संकप्पो**) अर्थात सभी जीवित प्राणियों के कल्याण का विचार, तथा (३) अविहिंसा संकप्प अर्थात सभी जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा का विचार।

अत: इसमें उत्तेजक कामुक इच्छाओं का त्याग, तथा मेत्ता, दया, करुणा, मुदिता एवं धैर्य का विकास सम्मिलित है ।

प्रतीत्य समुत्पाद

आइये अब देखते हैं कि कर्म के साथ साथ कार्य-कारण प्रभाव कैसे काम करते हैं । इस सिद्धान्त को प्रतीत्य समुत्पाद (पालि में, **पटीच्च समुप्पाद**) के नाम से जाना जाता है । यह बुद्ध की आधारभूत शिक्षाओं में से एक है । बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा, 'आनंद, प्रतीत्य समुत्पाद वास्तव में गहरा है, तथा गहरा प्रतीत भी होता है । इसे न समझने के कारण, इसका मर्मज्ञ न हो पाने के कारण, ये प्राणी धागे से बनी गेंद की तरह या मूंज घास की तरह उलझ गये हैं, तथा दुखमय अस्तित्व से या पुनर्जन्म (संसार) के चक्र से बाहर निकलने में असमर्थ हैं ।'[४]

यही वह सिद्धान्त है जिसका आदरणीय अस्सजी ने उल्लेख किया था, जब उपतिस्स, जिन्हें बाद में सारिपुत्त के नाम से जाना गया, ने उनसे अपने गुरु के सिद्धांत की व्याख्या करने के लिए कहा था । जैसा कि हमने देखा है, इस सिद्धांत का उल्लेख करने वाली दो पंक्तियां ही, सारिपुत्त को जागृति के पहले चरण के फलपद को प्राप्त कराने के लिये पर्याप्त थीं :-

ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह,

तेसं च यो निरोधो एवं वादी महासमणो ।

तथागत ने सभी धर्मों के कारणों की तथा उनके निरोध की व्याख्या कर दी है, यही महाश्रमण का सिद्धांत है ।

– विनय पिटक, ४. महावग्ग, १. महाखंधको, १४. सारिपुत्तमोग्गल्लानपब्बज्जाकथा

यह कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है जो बुद्ध द्वारा आविष्कृत हो, या बड़ी चतुराई से रचित कोई दार्शनिक प्रणाली हो, जिसे संशोधित किया जा सके । यह किसी दैवी शक्ति का आविष्कार नहीं है । प्रतीत्य समुत्पाद सभी तथ्यों या धर्मों अर्थात संखित अवस्थाओं की उत्पत्ति एवं उनकी समाप्ति का परम सत्य है । ऐसा होता ही रहता है, चाहे कोई बुद्ध हों या न हों ।

इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पदा इदं उपज्जति, इमस्मिं असति इदं नो होति, इमस्सा निरोधो इदं निरुज्झति ।

इसके होने से यह होता है; इस के उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है; इसके न होने से यह नहीं होता; इस की समाप्ति के साथ, यह समाप्त हो जाता है ।[५]

प्रतीत्य समुत्पाद का यह परम सत्य बुद्ध द्वारा उनकी जागृति के माध्यम से आविष्कृत हुआ था। अपनी जागृति के पश्चात वे गया में बोधि वृक्ष के आधार पर, मुक्ति के परम आनंद का अनुभव करते हुये बैठे रहे।[६] जब सात दिन समाप्त हो गये, तो वे अपने गहरे ध्यान से बाहर निकले, तथा रात्रि के पहले पहर में उन्होंने प्रतीत्य समुत्पाद के उत्पन्न होने वाले पहलू (अनुलोम) पर विचार किया, 'इसके होने से यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न होता है।"

मध्य पहर में उन्होंने प्रतीत्य समुत्पाद पर समाप्ति के दृष्टिकोण (प्रतिलोम) से विचार किया:- 'इसके न होने से यह नहीं होता। इस की समाप्ति के साथ, यह समाप्त हो जाता है।' तथा रात्रि के अंतिम पहर में, बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद के दोनों, उत्पन्न होने वाले एवं समाप्त होने वाले, पहलुओं को परिलक्षित किया :- 'यह दुख का मूल है, दुख का समुदय है। यह दुख का अंत है।'

प्रतीत्य समुत्पाद के ग्यारह चरण इस प्रकार हैं :-

अविद्या पर निर्भर कर, संस्कार (पालि में, संखार) उत्पन्न होते हैं।

संखार पर निर्भर कर, चेतना या विज्ञान (पालि में, विञ्ञान) उत्पन्न होते हैं।

चेतना पर निर्भर कर, मन-शरीर (नाम-रूप) उत्पन्न होते हैं।

नाम-रूप पर निर्भर कर, षडायतन (पालि में, सलायतन) अर्थात छ ज्ञानेन्द्रियों के आधार उत्पन्न होते हैं।

षडायतन पर निर्भर कर, स्पर्श (पालि में, फस्स)उत्पन्न होते हैं।

स्पर्श पर निर्भर कर, वेदना उत्पन्न होती है।

वेदना पर निर्भर कर, तृष्णा (पालि में, तण्हा) उत्पन्न होती है।

तृष्णा पर निर्भर कर, आसक्ति या उपादान उत्पन्न होता है।

उपादान पर निर्भर कर, भव उत्पन्न होता है।[७]

वर्तमान अस्तित्व में नैतिक एवं अनैतिक कर्मों पर निर्भर कर, पुनर्जन्म की प्रक्रिया उत्पन्न होती है।[८]

पुनर्जन्म की प्रक्रिया पर निर्भर कर, बुढ़ापा, मृत्यु, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक, तथा हताशा उत्पन्न होती है।

इस प्रकार दुख का संपूर्ण भंडार उत्पन्न होता है।

समाप्ति की दृष्टि से प्रतीत्य समुत्पाद की वही ग्यारह कड़ियां हैं। जब इनमें से कोई एक कड़ी टूटती है, तो अगली कड़ी भी टूट जाती है :-

अविद्या की पूरी समाप्ति के माध्यम से, संखार समाप्त होते हैं।

संखारों की समाप्ति के माध्यम से, चेतना समाप्त होती है। ...

इत्यादि, दुख के समूचे भंडार की समाप्ति तक।

किन्तु अविद्या (पालि में, अविज्जा) को पहली शुरुआत नहीं समझना चाहिये। प्रथम प्रारंभ या आदि की कल्पना असंभव है। दुख के मूल को मात्र एक सतत् प्रक्रिया के रूप में जाना जा सकता है, जिसे हम तभी समझ सकते हैं जब हम इसके कार्य करते समय इसका अवलोकन करें। इस प्रकृया की आदि का कोई भी, एक बुद्ध भी नहीं पता लगा सकते।

आइये अब हम विभिन्न चरणों को कुछ और विस्तार से देखते हैं। पिछले जन्मों में हमने मन, वचन, तथा शरीर से अच्छे एवं बुरे कर्म किये, क्योंकि हम अनुबंधित या संखित दशाओं की असली सच्चाई से अनभिज्ञ थे। अत: हमारी अविद्या (अविज्जा) या अज्ञान से ये मानसिक शक्तियां (या संखार) उत्पन्न हुए, जिन्होंने हमारे वर्तमान अस्तित्व के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

हमारे पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण, हमारे वर्तमान जीवन में, चेतना या विञ्ञान है, जो मन-शरीर या नाम-रूप प्रकृया जिसे हम 'मैं, मेरा' कहते हैं, का निरंतर आलंबन है। इस मन-शरीर या नाम-रूप प्रकृया में छह ज्ञानेन्द्रियां (षडायतन, पालि में, **सलायतन**) अर्थात, दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श, एवं विचार तथा कल्पना, हैं। इनसे उन विषयों से संपर्क या स्पर्श (पालि में, **फस्स**) संभव होता है, जो इंद्रियों को उत्तेजित करते हैं। इस स्पर्श से अनुभूतियां या संवेदनायें (पालि में, **वेदना**) उत्पन्न होंगी। ये वेदनायें प्रिय, अप्रिय या तटस्थ होंगी, जिनके प्रति हमारी प्रतिक्रिया होगी तथा इस प्रकार लालसा या तृष्णा (पालि में, तण्हा) उदय होगी। हमारी लालसा होगी कि प्रिय वेदना बनी रहे। अप्रिय अनुभूतियों से हमारी छुटकारा पाने की लालसा होगी। अत: इस लालसा से आसक्ति या उपादान होगा। हमारी आसक्ति का परिणाम होगा भव, अर्थात अनुबंधित अस्तित्व, तथा हम अपने नए अस्तित्व में असंख्य कर्म करेंगे जो अच्छे या बुरे होंगे। इस प्रकार हम नये जन्म में जायेंगे (जाति) जो पुन: केवल बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, विलाप, दु:ख, कुण्ठा एवं संताप लाएगा (**जरा-मरणं सोकपरिदेव दुक्ख दोमनस्सुपायास**)।

कार्य-कारण का यही दुष्चक्र है। तथा इस पूरी प्रक्रिया के लिए हमीं उत्तरदायी हैं। हमारी लालसा तथा आसक्ति ही हमें अच्छे और बुरे कर्मों की ओर ले जाती है, जो हमें दुख की पूरी प्रक्रिया से जोड़ेंगे।

किन्तु, क्या यह सब समाप्त किया जा सकता है? इस श्रृंखला में यदि कोई भी एक कड़ी टूट जाय, तो सारी प्रक्रिया बंद हो जाएगी । और हम केवल वही करने में सक्षम होने के लिए यहां काम कर रहे हैं । इस शृंखला में एक कड़ी ऐसी है जो विशेष रूप से गृहस्थ जनों के काम करने के लिए उपयुक्त है, वह है वेदना तथा वेदना के प्रति प्रतिकृया से उत्पन्न तृष्णा के बीच की कड़ी ।

जब हम अपनी आँखें बंद कर बैठते हैं तथा वेदनाओं का अनुभव करते हैं, तो यह पूरी प्रक्रिया प्रति क्षण असंख्य बार होती है । प्रत्येक वेदना, अतीत में अविद्या के कारण किये गये कर्म का परिणाम है । यदि हम अनित्यता अर्थात वेदनाओं में परिवर्तनशीलता, के बोध में तल्लीन हो सकें, तो हम स्वत: ऐसा संतुलित दृष्टिकोण या समभाव विकसित कर सकेंगे, जो हमें एक दिन उस कड़ी को काटने में सक्षम करेगा, जो कड़ी हमें अगले चरण की ओर ले जाती है । सामान्यत: जो लालसा हम उदय होने देते हैं, उसे काटने की दिशा में हम काम करेंगे । जब तक हम मुक्ति न प्राप्त कर लें, तब तक हम इस कड़ी को तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकते, तथा इसके लिये प्रचुर तैयारी करनी पड़ती है ।

प्रतीत्य समुत्पाद (पटीच्च समुप्पाद) के विषय में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है, किन्तु मैं सोचता हूं कि इतना ही आपको यह एहसास कराने में सहायक होगा कि अपनी साधना आप क्यों इस प्रकार से कर रहे हैं, तथा आपकी साधना का महत्व क्या है । यदि आप वेदनाओं के स्वभाव, अर्थात नश्वरता या अनित्यता का बोध कर सकते हैं, तो आप दुख की उत्पत्ति का सत्य समझ जाएंगे; आप की वेदना के प्रति लालसा छूट जायेगी तथा आप दुख निरोध का सत्य साकार करेंगे । अविद्या समाप्त हो जायेगी तथा प्रतीत्य समुत्पाद की पूरी प्रक्रिया का अन्त हो जाएगा ।

प्रतीत्य समुत्पाद का अनुलोमत: अर्थात उदय के अनुसार विचार करने के पश्चात बुद्ध के मुख से उदान के ये वचन निकले[९] :-

''यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा,
आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङखा वपयन्ति सब्बा,
यतो पजानाति सहेतुधम्म''न्ति॥

जब तपस्वी, ध्यानी ब्राह्मण के समक्ष धर्म प्रकट हो जाते हैं, तो उसकी सारी शंकायें मिट जाती हैं, क्योंकि वह हेतु सहित धर्म को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है ।

प्रतीत्य समुत्पाद का प्रतिलोमत: अर्थात निरोध के अनुसार विचार करने के पश्चात बुद्ध के मुख से

उदान के ये वचन निकले :-

‘‘यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा,
आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा,
यतो खयं पच्चयानं अवेदी"ति ॥

जब तपस्वी, ध्यानी ब्राह्मण के समक्ष धर्म प्रकट हो जाते हैं, तो उसकी सारी शंकायें मिट जाती हैं, क्योंकि वह प्रत्यया के क्षय को जान लेता है, अर्थात उसे यह बोध हो जाता है कि कैसे कारणों का अंत होता है।

प्रतीत्य समुत्पाद का अनुलोमत: एवं प्रतिलोमत: दोनों रूप में विचार करने के पश्चात बुद्ध के मुख से उदान के ये वचन निकले :-

‘‘यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा,
आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं,
सूरियोव ओभासयमन्तलिक्ख’’न्ति॥

जब तपस्वी, ध्यानी ब्राह्मण के समक्ष धर्म प्रकट हो जाते हैं, तो उसकी सारी शंकायें मिट जाती हैं, और जिस प्रकार (अंधकार को विदीर्ण कर) सूर्य आकाश को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार वह मार सैनिकों को छिन्न भिन्न कर डालता है।

तथा पूर्ण जागृति की प्राप्ति के बाद बुद्ध के उद्घोष के प्रथम शब्द ये थे :-

अनेक जातिसंसारं, सन्धाविस्सं अनिब्बिसं ।

गहकारं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं ।।

(इस) घर को बनाने वाले की खोज में (मैं) बिना रुके अनेक जन्मों तक (भव-) संसरण करता रहा, किन्तु बार बार दु:ख(-मय) जन्म ही हाथ लगे।

गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि ।

सब्बा ते फस्सुका भग्गा , गहकूटं विसंखतं ।

विसंखारगतं चित्तं, तण्हानं खयमज्झगा ।।

ओ घर बनाने वाले! (अब) तू देख लिया गया है, (अब) फिर (तू) (नया) घर नहीं बना सकता। तेरी सारी कड़ियां टूट गयी हैं तथा घर का शिखर भी विशृंखलित हो गया है। चित्त पूरी तरह संस्काररहित हो गया है और तृष्णाओं का क्षय (निर्वाण) प्राप्त हो गया है।

धम्मपद, गाथा, १५३-१५४

संदर्भ सूची

[1]*Buddhist Legends*, III 278f.

[2]*Buddhist Legends*, II 22f. and Dhammapada Commentary, I 140f.

[3]*The Manuals of Buddhism*, pp. 221-236.

[4]*Dialogues of the Buddha*, II 50.

[5]This statement occurs in several discourses; for example: *Middle Length Sayings*, II 32, III 107; *Kindred Sayings*, II 23, 66, etc.

[6]*Verses of Uplift*, pp. 1-3.

[7]According to the Abhidhammatthasangaha, *bhava* as the result of clinging means *upapatti-bhava* (existence through the rebirth process). See Ven. Narada's translation, *A Manual of Abhidhamma*, pp. 358, 364 (revised translation by Bhikkhu Bodhi, *A Comprehensive Manual of Abhidhamma*, pp. 298, 301). This includes existence in the eleven realms of sense desire (kama-bhava), existence in the sixteen fine-material realms (rupa-bhava), and existence in the four non-material realms (arupa-bhava). See Ten Suttas from Digha Nikaya, p. 161, note 1.

[8]According to the Abhidhammatthasangaha, *bhava* as the condition for rebirth means *kamma-bhava* (the existence of [volitional] actions)—volitional actions done in the present leading to future rebirth and the mental phenomena associated with such actions. See the references in the preceding footnote.

[9]The next three stanzas are from *The Book of the Discipline*, IV 2f., and *Verses of Uplift*, pp. 2f. (more recent translation by Peter Masefield: The Udana, pp. 1–3).

अष्टम दिवस,प्रात: प्रवचन

स्वयं की शरण लेना

अत्ता हि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परोसिया ।

अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं ।।

मनुष्य स्वयं अपना स्वामी होता है, भला दूसरा कौन उसका स्वामी हो सकता है? अपने आपको भली भांति वश में करके (प्रज्ञा द्वारा ही) यह दुर्लभ (स्थायित्व) प्राप्त होता है ।

धम्मपद, गाथा १६०

कुमार काश्यप तथा उनकी माँ की कथा[१]

यह गाथा कुमार काश्यप की मां के संदर्भ में कही गयी थी । कुमार काश्यप की मां राजगह (आधुनिक राजगिरि) नगर में एक कोषाध्यक्ष की पुत्री थी । स्वयं एक भिक्खुणी बनने के लिये उसने अपने माता पिता से बिनती की, किन्तु उन्होंने मना कर दिया । जब उसकी आयु हो गई, तो उन्होंने उसकी एक योग्य पति से विवाह कर दिया, किन्तु उसने अपने पति को मना लिया कि वह उसे भिक्खुणी बनने के लिए अनुमति दे । जब वह भिक्खुणी बनी तब उसे पता नहीं था कि वह गर्भवती थी ।

वे देवदत्त के, जिन्होंने बुद्ध से संबंध तोड़ लिया था, भिक्खुणी संघ में भिक्खुणी बनीं । जब यह प्रकट हो गया कि वे गर्भवती हैं तो भिक्खुणियां सोचने लगीं कि अब क्या किया जाय । देवदत्त ने अपनी आलोचना के भय से उन्हें निष्कासित करने के लिए कहा । किन्तु उन्हें बुद्ध में आस्था थी तथा वे बोलीं कि उन्हें बुद्ध के पास ले जाया जाय । बुद्ध समझ गये कि वे भिक्खुणी बनने से पहले ही गर्भवती हो गईं थीं, अत: तिरस्कार से परे थीं । परन्तु अन्य लोगों के संदेह को दूर करने के लिए उन्होंने चार अग्रणी गृहस्थ शिष्यों, अर्थात कौशल के राजा पसेनदि, महा अनाथपिण्डिक, चुल्ल अनाथपिण्डिक तथा माँ विशाखा को बुला भेजा, और नियमों में अग्रणी स्थविर उपालि को युवा महिला के विरुद्ध उठाये गये आरोप की जांच का आदेश दिया । माँ विशाखा ने निर्धारित कर दिया कि वह संघ में सम्मिलित होने के पहले ही गर्भवती हुई थी । अत: वह भिक्खुणी बनी रही तथा समय आने पर एक पुत्र को जन्म दिया ।

एक दिन जब राजा भिक्खुणी समुदाय के पास से गुजर रहे थे, तो उन्होंने उस शिशु के रोने की आवाज सुनी । उन्होंने इस विषय में पूछा तो उन्हें बताया गया कि किसी भिक्खुणी ने एक

पुत्र को जन्म दिया है । उन्होंने उस शिशु को गोंद ले लिया तथा उसे कुमार काश्यप नाम दिया । बाद में, एक दिन ऐसा आया कि कुमार काश्यप के सखा उनका उपहास करने लगे कि उनके कोई माता पिता नहीं थे । उन्होंने राजा से पूछा कि इसका अर्थ क्या है । उनकी माँ कौन है? राजा ने अपनी बेटियों की ओर जिन्होंने कुमार का पालन पोषण किया था, इशारा किया, और कहा, 'ये तुम्हारी मांयें हैं ।' किन्तु बालक जानता था कि उसकी केवल एक ही मां होनी चाहिए । अंत में, राजा ने उन्हें पूरी कहानी सुनाई । जैसे ही उन्हें सत्य का पता चला, उनकी इच्छा संसार से संन्यास लेकर एक भिक्खु बनने की हुई ।

कुमार काश्यप ने प्रव्रज्या ली तथा उन्हें एक ध्यान के लिये विषय दिया गया, एवं अंत में वे उस लक्ष्य तक पहुँच गये, जिसके लिये वे एक लाख कल्पों से काम कर रहे थे ।

किन्तु उनकी माँ में अपने पुत्र के प्रति इतनी अधिक अनुरक्ति थी कि वे बारह वर्षों तक रोती विलखती रहीं । जब वे अर्हत हो गये तो एक दिन, किसी गली में उन्हें देखा । वे उनके पास विलाप करती हुई दौड़ कर गईं, 'मेरे बेटे! मेरे बेटे!' वे उनके पैरों पर गिर पड़ीं तथा उनके स्तन से दूध प्रवाहित होने लगा । कुमार काश्यप ने सोचा, 'यदि मैं इनसे प्रेम से बोलता हूं, तो उससे इनकी हानि होगी । अत: मुझे इनसे बड़ी दृढ़ता से बात करनी होगी ।' अत: वे उनसे बोले, 'आप क्या कर रही हैं? क्या आप मानवीय स्नेह की भावुकता से छुटकारा नहीं पा सकतीं?' इससे उन्हें वह झटका लगा जिसकी उन्हें आवश्यकता थी, तथा उन्होंने सोचा, 'इसके कारण मैं बारह वर्षों तक अपने आँसुओं को रोक न सकी । किन्तु इसने मेरे प्रति अपना हृदय कठोर कर लिया है । मेरा अब इससे क्या लेना देना?' तथा अपने पुत्र के प्रति आसक्ति समाप्त करने के माध्यम से, वे आगे प्रयास कर सकीं एवं अर्हत्व प्राप्त करने में सक्षम हुईं ।

कुछ समय बाद, भिक्खु इस घटना की चर्चा कर रहे थे । उन्होंने कहा, 'देवदत्त के कारण कुमार काश्यप का, जिन्होंने जागृति प्राप्त करने की सभी तैयारी कर ली थी, विनाश होने वाला था । तथा उनकी माँ के साथ भी वही होने वाला था । किन्तु तथागत ने उनको अपनी शरण दी । विश्व के लिए बुद्धों की करुणा कितनी महान है!' बुद्ध ने भिक्खुओं को स्पष्ट किया कि यह पहली बार नहीं था जब कुमार- काश्यप तथा उनकी माँ को उन्होँने अपनी शरण में लिया था । अपने पुत्र के प्रति अपने स्नेह को निकाल फेंकने के लिये, तथा स्वयं को स्वयं की शरण में स्थापित करने के लिए, उन्होँने उसकी प्रशंसा करते हुए वह गाथा कही, जिससे हमने यह प्रवचन प्रारंभ किया है:-

अत्ता हि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परोसिया ।

अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं ।।

मनुष्य स्वयं अपना स्वामी होता है, भला दूसरा कौन उसका स्वामी हो सकता है? अपने आपको भली भांति वश में करके *(प्रज्ञा द्वारा ही)* यह दुर्लभ *(स्थायित्व)* प्राप्त होता है ।

धम्मपद, गाथा १६०

जागृति के सात कारक

अब हम जागृति के सात कारकों, अर्थात बोध्यंगों की चर्चा करते हैं । 'जागृति के कारक' के लिए पालि शब्द बोज्झंग है । यह बोधि शब्द जिसका अर्थ है जागृति या निर्वाण, तथा अंग शब्द जिसका अर्थ है घटक या कारक, से बनता है ।

एक समय जब भगवान बुद्ध, गिलहरिओं के खिलाने के स्थान, बांस के कुन्ज अर्थात वेलुवन में विहार कर रहे थे, तो महा काश्यप पिप्पली गुहा में रह रहे थे, और गंभीर रूप से रोग से पीड़ित थे । भगवन्त उनके पास गये, अपने लिये तैयार किये गये आसन पर बैठे, तथा महा काश्यप से बोले ।

'तो, काश्यप, आप कैसे हैं? क्या आप सहन कर पा रहे हैं? क्या आपकी पीड़ा कम हो रही है या बढ़ रही है? क्या आपकी पीड़ा के संकेत घट रहे हैं और बढ़ नहीं रहे हैं?'

महा काश्यप ने प्रतिवचन दिया, 'नहीं, भगवन्त, मैं सहन नहीं कर पा रहा हूं । पीड़ा अत्यधिक है । पीड़ा के संकेत कम नहीं अपितु बढ़ रहे हैं ।'

तब बुद्ध ने उनसे कहा, 'काश्यप, जागृति के सात कारकों को मैंने अच्छी तरह उगाया, विकसित किया, तथा स्पष्ट किया है । जब ये अच्छी तरह उगाये एवं विकसित किये जाते हैं, तो वे पूर्ण जागृति, समुचित प्रज्ञा, या निर्वाण के लिये प्रेरित करते हैं ।'

आगे बुद्ध सात कारकों को बताते हैं :- (१) सति अर्थात सभी शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों के प्रति जागरूकता; (२) सभी धर्मों अर्थात सभी घटनाओं या प्रकृयाओं की सही प्रकृति का अपने ज्ञान के माध्यम से अन्वेषण या जांच (पालि में धम्म-विचाय)[२]; (३) ऊर्जा या वीर्य (पालि में विरिय) अर्थात अंत तक दृढ़ संकल्प के साथ काम करते रहना; (४) प्रसन्नता, आह्लाद या प्रीति (पालि में पीति), जो कि मन की निराशावादी, उदास, या अवसादपूर्ण दृष्टिकोण के विपरीत की गुणवत्ता है; (५) मन एवं शरीर दोनों की शांति (पालि में पस्सद्धि); (६) एकाग्रता या समाधि: तथा (७) समभाव या उपेक्षा (पालि में उपेक्खा), अर्थात उस स्तर

को प्राप्त करना जिसमें शारीरिक तथा मानसिक प्रयास की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती।

जब बुद्ध ने जागृति के सात कारकों को बताना समाप्त किया तो महा काश्यप बोले, 'सच में प्रभु, ये ही जागृति के कारक हैं!' आनन्दित होते हुए, उन्होंने बुद्ध के वचनों का स्वागत किया, तथा वे अपने रोग से बाहर निकले। उनकी बीमारी उसी क्षण विलुप्त हो गई।

बाहिय दारुचीरिय की कथा[३]

सहस्सं अपि चे गाथा, अनत्थपदसंहिता। एकं गाथापदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति।।

निरर्थक पदों से युक्त सहस्रों गाथाओं की अपेक्षा (वह) एक (अकेला सार्थक) गाथापद श्रेयष्कर होता है, जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है।

धम्मपद, गाथा १०१

बुद्ध द्वारा प्रशिक्षण के समय बाहिय दारुचीरिय कम से कम समय में जागृत होने वाले व्यक्ति थे। एक लाख कल्प पूर्व वे उस समय विद्यमान थे जब पद्मुत्तर बुद्ध ने तात्कालिक बोध में अग्रणी भिक्खु को इंगित किया था। बाहिय दारुचीरिय ने एक दिन वही पद प्राप्त करने के लिये अपनी अभिलाषा व्यक्त की तथा पद्मुत्तर बुद्ध ने निश्चित भविष्यवाणी की कि एक लाख कल्प के बाद गौतम बुद्ध के समय वह यह पद अवश्य प्राप्त करेंगे।

गौतम बुद्ध के पूर्व अंतिम बुद्ध, काश्यप बुद्ध के प्रशिक्षण के समय बाहिय दारुचीरिय कुमार काश्यप से जुड़े थे। काश्यप बुद्ध की शिक्षा का ह्रास होना प्रारंभ हो गया था, तथा वे दोनों सात भिक्खुओं के समूह में थे जिन्होंने अधिकतम प्रयास करने का निर्णय लिया। वे एक पर्वत पर चढ़ गए जो इतना ऊंचा तथा सीधे खड़ा था कि उसके शीर्ष पर पहुंचने के लिये उन्हें सीढ़ी का प्रयोग करना पड़ा। जब वे शीर्ष पर पहुंच गये तो उन्होंने सीढ़ी नीचे फेंक दी, जिससे वे अर्हत्व प्राप्त करने के पहले, शिखर न छोड़ सकें। उनके अगुआ पूरी तरह जागृत हो गये, तथा दूसरे भिक्खु ने जागृति का तीसरा चरण प्राप्त किया। किन्तु अन्य पांच भिक्खुओं का पर्वत पर ही सात दिन के बाद ध्यानमग्न मुद्रा में निधन हो गया। उन सभी पाँच का पुनर्जन्म, गौतम बुद्ध के समय हुआ तथा उनमें से एक कुमार काश्यप एवं एक बाहिय दारुचीरिय थे। अन्य तीन थे दब्ब मल्लपुत्र, सभिय तथा पुक्कुसाथी, जिनकी कहानी हम आपको पहले ही बता चुके हैं।

बाहिय दारुचीरिय एक व्यापारी परिवार में उत्पन्न हुए थे तथा उन्होंने सिंधु नदी से सात बार व्यापारिक यात्रा की थी। आठवीं यात्रा पर, सुवर्णभूमि के लिए जाते समय उनकी जहाज

मार्ग में ही पलट कर फंस गई तथा वे बह कर अंतत: किसी तट पर वस्त्र विहीन पहुंचे । वे छाल और टहनियों से स्वयं को ढंक कर भिक्षा माँग कर रहने लगे । लोग उन्हें एक महान तपस्वी समझकर, विशेष सम्मान के साथ अर्हत शीर्षक से संबोधित करने लगे । अंतत: स्वयं बाहिय को भी विश्वास हो गया कि वे पूरी तरह जागृत हो गये हैं ।

तब, जो भिक्खु पूर्व जन्म में पर्वत पर जागृति के तीसरे चरण को प्राप्त कर चुके थे, उनका पुनर्जन्म उच्च लोक में हुआ था, तथा उन्हें ज्ञात हो गया कि उनके पूर्व मित्र बाहिय भ्रमित होकर भटक रहे हैं । उन्होंने उन्हें सीधे मार्ग पर लाने का निर्णय लिया, तथा एक रात वे उन्हें दिखाई पड़े । उन्होंने बाहिय से कहा कि उन्होंने अभी जागृति नहीं प्राप्त की है, तथा अभी तो वे उस मार्ग पर भी नहीं हैं, जो जागृति की ओर ले जाता है । उन्होंने बाहिय को बताया कि इस विश्व में एक बुद्ध विद्यमान हैं । इस समाचार से कि एक बुद्ध हैं, बाहिय इतने उत्तेजित हुए कि उन्होंने तत्काल प्रस्थान कर दिया, यद्यपि अभी अर्ध रात्रि ही थी । वे अति प्रात: श्रावस्ती पहुंचे । जब वे विहार में गये तो लोगों ने उनको बताया कि बुद्ध तो भिक्षाटन के लिये निकल पड़े हैं तथा अब उन्हें विश्राम कर बुद्ध के लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

किन्तु, बाहिय प्रतीक्षा नहीं कर सके । वे नगर की गलियों में बुद्ध की तलाश में निकल पड़े । अंतत: उन्हें बुद्ध मिल गये तो वे उनके चरणों पर गिर पड़े तथा बुद्ध के टखनों को पकड़ लिया । उन्होंने बुद्ध से शिक्षा के लिये अनुरोध किया । किन्तु बुद्ध को लगा कि बुद्ध को पाकर बाहिय दारुचीरिय इतने गद्गद हो गये थे कि बुद्ध की शिक्षाओं को समझने तथा पालन करने में सक्षम होने के लिये उनके चित्त में पर्याप्त शांति नहीं थी । प्रशिक्षण के लिये बाहिय का अनुरोध बुद्ध ने दो बार अस्वीकार कर दिया, जिससे बाहिय को शांत होने के लिए समय मिल सके । फिर, तीसरी बार, बाहिय ने बुद्ध से कहा कि जीवन अनिश्चित है तथा वह जल्द ही मर सकता है । बुद्ध ने देखा कि वास्तव में बाहिय उसी प्रात: मर जायेगा, अत: बुद्ध ने बाहिय को वहीं उसी समय यह कह कर शिक्षा दी, 'बाहिय, तुम्हारे लिये दृश्य में दृश्यमात्र होगा, श्रवण में श्रवणमात्र होगा । विचार में तुम्हारे लिये मात्र विचार होगा । जानने में तुम्हारे लिये केवल जानना होगा ।'

इस प्रकार बुद्ध ने स्मरण दिलाया कि ये केवल इंद्रियों के कार्य हैं, किन्तु इनके पीछे कोई आत्मा, अहं या स्थायी कर्ता नहीं है । बाहिय को, जिन्होंने इतने लंबे समय तक अपने मन को तैयार किया था, तत्क्षण, सत्य का अनुभव हुआ, तथा वे सभी लोभ, द्वेष एवं मोह से मुक्त अर्हतों में से एक हो गये ।

बाहिय ने भिक्षु संघ में प्रविष्ट होने के लिये अनुरोध किया । तथापि, बुद्ध ने कहा कि पहले

वह आवश्यक चीवर तथा अन्य अनिवार्य वस्तुएँ प्राप्त करे । जब किसी व्यक्ति में अपेक्षित पारमी होती हैं तथा वह भिक्षु बनने की इच्छा व्यक्त करता है, तो बुद्ध केवल 'आओ, भिक्खु', 'एहि, भिक्खु' कहकर संघ में स्वीकार कर सकते हैं । किन्तु बुद्ध जानते थे कि यद्यपि बाहिय की अन्य पारमिताएं पूरी तरह विकसित हो गई थीं, किन्तु उसने भिक्षुओं को चीवर तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ दान देकर, उनकी कभी सहायता नहीं की थी, अत: उसने स्वयं के भिक्खु बनने के लिए तैयारी नहीं की थी । इसके अतिरिक्त, किसी पिछले जन्म में वह एक डाकू था जिसने एक प्रत्येक बुद्ध की हत्या कर उनके चीवर को स्वयं के उपयोग के लिए ले लिया था । अत: बुद्ध ने बाहिय से कहा कि यदि वह एक भिक्खु बनने के लिये प्रव्रज्या लेना चाहता है तो उसे चीवर तथा अन्य अपेक्षित वस्तुएँ जुटानी होंगी । जब बाहिय इन वस्तुओं की तलाश में थे तो वे एक पागल गाय द्वारा मारे गये ।

भिक्षाटन के पश्चात जब बुद्ध तथा अन्य भिक्खु वापस विहार की ओर लौट रहे थे तो विहार के निकट एक कूड़े के ढेर पर एक शव मिला । बुद्ध ने भिक्खुओं से कहा कि उस शव का दाह संस्कार कर उसके अवशेषों पर एक स्तूप बना दें । उन्होंने वही किया जो उनसे कहा गया तथा तत्पश्चात उन्होंने मृत व्यक्ति के भविष्य की स्थिति के विषय में बुद्ध से पूछा । बुद्ध ने उन्हें बताया कि वे अर्हत्व प्राप्त चुके थे । भिक्खुओं ने पूछा, 'किन्तु कब?' 'आज, जब मैंने उन्हें भिक्षाटन के समय शिक्षा दी ।' इस बात से आश्चर्यचकित होकर कि इतने कम समय में भी कोई अर्हत्व प्राप्त कर सकता है, उन्होंने पूछा,'परन्तु वह तो अत्यंत ही अल्प प्रवचन था, था न?' तब बुद्ध ने उसका उत्तर उस गाथा के साथ दिया जिसे हमने इस कथा के प्रारंभ में उद्धृत किया है :-

सहस्सं अपि चे गाथा, अनत्थपदसंहिता । एकं गाथापदं सेय्यो, यं सुत्वा उपसम्मति ।।

निरर्थक पदों से युक्त सहस्रों गाथाओं की अपेक्षा (वह) एक (अकेला सार्थक) गाथापद श्रेयष्कर होता है, जिसे सुनकर (कोई व्यक्ति) शांत हो जाता है ।

धम्मपद, गाथा १०१

उस संध्या को बुद्ध ने भिक्खुओं को बताया कि एक लाख कल्प पूर्व, जब पद्मुत्तर बुद्ध ने एक भिक्खु को तात्कालिक बोध में अग्रणी घोषित किया था, तो बाहिय दारुचीरिय ने यह आकांक्षा की थी कि वह भी तात्कालिक बोध में सर्वोपरि हो ।

महासीव की कथा[४]

बुद्ध के जीवनकाल में अर्हत्व प्राप्त करने के लिए सबसे लंबा समय लेने वाले व्यक्ति महाशिव (पालि में, महासीव) थे । वे एक अत्यंत विद्वान भिक्खु थे जो भिक्खुओं की समस्याओं का सही समाधान करने में तथा भिक्खुओं के प्रश्नों का उत्तर देने में प्रसिद्ध थे । महासीव ने सहस्रों भिक्खुओं को प्रशिक्षित किया तथा उनके शिष्यों में से तीस हजार ने अर्हत्व प्राप्त किया था ।

एक दिन, उनके एक शिष्य ने जो अर्हत (पालि में, अरहत) हो गये थे, अपनी उपलब्धियों की समीक्षा की, जो इतनी महान थीं, तथा उसके बाद अपने आचार्य की उपलब्धियों की समीक्षा की । उन्होंने पाया कि उनके आचार्य अभी भी एक साधारण व्यक्ति थे तथा जागृति नहीं प्राप्त की थी । शिष्य ने अपने आप से पूछा कि क्या महासीव स्वयं पर निर्भर कर सकते हैं, अर्थात क्या उन्हें जागृति प्राप्त करने का आश्वासन मिल चुका है । उन्हें ज्ञात हुआ कि महासीव उस प्रकार के व्यक्ति नहीं थे । अपने अगले जन्म में उनका पुनर्जन्म निम्न लोकों समेत किसी भी लोक में हो सकता है । अत: उस शिष्य ने अपने आचार्य को एक संकेत देने का तथा उन्हें अंतिम मुक्ति के लिए प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करने का निर्णय लिया ।

शिष्य ने पारलौकिक शक्तियां विकसित की थीं, अत: वे वायुमार्ग से अपने आचार्य के पास पहुंचने में सक्षम थे । वे वहां नीचे उतरे जहां महासीव अपने दिन के कक्ष में थे । वे महासीव के निकट आये, उनका अभिनन्दन किया, तथा एक ओर बैठ गए । महासीव ने प्यार से उनका स्वागत किया । शिष्य ने सम्मानपूर्वक अपने आचार्य को संबोधित किया, 'भन्ते, मैं आप से कुछ सीखने आया हूं ।' किन्तु महासीव ने कहा, 'मैं तुम्हें साक्षात्कार नहीं दे सकूंगा । मेरे सभी समय का आवंटन हो गया है ।' अत: शिष्य ने महासीव के कार्क्रम के विषय में पूछना प्रारंभ किया, जिससे कि वह कहीं किसी खाली समय का पता लगा सके । 'वह समय कैसा रहेगा जब आप खड़े होकर विचार कर रहे हों कि आपको भिक्षा के लिये कहां जाना है?' उनक उत्तर था, 'वह समय तो पहले से ही दिया जा चुका है ।' शिष्य ने पूछना जारी रखा, 'वह समय कैसा रहेगा जब आप भिक्षा के लिए मार्ग पर हों?" उत्तर आया 'पहले से ही आवंटित ।' 'वह समय कैसा रहेगा जब आप अपना चीवर पहन रहे हों, या नगर से वापस आ रहे हों, या अपना भोजन कर रहे हों, या भोजन के बाद सफाई कर रहे हों?' किन्तु सब के सब ये समय उन छात्रों को पहले से ही आवंटित किये जा चुके थे, जो आचार्य से शिक्षा संबंधी बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते थे ।

महासीव ने कहा, 'देखो, ये भिक्षु दिन भर अनेक समस्याओं के साथ आते हैं । अब से लेकर कल ऊषा काल तक एक पल भी रिक्त नहीं है ।' किन्तु अरहत शिष्य डटे रहे । तो भोर के पश्चात,

जब वे अपने दांत साफ कर रहे हों, कैसा रहेगा? संभव नहीं । जब वे अपना मुख मण्डल धो रहे हों? प्रत्येक बार उत्तर था, 'नहीं' ।

तब शिष्य ने कहा, 'यदि आप इतने व्यस्त हैं, तो क्या आपको अपनी आंतिम श्वास लेने के लिए भी समय मिल पायेगा? आप तो एक कुर्सी की पीठ के समान हैं, जो दूसरों को सहारा तो देती है, किन्तु स्वयं को नहीं । क्या आप निश्चित रूप से कह सकते हैं कि आप का निम्न लोकों में पुनर्जन्म नहीं होगा? वास्तव में, मेरी स्वयं की कोई समस्या नहीं है जिसे मैं आपके सम्मुख प्रस्तुत करूं; मैं तो बस आपको एक स्मरण दिलाने आया था ।' तथा तब वे शिष्य एक उच्च मनोस्थिति में, अर्थात समाधि में, प्रवेश कर वायु के माध्यम से उड़ गये ।

महासीव को लगा कि उनके शिष्य का कथन सत्य है । बुद्ध ने कहा है कि जो भिक्खु शास्त्रों को तो जानता है तथा उनकी शिक्षा देता है, किन्तु उनके अभ्यास से उत्पन्न आनंद नहीं प्राप्त करता, वह एक ऐसे ग्वाले के समान है जो अन्य लोगों के मवेशियों की देखभाल तो करता है, परन्तु पशु के दूध का आनंद नहीं ले पाता । महासीव ने अपने मन में सोचा, 'किन्तु, यहां से जाने का यह उचित समय नहीं है । मैं अपनी आवश्यक वस्तुएँ ले कर कल प्रस्थान करूंगा ।' अत: उन्होंने अपनी आवश्यक वस्तुएँ एकत्रित कीं तथा रात भर शिक्षा देते रहे । भोर में, जब उन्होंने एक समूह के अंतिम छात्र को शिक्षा देनी समाप्त की, तब उसके बाद उन्होंने प्रस्थान किया ।

महासीव ने पहले दृढ़ प्रयास नहीं किया था क्योंकि वे सोचते थे, 'मैंने इन तमाम छात्रों को शिक्षित किया है जो अरहत हो गये हैं । मुझे वह पद प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगेगा । मैं यह दो-एक दिनों में ही कर लूंगा ।' अत: उन्होंने यह सोचते हुए कि वे अतिशीघ्र ही वापस आ जाएंगे, किसी को भी सूचित किये बिना, जैसा कि वे सामान्यतया करते, प्रस्थान कर दिया ।

महासीव एक गांव के निकट एक गुफा में गये तथा दिन भर विपस्सना का अभ्यास करते रहे, लेकिन उन्हें निब्बान नहीं प्राप्त हुआ । अत: वे लगे रहे । पूर्णिमा आ गयी, परन्तु अभी भी वे अरहत नहीं हुए । तब उन्होंने अपने मन में विचार किया, 'मैंने सोचा था कि मुझे यह पद दो या तीन दिन में प्राप्त हो जाएगा, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सका ।' अब तो तीन महीने की बर्षा ऋतु भी समाप्त हो चुकी है, किन्तु मैं वहां नहीं पहुंच पाया हूं ।' वे अत्यंत निराश थे कि वे भिक्खुओं के वर्षावास की समाप्ति के प्रतीक महा प्रवारणा (पालि में, महा पवारणा) समारोह पर भी वापस नहीं जा सके । अत: उन्होंने निर्णय लिया 'मैं लेटते हुए, बैठते हुए, खड़े होते हुए तथा चलते हुए अर्थात, चारों मुद्राओं में, साधना करता रहा हूं । तथापि मैं निब्बान प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो सका । अब से मैं लेटूंगा नहीं ।' तथा उन्होंने अपनी खाट दीवार के सहारे खड़ी कर

दी । फिर भी, वे प्रगति नहीं कर पाये थे । अत: उन्होंने तंय किया कि अपने प्रयास से समय न गंवाने के लिये अब वे स्नान या पांव प्रक्षालन में भी समय व्यर्थ नहीं करेंगे ।

किन्तु वर्ष बीतते गये, और महासीव अभी भी अरहत नहीं हुए थे । जब महा पवारणा समारोह का तीसवां अवसर आया तो अंत में वे बिखर पड़े और रोने सिसकने लगे । जब वे कुछ शांत हुए तो उन्होंने निकट में ही किसी और को रोते हुए सुना । 'कौन रो रहा है?' उन्होंने पूछा । उत्तर आया 'मैं इस वन का ईष्ट देव हूँ । मैं आपका अवलोकन करता रहा हूं एवं आप जो करते हैं उसका अनुकरण करता हूं, क्योंकि मैं भी जागृति प्राप्त करना चाहता हूं । मैंने सोचा कि आज आपने अपनी विधा परिवर्तित करने का निर्णय लिया है, अत: मुझे भी संभवत: अपनी तकनीक बदलनी चाहिए ।' जब महासीव ने यह सुना तो उनका गर्व चूर चूर हो गया तथा उन्हें अतीव लज्जा का अनुभव हुआ । सयाजी ऊ बा ख़ीं ने कहा है कि महासीव के भीतर अत्यधिक अभिमान था । महासीव ने सोचा था 'मैं निब्बान प्राप्त करूंगा । मैं कठिन परिश्रम करूंगा ।' उनके भीतर अत्यधिक 'अहं' था । वे इतने तनाव में थे कि वे समाधिस्थ नहीं हो पाते थे । सया जी ऊबा ख़ीं ने कहा है "जब प्रयास अत्यधिक हो जाता है, तब आप गर्वान्वित होते हैं तथा इस से मन भटकने लगता है । साधना करते समय इसका ध्यान रखें ।जकड़ कर मुट्ठी बांधने या दाँत पीसने की कोई आवश्यकता नहीं है । आप को उल्लासपूर्ण सरलता के साथ आगे बढ़ना चाहिए । आप को सजग एवं सतर्क होना चाहिये, किन्तु तनाव रहित भी ।'

अत: महासीव का गर्व उस देवता के कारण दूर हुआ । वे समझ गये कि वह उनका उपहास कर रहा था । उन्होंने सोचा कि एक वन देवता द्वारा ऐसी टिप्पणी करना उनके लिये एक शर्म की बात है, तथा तब उन्होंने संतुलित और सही प्रयास किया । उन्होंने चारगुनी विश्लेषणात्मक शक्तियों के साथ अर्हत्व प्राप्त किया । तब उन्होंने अपने कक्ष की सफाई करने का निर्णय लिया । उन्होंने अपने निवासस्थान में झाडू लगाया तथा पेय जल एवं स्नान के लिये जल से जलपात्रों को भरा, खाट नीचे उतारी और विश्राम किया । फिर उन्होंने अपने मन में सोचा, 'मैं एक लंबे समय से बिना पैर धोये रह रहा हूं । क्यों न मैं अपना पैर धो लूं?' उनके जो तीस हजार शिष्य अरहत थे वे सभी उनकी प्रगति पर दृष्टि रखे हुए थे । उस समय वे उनके चित्त का निरीक्षण कर रहे थे और उन्हें ज्ञात हो गया कि अब वे एक अरहत हो गये थे तथा वे अपने पैर धोने की तैयारी कर रहे थे । वायुमार्ग से वे सभी महासीव के स्थान पर पहुंचे । उन्होंने उनका अभिवादन किया तथा बोले, 'हम आपके पद प्रक्षालन के लिए आये हैं'

संदर्भ सूची

[1]*Buddhist Legends*, II 356-359.

[2]This term is translated either as referring to the Buddha's Doctrine or to phenomena (e.g., states, mental objects). Ledi Sayadaw (*The Requisites of Enlightenment*, p. 97; *The Manuals of Buddhsim*, p. 202) says this refers to mental factors associated with wisdom. He says, "Just as cotton seeds are milled, carded, etc., so as to produce cotton wool, the process of repeatedly viewing the five *khandas* with the function of vipassana-ñana is called *Dhamma-vicaya*." In the translation of the Majjhima-nikaya (*Middle Length Discourse of the Buddha*, BPS, 1995), Bhikkhu Bodhi translates this term by "investigation-of-states."

३. धम्मपद अट्ठकथा, ८. सहस्सवग्गो २. बाहियदारुचीरियत्थेरवत्थु

४. अंगुत्तर अट्ठकथा, १.एकक निपात, २. नीवरणप्पहान वग्गवण्णना

अष्टम दिवस, सायं प्रवचन

मार के दस सैनिक[१]

कामा ते पठमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति।

ततिया खुप्पिपासा ते, चतुत्थी तण्हा पवुच्चति॥ (४३८)

कामुक सुख तुम्हारी प्रथम सेना हैं; असंतोष तुम्हारी दूसरी कही जाती है; तुम्हारी तीसरी भूख तथा प्यास है; चौथी लालसा कही जाती है ।

''पञ्चमं थिनमिद्धं ते, छट्ठा भीरू पवुच्चति।

सत्तमी विचिकिच्छा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमो॥ (४३९)

आलस्य एवं अकर्मण्यता तुम्हारी पांचवीं; छठीं भय कही जाती है; तुम्हारी सातवीं शंका है; पाखंड तथा हठ तुम्हारी आठवीं है ।

''लाभो सिलोको सक्कारो, मिच्छालद्धो च यो यसो।

यो चत्तानं समुक्कंसे, परे च अवजानति॥ (४४०)

लाभ, यश, सम्मान, तथा जो कुछ भी प्रतिष्ठा मिथ्या रूप से प्राप्त की गयी हो, एवं जो भी स्वयं की स्तुति अन्य की अवमानना, दोनों करता हो;

''एसा नमुचि ते सेना, कण्हस्साभिप्पहारिनी।

न नं असूरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं॥ (४४१)

नमुचि, यही तुम्हारी सेना है; कण्ह की प्रहार शक्ति है । जो वीर नहीं है, वह इसे जीत नहीं पाता, किन्तु इस पर विजय प्राप्त करने के बाद अतीव सुख प्राप्त होता है. ...

''समन्ता धजिनिं दिस्वा, युत्तं मारं सवाहनं।

युद्धाय पच्चुग्गच्छामि, मा मं ठाना अचावयि॥ (४४४)

यं ते तं नप्पसहति, सेनं लोको सदेवको।

तं ते पञ्ञाय भेच्छामि, आमं पत्तंव अस्मना ॥ (४४५)

१

हाथी पर सवार मार तथा उसके चारों ओर व्यूह में रचित सेना को देखकर, मैं युद्ध में आगे बढ़ूंगा। देवताओं समेत समूची दुनिया जिसे पराजित नहीं कर सकती, तुम्हारी उस सेना को, पत्थर से कच्चे बर्तन को तोड़ने की तरह, विवेक से मैं विध्वंस कर दूंगा।

वसीकरित्वा सङ्कप्पं, सतिञ्च सूपतिट्ठितं।
रट्ठा रट्ठं विचरिस्सं, सावके विनयं पुथू॥ (४४६)

अपने विचारों को नियंत्रित कर तथा अपनी सति को अच्छी तरह स्थापित कर, मैं अनेक साम्राज्यों में विचरण करता हुआ शिष्यों को प्रशिक्षित करूंगा।

सुत्त निपात, (सुत्त पिटक/खुद्दक निकाय/सुत्त निपात/महावग्ग/पधान सुत्त) गाथा ४३६-४३९, ४४२-४४४

यंगॉन अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र में सयाजी ऊबा ख़ीं द्वारा प्रशिक्षित शिविरों में उनके दिये गये प्रवचनों के अंश इस प्रकार हैं :-

'जब आप विपस्सना लेते हैं, तो मुझे अत्यंत सावधान तथा सतर्क रहना पड़ता है। लोगों को धम्म प्रदान करने में मैं पक्षपात नहीं करता। धम्म शिक्षण के समय, मैं भी युद्ध में प्रवेश कर कठिन लड़ाई लड़ता हूं, तथा जब मुझे लगता है कि शरीर और मन में सच्चा अनिच्च जागृत है, तभी ध्यान अच्छा होता है।

मुझे आपको बार बार यह चेतावनी देनी है कि जब अनिच्चा अच्छी होती है तो विरोधी शक्तियां उत्पन्न होंगी। किन्तु, आप सफल होंगे।

मेरे शिक्षक और परोपकारी सया थेत जी को निम्नलिखित परिस्थितियों में काम करना पड़ता था :- जब वे धम्म देते थे तो लोगों को कुछ भी नहीं समझ में आता था। जब वे कहते थे, 'अपने सिर के शीर्ष पर ध्यान केन्द्रित करो,' तो लोगों को समझ में नहीं आता था कि वे अपने सिर के शीर्ष को कहां ढूंढें। उनका सब कुछ विलुप्त हो जाता था। जब उन्होंने आनापान दिया, तो कुछ लोगों को अपने नासिका रंध्र नहीं मिलते थे। तो, उन्हें अपने हाथ से अपनी नाक पकड़नी पड़ती थी तथा इस तरह से वे आनापान का अभ्यास करते थे। जब वे श्वास पर ध्यान देने का निर्देश देते, तो कुछ लोगों को इसका अनुभव ही नहीं होता था। तो उन्हें अपनी नाक के सामने रूई का फाहा या महीन कपड़ा रख कर उसकी गतिविधि के माध्यम से श्वसन का निरीक्षण करना पड़ता।

और तब पूरा सिर ही लुप्त हो जाता। वे शिकायत करते, 'सया थेत जी, हमें पता नहीं कि हमारा सिर कहां है!' तो सया थेत जी उनसे कहते कि यदि उन्हें सिर का पता नहीं चलता, तो वे दोनों हाथों से अपने सिर को पकड़ें। फिर कुछ समय के बाद, वे अपने शरीर को महसूस नहीं कर पाते। पूरा शरीर ही गायब हो जाता था।

इस तरह की बातें हमें यहाँ भी होती हुई मिलेंगी। जब आप अकेले बैठते हैं, तो आप स्तंभित हो जाते हैं, तथा आप को ऐसा अनुभव होता है कि आपका शरीर लुप्त हो गया है। आप शून्य से अर्थात प्रारंभ से ही सीधे निब्बाण इत्यादि पर निशाना लगा रहे हैं। ठीक है, यदि आप सोचते हैं कि आपका शरीर अब वहाँ नहीं है, तो बस अपने आप पर जरा प्रहार कीजिये। यह कठिन नहीं है। आप को आचार्य के पास आकर पूछने की आवश्यकता नहीं है। बस, अपने आप को चुटकी काटिये। आपका शरीर वहाँ है या नहीं?

ऐसी कठिनाइयां आती हैं। इन्हें विपल्लास या भ्रम कहा जाता है, तथा वे मन में एक पागलपन पैदा करने की कोशिश करती हैं। ये हानिकारक शक्तियां हैं जो आपके भीतर निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। लोग इन शक्तियों से जुड़े होते हैं तथा उनसे आसक्त हो जाते हैं। कोई भी ऐसा नहीं है जिसके भीतर ऐसी शक्तियां न हों। जब अनिच्च की जागरूकता उत्पन्न होती है, तो ये शक्तियां उसे शीघ्रातिशीघ्र निष्कासित करने का प्रयास करती हैं। शक्ति कहेगी, 'भागो अनिच्च, भागो!' किन्तु यदि अनिच्च गहराई तक उतर जाता है तो इन शक्तियों को निस्सन्देह भागना होगा। एक दिन, पो ठॉङग ध्यान के लिए नहीं आये, किन्तु अब वे ठीक हैं। जब ये शक्तियां बाहर निकलती हैं तो कुछ लोग चिल्लाने लगते हैं, कुछ लोग नहीं चिल्लाते। कुछ लोग तो वास्तव में उन्हें निकलते हुए देख भी सकते हैं।

अनिच्च बोध अतिविशिष्ट है, तथा निब्बाण का तत्व उसी में निहित है। अत: अनिच्च से अवगत हो जाइये। किन्तु तब मार आता है। मार के दस सैनिक हैं। बुद्ध ने पधान सुत्त में उनके विषय में बताया है। हमें मार के दस सैनिकों के विषय में पता होना चाहिए तथा हमें उनसे सतर्क रहना होगा। मार के दस सैनिक कौन हैं, जो आपकी साधना को रोकते हैं?

प्रथम है कामुक लालसा। यद्यपि यहां आप ध्यान लगाने के लिए आते हैं, किन्तु निब्बाण के लिए प्रयास करना दर किनार कर देते हैं, 'मैं सया जी ऊबा ख़ीं से मित्रता करूंगा। वे सभी

प्रभावशाली व्यक्तियों को जानते हैं। मैं उनसे कुछ सहायता मांगूंगा।' विद्यालयों की शिक्षा समाप्त होने पर तथा परीक्षाओं में सफल होने के पश्चात यदि आपको कोई अच्छी नौकरी मिल जाय तो अत्यंत उपयोगी होगा। अपने मन में इस उद्देश्य के साथ यहां आने वाले लोग भी हैं। उदाहरणस्वरूप, आप (श्रद्धेय महस्सी सयादा के ध्यान केन्द्र) थाथना एत्ता में यह सोच कर जाते हैं कि यदि आपकी प्रधानमंत्री के साथ मित्रता हो जाय, तो आप को एक आयात अनुज्ञा पत्र (इम्पोर्ट लाइसेंस) मिल सकेगा। इस तरह के लोग भी हैं। उनके ध्यान लगाने के पीछे उनकी प्रेरणा भौतिक लाभ प्राप्त करना है। भौतिक वस्तुओं के लिए इस प्रकार की आकांक्षा मार प्रेरित करता है। यदि इस प्रकार की इच्छा रहती है तो कोई समझ नहीं उभरेगी। मार हमारे लिये विघ्न उत्पन्न करता है, जिससे हम धम्म समझ न सकें। अत:, लालसा नहीं!

यही कारण है कि जब मैं आप को धम्म की शिक्षा देता हूं तो आपको कहना पड़ता है, '**निब्बानस्स सच्चिकरणत्थाय मे भन्ते ...**' :- निब्बान का अनुभव करने तथा मात्र उसी कारण मैं यहाँ आया हूँ .... और आप निब्बान का क्यों अनुभव करना चाहते हैं? वह छोटी सी गुलाबी पुस्तक कहती है कि जब हम मरेंगे तो हमारी अधोगति लगभग निश्चित है।

> 'भिक्खुओं, मृत्यु के पश्चात जिन लोगों का मनुष्य योनि में पुनर्जन्म होता है, वे इतने कम हैं, जैसे मेरी उंगली के नख पर रेत के कण। जो लोग निम्न लोकों में जाते हैं, वे पूरी पृथ्वी ग्रह में रेत के कणों की तरह असंख्य हैं। तथा इसका कारण क्या है? चार आर्य सत्यों को न जानना ही इसका कारण है।'

अत: यदि आप चार आर्य सत्य नहीं समझते, तो आप निश्चित रूप से अस्तित्व के अधो लोकों में जाने वाले हैं। मैं आप को धम्म की शिक्षा इसलिये दे रहा हूँ, जिससे कि आप चार आर्य सत्य समझें।

“सया जी ऊबा ख़ीं, मैं उन्हें नहीं समझना चाहता।' 'हम शनै: शनै: अग्रसर होना चाहते हैं, तथा यदि हम चार आर्य सत्य नहीं समझते, तो कोई बात नहीं।' यदि आपकी यही मनोवृत्ति है, तो मैं आपकी सहायता के लिए कुछ भी नहीं कर सकता। मैं तो दाता हूँ। मेरे लिये धम्म देना आसान नहीं है। जैसा कि मैंने कहा है, जब मैं आपको प्रशिक्षित करता हूं तो उसी समय मुझे मार से संघर्ष करना पड़ता है। संभवत:, समय समय पर मार मुझ पर क्रोधित हो जाता हो,

किन्तु इसमें कुछ भी नहीं किया जा सकता।

मार का दूसरा सैनिक असंतोष है, अर्थात एकाकी जीवन में आनंद न पाना। कल मैं वह कहानी पूरी नहीं कर सका। एक व्यक्ति ने केंद्र को छोड़ कर चले जाने के विषय में सोचना प्रारंभ किया। वह एक बड़े नाग की तरह था। अति प्रात: जब आप लोग ध्यान लगा रहे थे तो उसने अपना सारा सामान बांध लिया। जब सब लोग यहां अंदर ध्यान लगा रहे थे तभी वह यहां से भाग जाना चाहता था। वह योजना बना रहा था कि लगभग आठ बजे जब मैं साक्षात्कार करता हूं, उसी समय वह प्रस्थान करेगा। वह पहली बस को पकड़ कर यथासंभव अतिशीघ्र छोड़ने जा रहा था। अपना सामान वह बाद में लेने आता। पता नहीं क्यों उस दिन मैंने अन्य दिनों की अपेक्षा पहले ही अधिष्ठान (पालि में, अधिट्ठान) देने का निर्णय लिया। वह अधिट्ठान ध्यान में फँस गया। इससे वह बंध गया और छोड़ नहीं सका। किन्तु जैसे ही अधिट्ठान समाप्त हुआ, नाग जो मार का सहयोगी है, निकल गया। जब नाग ने उसे त्याग दिया, तो उसकी उसके बाद यहां से छोड़ कर जाने की इच्छा समाप्त हो गई। क्या वह व्यक्ति, पो ठॉङग, अब भी यहां से जाना चाहेगा?

'नहीं, वह ऐसा नहीं करेगा।

हाँ, यह अच्छी बात है। उसके जैसी एक और घटना हुई थी। वह मेरे घनिष्ठ शिष्यों में से एक के मित्र की पत्नी थी। वह, हेलन, यहाँ ध्यान लगाने के लिए आयी थी, किन्तु जब हम रात में सात बजे ध्यान लगाने के लिये बैठने गये, तो उसने शीघ्र ही अपना सारा सामान बांध लिया, और वह चुपके से अंधेरे की आड़ में निकलने ही वाली थी। मैं भाग्यशाली था। अब मैं नहीं जानता, वह भाग्यशाली थी या मैं था? मैंने कुछ सुना और मैंने पुकारा, 'वहां कौन है?'

उसके भीतर की शक्ति के छोड़ने के ठीक पहले वह वहाँ बैठी थी, तथा को श्वे बॉन की पत्नी यहां। वे एक दूसरे के सामने वाले कक्षों में बैठ कर ध्यान लगाती थीं। को श्वे बॉन की पत्नी अमादॉ एक शक्तिशाली जादू मण्डली की सदस्य थी। मे एक्खा नाम का एक असुर उस पर चढ़ता था, कभी कभी दो से तीन घंटे तक। अमादॉ से संबंधित समाज काफी बड़ा है। खैर, जब इनमें से कुछ शक्तियों को दूर किया गया तो उसका अनिच्च अच्छा हो गया। जब अनिच्च की जागरूकता प्रबल हुई तो उसके भीतर की दानवी इसे सहन नहीं कर सकी। जब वह दानवी

छोड़ने ही जा रही थी तो, अचानक उसकी बड़ी बड़ी चमकीली आंखें दिखाई दीं । ऐसा दूसरी कोषिका में बैठी हेलेन के साथ हुआ । हेलेन कभी बहुत स्वस्थ नहीं हुआ करती थी । वह दुबली पतली थी और उसे खाँसी में खून आता था । उसके भीतर भी एक शक्ति थी । तो, दोनों शक्तियां आपस में मिल गईं तथा हेलेन को एक उज्ज्वल प्रकाश पुञ्ज दिखाई दिया । वह चिल्लाई, 'आह ...।' मैंने उससे कहा 'आओ, आओ, मैं तुम्हारे भीतर की शक्ति को भागने के लिये मजबूर कर दूंगा ।' तथा वह शक्ति दूर चली गई । उसके बाद से उसे अब कोई औषधि नहीं लेनी पड़ती । उसने मेरी दवा के लिये मुझे एक पैसा भी नहीं दिया, किन्तु अब वह यहां से छोड़ कर जाना नहीं चाहती थी । शक्तियों की ऐसी ही प्रकृति होती है ।

उसके भीतर की शक्ति इस एकान्त स्थान में नहीं रहना चाहती थी; वह भीतर से प्रकट हुई तथा भागना चाही । ऐसी शक्तियां लोगों से कहती हैं, 'चलो चलें, चलो चलें, चलो चुपके से निकल चलें ।' और तब वह व्यक्ति यहां से जाना चाहता है ।

छोड़ना चाहने वालों में, एक लड़की थी जिसका नाम 'यू' था । उसके पिता के भीतर की शक्ति चाहती थी कि वह छोड़ कर चली जाय, और मैंने उसे जाने दिया । एक वही है जिसे मैंने वापस घर भेजा, क्योंकि उसने कहा कि वह अपने पिता के भीतर की शक्ति से अलग नहीं होना चाहती ।

उसके भीतर हिमालय की एक नागिन की बड़ी बलवान शक्ति थी । वह उस शक्ति को जाने नहीं देना चाहती थी । तो ठीक है, यदि आप उसे नहीं त्याग सकते तो मैं कुछ नहीं कर सकता । मैंने उससे कहा, 'किन्तु मृत्यु के पश्चात तुम्हारा जन्म नागिन का होगा ।' वह बोली, 'कोई बात नहीं ।' वह इससे संतुष्ट थी । खैर, जब वह प्रसन्न है तो ठीक ही है, है न? यह मार का दूसरा सैनिक है । इस नि:शब्द शांतिपूर्ण स्थान पर वह नहीं रहना चाहती थी क्योंकि यहां उसके भीतर की शक्तियां उसे व्याकुल बनाती थीं ।

जो भोजन यहां मिलता है उससे संतुष्ट न होना और भूख से तड़पना, मार के तीसरे सैनिक के काम का परिणाम है । 'मैं भूखा हूं, मुझे भूख लगी है ।' तो, क्या आप को भी भूख लगनी प्रारंभ हो गई है? मेरे पास आने वालों में से एक सा श्वे तै (स्वतंत्र बर्मा के पहले राष्ट्रपति) थे । उनका भोजन से लगाव इतना अधिक था कि वे खाद्य सामग्रियों से भरी देवदार की संदूकें लेकर

आये। उन्होंने मुझसे कहा, 'सयाजी, मैं (शाम को) बिना खाये नहीं रह सकता।' 'ठीक है, यदि भूख लगे तो खा सकते हैं, किन्तु पहले दो या तीन दिनों तक न खाने का प्रयास कर के देखिये।'

'और प्रातः उठते ही मैं कुछ पीना चाहता हूं।' मैंने कहा 'ठीक है, आप प्रातः कुछ पी सकते हैं।' मैं उनके लिए यह सरल बनाना चाहता था, किन्तु मैंने उनसे कहा कि आप भूख पर ध्यान न देने का प्रयास कीजिये। अतः इस प्रकार सांत्वना देने के बाद उन्होंने अपना शिविर प्रारंभ किया तथा मध्याह्न के पश्चात खाये बिना दसों दिन बिताया।

'म्यंमा एली' समाचार पत्र के ऊ तिन, जो कैबिनेट मंत्री तथा संसद के अध्यक्ष थे तथा बाद में जिन्होंने इन पदों को खो दिया, वे भी यहां आये थे। इस समय वे निर्वाचन आयुक्त हैं, हैं न? खैर, जब वे आये तो उन्होंने मुझसे कहा, 'तीन दिन तक (८ शिक्षापदों का पालन करने) के बाद मुझे चक्कर आने लगता है। जीवन भर मैं उपोसथ शिक्षापदों का ३ दिनों से अधिक पालन करने में कभी भी सक्षम नहीं रहा हूं। कृपया इस छोटी सी बात में मुझको छूट दे दीजिये।' मैंने कहा, 'इस मामले में मैं आपको अवश्य छूट दूंगा।' और इस के बाद वे ध्यान लगाने यहां आये। उन्होंने एक दिन ध्यान लगाया, फिर दूसरे दिन। उसके बाद वे स्वयं ही इसमें लीन हो गये। उन्हें भूख नहीं लगी।

जब व्यक्ति को धम्म प्राप्त हो जाता है तो उसे भूख नहीं लगती। यदि धम्म नहीं प्राप्त होता तो उसे भूख लगती है। यह जो भूख हमारे भीतर है उसके कारण हमें लगता है कि हम भूखे हैं, किन्तु यदि हम इस भूख पर नियंत्रण पा लें तब यह नहीं रह पायेगी। अचानक भूख उभरती है, भूख, भूख, और जब साधक धम्म का अनुभव करता है तब कोई भूख नहीं बचती।

तथा यहां ऊ तिन जी थे जिन्हें मैंने बर्मी मिष्ठान्न, मंग जा ग्वे दिया, जिसे आप जानते हैं कि खजूरी गुड़ से बनाया जाता है। प्रति दिन मैं उनके लिये मंग जा ग्वे खरीदता था। यह उन्हें पसंद लगने लगा तथा इसे खाकर उन्होंने आठ शिक्षापदों का पालन किया। जब दस दिन बीत गये, तो वे कुछ गोलमटोल एवं स्वस्थ हो गये थे। वे यहाँ वापस आये तथा उपोसथ शिक्षापदों का पालन किया एवं पुनः उन्हें भूख नहीं लगी।

खैर, इस संबंध में सबसे खराब प्रसंग ऊ ए मॉउंग का है, जो अब बर्मा रेलवे बोर्ड के विद्युत

विभाग के प्रबंधक हैं। मैंने ऐसे किसी व्यक्ति के विषय में कभी नहीं सुना है, जिसे सदैव भूख लगी रहती हो जैसे इस व्यक्ति को। उन्होंने मुझे बताया, 'सया जी, मुझे प्रत्येक घंटे में एक बार कुछ न कुछ खाना पड़ता है।' अरे, आप लोगों ने कभी ऐसी बात सुनी है? प्रत्येक घंटे में एक बार! रेलवे बोर्ड की गोष्ठी के अंतर्गत खाना बहुत अच्छी बात नहीं है, है न? तथा खाने के लिये गोष्ठी छोड़ कर जाना बहुत अच्छी बात नहीं है। जब ये गोष्ठियां होती थीं तो उन्हें अपने पास एक छोटे से कागज के थैले में खजूरी गुड़ के टुकड़े रखने पड़ते थे तथा वे चुपके से उन्हें चूसते और धीरे से निगल जाते थे। मानो या न मानो, उन्हें यह गोष्ठियों के समय भी करना पड़ता था। कभी कभी वे चिंतित होते थे कि उन्हें लकवा न लग जाय, क्योंकि कार्यालय में कोई खाद्य सामग्री नहीं थी। अत: उनकी पत्नी या कोई नौकर सारा दिन वहाँ बैठ कर सेवारत रहता था। वे इतने चिंतित थे।

अंत में वे यहाँ आये तथा मैंने उसी प्रकार उनको सांत्वना दी, और मैंने कहा, 'चलिये देखते हैं, देखिये आप क्या कर सकते हैं, प्रयास कीजिये।' अब उनको सदैव भूख नहीं लगती। तो यह कैसे हुआ? वे एक दिन ध्यान लगाते रहे तथा भूख, जो उनके लिये वर्षों से एक प्रकार की शारीरिक बीमारी थी, चली गयी। कहाँ गयी? यह असाधारण है। हाँ, इस प्रकार की बातें यहाँ होती हैं। वास्तव में हमारे भीतर यह मार है, तथा मार का सैनिक हमारे अंदर इन शक्तियों को पुन: सक्रिय करता है।

मार का चौथा सैनिक भोजन एवं पेय पदार्थों में विभिन्न प्रकार के स्वाद अनुभव करने की इच्छा है। कुछ समय से मुर्गी खाने को नहीं मिली है। मुझे लगता है, आप मांसाहार या थोड़ा कबाब खाना चाहेंगे। जैसे कि वे विदेशी जिनके लिये थाथना एत्ता में भीतर रह पाना कठिन हो गया था। उन्हें बाहर जाकर अपने लिये तले नूडल्स खरीदने पड़े।

ऐसी कुछ इच्छायें अप्रतिरोध्य हो जाती हैं। अत: मैं चाहता हूं कि यहाँ भोजन अच्छा बने। जब आप को आपका भोजन प्रस्तुत किया जाता है तो सयामा यह सुनिश्चित करने के लिये इतना प्रयास करती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति भोजन से संतुष्ट हो। क्या आपको अपने भोजन का आनंद मिलता है? क्या आपको मुर्गी की कमी खलती है, जो यहाँ नहीं दी जाती? तथापि, हम आपको सर्वोत्तम (शाकाहारी) भोजन देने का प्रयास करते हैं।

यदि आप विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन लेते हैं, तो क्या होता है? क्या विभिन्न स्वादों की इच्छा नहीं होगी, या फिर भी होगी? हम जो भोजन लेते हैं, उसे हमारी जिह्वा के संपर्क में आना पड़ता है। क्या हम इसके स्वाद का आनंद लिये बिना इसे खा सकते हैं? अरहतों के अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं कर सकता।

आप यहां अपनी इच्छाओं से पूरी तरह छुटकारा पाने के लिए आये हैं। आप अपने दोषों को त्याग रहे हैं जिससे कि इच्छायें कम हों। आप अशुद्धियों से छुटकारा पा रहे हैं।

जब आप अपनी आँखें बंद करते हैं तो शारीरिक स्वरूप की इच्छा नहीं उत्पन्न होती, होती है क्या? आप ध्वनियों की इच्छा को भी समाप्त कर सकते हैं। यहां कोई आकाशवाणी या रेडियो लेकर नहीं आता जिसमें 'मे शिन' तथा अन्य गायकों के गीत बज रहे हों। यदि आप चाहें तब भी वे यहां नहीं सुनाई देंगे। जहां तक सुगंध की इच्छा का प्रश्न है, यहाँ कोई भी इत्र तथा सुगंधियां धारण नहीं करता, अत: वह इच्छा भी नियंत्रित है। शारीरिक स्पर्श के लिए कोई अवसर नहीं है, अत: वह इच्छा भी समाप्त हो जाती है। किन्तु, क्या आप स्वाद से बच सकते हैं? यदि आप भोजन करना ही बंद कर दें, तो केवल तभी आप अपनी जिह्वा से स्वाद के अनुभव से बच सकते हैं। आप डॉक्टर बुला कर उनसे ग्लूकोज आदि की सूई लगवा सकते हैं। अन्यथा, अपने शरीर को ऊर्जा देने का एक ही उपाय भोजन है तथा वह है जिसे आपके मुख से होते हुए जिह्वा के ऊपर से गुजरना पड़ता है। यदि हम भोजन की स्वादिष्टता कुछ कम कर दें [किन्तु मांसाहार प्रस्तुत किये बिना] तो क्या तब उससे स्वादों की लालसा कम नहीं होती? यदि मैं सूअर के मांस के पकाये टुकड़े की बात करूं तो, आपके भीतर तुरंत इसकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। किन्तु हम यहां इस लालसा के, इस दोष के उन्मूलन के लिए आए हैं तथा आप बस ऐसा ही करने की प्रक्रिया में हैं। मुझे यहाँ पर नियंत्रण रखना पड़ता है, जिससे आप के भीतर यह लालसा प्रबल न होने पाये। यदि आप इतनी पूर्णता के साथ इन दूषणों को दूर करने का प्रयास करते हैं कि उनका पूरी तरह उन्मूलन हो जाय तो शेष प्रत्येक बात से आप को मुख मोड़ना पड़ेगा। मार आपकी आन्तरिक गहराई में भोजन की तृष्णा उत्पन्न कर रहा है।

हम यहाँ सायंकाल का भोजन नहीं प्रदान करते, इससे बहुत सुविधा होती है। आप देख सकते हैं कि वे किस प्रकार प्रतिदिन प्रात: भोजन पकाते हैं तथा रसोइयों को राहत का अनुभव

होता है कि उन्हें सायंकालीन भोजन नहीं बनाना है। आपके लिये भी यह श्रेयष्कर है, क्योंकि यदि आप रात में भोजन करते हैं, तो आप निश्चित रूप से निद्रालु हो जाएंगे। क्या आप (दोपहर के बाद) खाये बिना संतुष्ट नहीं हो सकते? निःसन्देह हो सकते हैं। यदि आप दिन में दो बार भोजन करते हैं, तो शरीर उस से संतुष्ट हो जाएगा।

यहाँ जो विदेशी महिला हैं वे नाश्ते में बहुत ही कम खाती हैं, बस कुछ फल और दूध। वे कभी अधिक नहीं खातीं, किन्तु वे संतुष्ट हैं। आज प्रातः मैंने उन्हें विपस्सना दी। वे तुरन्त पूरे शरीर में जा सकीं। उनकी गति तेज है किन्तु जब वे शरीर के निचले भाग में जाती हैं तो वहां अटक जाती हैं। तो आप जानते हैं क्यों? ऐसा इसलिये कि उन्हें पोलियो हुआ था। वे विकिरण से प्रभावित हैं। वे यह स्वयं नहीं जानतीं। वे नेवादा मरुस्थल के एक स्थान में रहती हैं। इस मरुस्थल में परमाणु विस्फोटकों का परीक्षण हुआ था। इसी कारण वे विकिरण से प्रभावित हुईं। मैं नहीं जानता कि वे रोयेंगी या नहीं। यदि वे रोयें तो क्या यह अच्छा लगेगा? जब वे निचले भाग में पहुंचीं तो उन्हें तुरंत इतना खराब लगा कि आप उनके चेहरे पर उनकी पीड़ा देख सकते थे। यहां की शुद्ध शक्तियां (अनिच्च) तथा उनके भीतर का विकिरण, दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं, वे टकराते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप किसी भट्ठी में ठंडा पानी डालें तो क्या होगा? क्या वह 'सूं...!' नहीं करता? जो पानी आपने डाला है क्या वह भट्ठी में रहेगा? क्या वह आग में रहेगा? नहीं, कैसे रह सकता है? दो बलवान विरोधी शक्तियां जब मिलती हैं, तो अंदर एक उथल - पुथल होती है।

मार का पांचवां सैनिक आप में उदासीनता, जड़ता तथा तंद्रा भर देता है। मैं इसे समझ सकता हूँ। इसने श्रद्धेय महा मोग्गल्लान को भी प्रभावित किया था। जब आप अपनी कोषिका में होते हैं, तो आप भी कभी कभी तंद्रिल अनुभव करते हैं। कुछ लोग तो बैठे बैठे सो जाते हैं।

जब मैंने ध्यान लगाना प्रारंभ किया था, तो मेरे साथ एक वृद्ध व्यक्ति आया करते थे। उनका नाम सया जां था। हर बार जब मैं वहां जाता था, तो उन्हें अपने साथ ले जाता था। वे एक फेरी वाले व्यापारी, बढ़ई थे। उन दिनों मैं जिस मकान में रहता था वह ठॉम्पसन स्ट्रीट में था तथा उसमें कुछ मरम्मत की आवश्यकता थी। मैंने उनसे उसमें कुछ छोटे छोटे काम करने के लिए कहा। वे मेरे घर आये, हमने एक साथ चाय पी तथा अंततः मित्रवत बन गये।

उन दिनों मैं पहले से ही ध्यान लगा रहा था। बहुत पहले की बात है, यह १९३७ था। जब मैं ध्यान लगाने गया तो वे मेरे साथ आये तथा हम सया थेत जी के केंद्र में ध्यान कक्ष में बैठे। वे पीछे बैठे। उन्होंने अपने आप को एक 'योगी चद्दर' में लपेट लिया और ध्यान लगाने लगे। कुछ समय बाद उन्हें ध्यान लगाते हुए भी नींद आ गई तथा उन्होंने खर्राटे भरने प्रारंभ किये। वे जोर जोर से खर्राटे भरने लगे। इस काम में वे बड़े माहिर थे, आप जानते हैं न, कि सभी लोग ऐसा नहीं कर सकते। यहां ध्यान लगाने वालों में भी कई लोग ऐसे हैं जो खर्राटे भी भरते हैं। यह 'थिन एवं मिद्ध', आलस्य तथा तंद्रा का प्रकोप है। क्या आप जानते हैं कि आलस्य एवं तंद्रा कब उत्पन्न होती है? इनसे पूरी तरह बचना असंभव है।

जब विपस्सना प्रबल होती है तो निब्बान धातु का उदय होता है। तब आप की भेंट उन बुरी शक्तियों से होगी जो आपके भीतर निष्क्रिय रही हैं। जब ये शक्तियां प्रकट होती हैं तो वे धूम्र का रूप लेती हैं तथा जब यह धुंध प्रबल होती है, तो आप तंद्रिल अनुभव करते हैं। आप ऊंघने लगते हैं। कोई बात नहीं। होने दीजिए। जब यह चला जाय तो फिर से तुरंत प्रारंभ कीजिये, तथा स्वेच्छा से, जानबूझकर श्वास लीजिये। आप ने अपनी समाधि खो दी है। यह एक प्रकार का आंतरिक पलायन है। जब आप इस प्रकार से पलायन करते हैं, तो आप की समाधि चली जाती है, अत: आप को अपने नासिका रंध्रों पर पुन: ध्यान केंद्रित करना है। पर्याप्त तीव्रता से श्वास लीजिये, और फिर स्वाभाविक श्वास पर वापस आ जाइए।

किसी किसी का अनिच्च अनुभव बहुत अच्छा हो जाता है तथा आप अनिच्च की अवधारणा को जिस प्रकार समझते हैं, वास्तव में उसी रूप में उसे आप अपने शरीर में पाते हैं। जब आप शरीर में उसे पाते हैं, तो आपकी समझ आपके मन की गहराई में स्थापित होने लगती है। जब आपका मन उज्ज्वल एवं प्रसन्न हो जाता है तो आप के भीतर की प्रबल शक्तियों में विस्फोट होता है। जब उनका विस्फोट और हंगामा होता है, तो अनिच्च लुप्त हो जाता है। आप लड़खड़ा जाते हैं, 'सयाजी, मुझे पता नहीं क्या हो गया।' कभी कभी आप अचानक इस प्रकार साहस खो देते हैं।

इस समस्या से निपटने के दो तरीके हैं। या तो आप मेरे द्वारा ऊपर बतायी गयी विधि से अपनी समाधि पुष्ट कीजिये, अथवा आप बाहर जाइए और अपने लिये कोई सीटी बजाइये तथा

थोड़ी देर आराम का आनन्द लीजिये । ऐसा कीजिये कि ये शक्तियां शांत हो जांय । आपके मन के भीतर की धूम्र और धुंध जब बैठ जाय तो फिर काम में लग जाइये । सोने मत चले जाइये । इस स्थिति से पूरी तरह निपटने के यही दो तरीके हैं । वास्तव में ये व्यावहारिक तथा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । ध्यान लगाने की साधना के साथ यह तंद्रा सदैव आती है ।

अच्छा, उस चित्र में मनुष्य लोक के नीचे क्या है? नरक, जानवरों का लोक, प्रेतलोक, एवं असुरलोक हैं । प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अकुसल कम्म हैं जिनके परिणामस्वरूप नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि या असुरयोनि में पुनर्जन्म होगा । यदि आप अब से अपने आप में इन अकुसल शक्तियों का अवलोकन करते रहें, तो वे समाप्त हो जाएंगी, तथा उसके बाद ही कुसल शक्तियां प्रकट होंगी । अकुसल कम्म की जो शक्तियां नरक में पुनर्जन्म की कारण हैं, वे नरक की अग्नि के समान गर्म होती हैं । यदि जानवरों की योनि में पुनर्जन्म कराने वाली शक्तियां प्रकट होती हैं, तो आप सुस्ती, भारीपन और मूर्खता का अनुभव करते हैं । कम्म की जो शक्तियां आपको प्रेत योनि में ले जाएंगी वे आपको भूखे भूत की तरह अनुभव कराती हैं । आप सोचते होंगे कि आप के साथ ऐसा नहीं होगा, किन्तु ऐसा हो सकता है । यह मत सोचिये कि ऐसा नहीं हो सकता ।

जिस समय अकुशल शक्ति आपको छोड़ कर जाती है, उस समय आप कठिनाइयों का सामना करेंगे । कठोरता तथा अकड़न प्रकट होने के साथ साथ आप के लिये वह एक कठिन समय होगा । प्रत्येक शक्ति का अपना स्वयं का स्वभाव होता है और तदनुसार वे प्रकट होती हैं । जब वह प्रकट होती है, तो उसे आप को अपने शरीर में अनिच्च के साथ जानना है, और वह दूर चली जाएगी । अनिच्च के बारे में केवल बात मत कीजिये । उदय और व्यय के विषय में बस वार्तालाप मत कीजिये । अनिच्च का वह वास्तविक ज्ञान होना चाहिये जो अनुभव के आधार पर भौतिक घटनाओं के उदय एवं विघटन को जानने से उत्पन्न होता है । इस प्रकार आप विजयी होंगे ।

मार के छठे सैनिक के कारण आप अकेले में नहीं रहना चाहते, भयभीत एवं आतंकित अनुभव करते हैं । कुछ लोग तो इस कक्ष में बैठने का भी साहस नहीं कर पाते । उन्हें वहाँ उस कमरे में स्थानान्तरित होना पड़ता है । कभी कभी वे अपने साथ होने के लिए किसी साथी की तलाश करते हैं । ऐसी बातें होती हैं । व्यक्ति अकारण भयभीत हो जाता है । यह भावना अंदर से

उभरती है ।

अकेले में डरने वालों में एक फिल्म अभिनेत्री विमिंता हैं, जिन्होंने 'द पर्पल प्लेन ' चलचित्र बनाया था । वे विंडरमेयर रोड पर एक विशाल घर में रहती हैं । उनके पति बो सेचा हैं ।

अपने मकान के पिछले भाग का अभिसंस्कार कर उसे और उत्कृष्ट बनाने के लिए उन्होंने लगभग एक लाख चैट खर्च किया था । बर्मा में कोई ऐसा नहीं है जिसके पास उनके जैसा प्रक्षालन गृह (बाथरूम) हो । वे अत्यंत आधुनिक हैं । उनका घर तो बहुत बड़ा है, किन्तु उस विशाल भवन में उन्हें अकेले रहने का साहस नहीं है । उनके साथ सदैव कोई न कोई होना चाहिये । अंततोगत्वा वे यहां ध्यान लगाने आयीं, किन्तु साथ में अपना नौकर भी ले आयीं । यहां तक कि नौकर को इस कमरे में यहां प्रतीक्षा करने के लिए भी ले आयीं । उन्होंने कहा, 'सया जी, मुझे प्रकाश में ध्यान लगाने की अनुमति दीजिये ।' अत: उनके लिये मुझे कमरे को प्रकाशित रखना पड़ा, किन्तु तब किसी को उनके ठीक पीछे बैठना पड़ता था । ध्यान लगाते समय कभी कभी भयभीत हो जाना समझ में आता है, किन्तु यह अभिनेत्री तो शौचालय जाते समय शौचालय का द्वार भी अधखुला छोड़ कर रखती थी । किसी को द्वार के निकट बैठ कर प्रतीक्षा करनी पड़ती थी ।

यह बहुत कठिन था । वह सदैव भयभीत रहती थी । सदैव । वह अकेले नहीं रह पाती थी । जब अकेली पड़ जाती, तो विचित्र हो जाती थी । भय उसके भीतर व्याप्त हो जाती तथा वह सिहर उठती ।

जब वह यहां ध्यान लगाने के लिए आयी तथा मैंने उसे धम्म दिया, तो मुझे उसे वहाँ का वह कमरा देना पड़ा । जो अधिकाधिक सामान वह अपने घर से अपने साथ लायी थी, उसके लिये उसे एक ठेले (ट्रॉली) की आवश्यकता पड़ी थी । वह एक मेज और अनेक प्रकार की वस्तुएं तथा एक परिचारिका भी साथ लायी । दूसरे शिविर में कुछ कम वस्तुएं ले आयी । फिर वह तीसरी बार आयी और उस छोटी सी कोषिका में रुकी । इतना ही नहीं कि वह छोटे से कमरे में रुकी, अपितु उसे किसी परिचारिका की भी आवश्यकता नहीं पड़ी । वह उस अंधेरी कोषिका में अकेली रुकी थी । बाद में वह प्रतिदिन सायं केन्द्र पर आने लगी । प्रति माह बिना नागा किये, वह दस दिवसीय शिविर में आयी । उसे इस ध्यान से बहुत लाभ हुआ । मुझे लगता है कि अब

वह इंग्लैंड में है। खैर, भयभीत होने में वह प्रथम थी। किन्तु मेरे पास आने के बाद वह इस भय से मुक्त हो गयी। है न यह अच्छा?

मार का सातवां सैनिक संदेह है। 'क्या मुझे धम्म मिल पायेगा या नहीं?' मुझे लगता है कि प्रत्येक व्यक्ति में इस प्रकार का संशय होता है। 'क्या मुझे इस साधना से कुछ प्राप्त होगा?' वहाँ पर वह लड़की हँस रही है। नि:सन्देह आपको कुछ प्राप्त होगा। यद्यपि आपको कुछ प्राप्त हो जाता है, किन्तु कुछ समय बाद आप जागृति के मग्ग एवं फल पदों को भी प्राप्त कर लेना चाहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो आप को यहां बहुत सस्ते में यह सब मिल सकता है। आप समूचे बर्मा में ढूंढ सकते हैं; वेबू सयादॉ से पूछिये कि इस देश में कितनों को यह उपलब्ध हुआ है। जब आप यहां आते हैं, तो आप प्रारंभ करने के पहले ही उसे प्राप्त कर लेना चाहते हैं। ऐं? हा, हा। ठीक है, यदि आप सीधे ड्रॉप करना अर्थात निब्बाण ही प्राप्त कर लेना चाहते हैं, तो मुझे लगता है कि मुझे आपको ऐसे साधना केन्द्रों में भेज देना चाहिए, जहां बड़ी सरलता से ऐसा कराया जाता है। जाइए आप वहीं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि अकुशल शक्तियां, संदेह तथा दूषण आप में निष्क्रिय रूप में विद्यमान हैं। आपको इन शक्तियों का सफाया कर अपने आप को निर्मल बनाना होगा। यही महत्वपूर्ण है।

मार का आठवां सैनिक गर्व तथा अहंकार है। जब आप को धम्म के विषय में थोड़ी अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है, तो आपको गर्व होता है। आप को अपने शरीर के अंदर धम्म मिल गया, है न? तथा उसका एहसास आप में बढ़ता जाता है। जब आप कुछ शक्तियों से अपने आप को शुद्ध कर लेते हैं, तो सोचते हैं, 'हा, मैं ठीक हूँ!" तथा आप में गर्व उत्पन्न होता है। आप वहाँ देखते हैं और सोचते हैं, 'हा, वह व्यक्ति अभी ठीक से समझ नहीं पाया है, मैं उसकी कुछ सहायता करूंगा।' कभी कभी ऐसा होता है। मैं अनुभव के बल पर बोल रहा हूँ। कुछ समय पहले जब मैं यहाँ ध्यान लगाता था तो डॉली के पिता ऊ मॉङग जी तथा सहायक डाक आयुक्त, ऊ तिन यहाँ थे। यह बहुत पहले, १९५३ की बात है। तथा प्रसिद्ध फुटबाल खिलाड़ी ऊ ला मॉङग और ऊ सं न्युं भी थे, जो अब एक मंत्री हैं। अत: कई महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध लोगों ने यहां साधना की है। और हाँ, उन्होंने वास्तव में वीर्य अर्थात प्रयास या पुरुषार्थ की स्थापना कर ध्यान साधना

की ।

ऊ ला मॉङग के पिता जर्मन थे और ऊ ला मौंग बड़े बलवान एवं उग्र थे । किन्तु फिर भी, वे ध्यान लगाते थे तथा उनकी धम्म में प्रगति अच्छी थी । कभी कभी जब वे ध्यान लगाते अथवा अपनी कोषिका में लेटे होते थे तो उन्हें अपने शरीर से नीली किरणें निकलती दिखाई देती थीं । ऊ मौंग जी ने शांति और लगन से काम किया तथा बड़ी अच्छी समाधि विकसित की, एवं ऊ सैन नियन्त ने भी अच्छा प्रयास किया । ऊ ला मौंग अचानक और तीव्रता से विकसित हुए । इस धम्म कक्ष का अस्तित्व उस समय तक नहीं था । वहाँ पर एक छोटी सी पुरानी झोपड़ी थी । हमने जब यह जमीन खरीदी थी तब वह वहाँ पहले से ही थी । एक दिन प्रात: हम वहां बैठ कर वार्तालाप कर रहे थे जब ऊ ला मॉङग अपनी ध्यान कोषिका से बाहर निकले । उन्होंने कहा, 'सया जी, देखिये' तथा उन्होंने अपनी लुंगी ऊपर अपनी जांघों तक उठायी । वहां उनकी जांघों से लेकर नीचे पिण्डलियों तक बड़े बड़े सूजे हुए पिण्ड थे । आंतरिक शक्तियां उछल रही थीं । उन्होंने कहा, 'सयाजी, देखिये! देखिये! ये आंतरिक शक्तियां कितनी ऊग्रता के साथ बाहर आयी हैं । देख रहे हैं?' उन्होंने अन्य साधकों को बताया, 'आप को भी मेरी तरह कड़ा परिश्रम करना होगा!'

इसी कारण मैं आपको चेतावनी दे रहा हूँ । आप को चारों ओर जाकर धम्म के बारे में बात नहीं करनी चाहिए । यदि आप के प्रश्न हैं, तो मुझसे पूछिये । यदि आप किसी विषय पर चर्चा करना चाहते हैं, तो मेरे पास आइए । यदि आप जाकर अपनी उपलब्धियों के विषय में दूसरों से बात करते हैं, तो उसमें सदैव गर्व, अत: अहंकार समाहित होगा । तो, उस व्यक्ति ने सोचा कि वह बहुत अच्छा हो गया था और दूसरों को उसकी सहायता की आवश्कता थी । अभी तक वास्तविक अर्हत अधिक नहीं हैं ।

ऊ ला मॉङग के पिता जर्मन थे तथा उस पक्ष से उनकी वंशागति या विरासत काफी कठिन थी । वे एक बहुत अच्छे फुटबॉल खिलाड़ी थे तथा उनके भीतर क्रोध की शक्ति अत्यंत प्रबल थी । फुटबॉल खेलते समय, अपने विरोधियों के प्रति उनकी प्रवृत्ति उन्हें गिराने, लात मारने, तथा उनकी हड्डियां तोड़ने की थी । क्रोध की यह शक्ति अब बाहर आ रही थी तथा जब वे ध्यान लगा रहे थे तो उनके शरीर पर प्रकट हो रही थी ।

ऊ मॉङग एक शांत प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । उन्होंने उससे कहा, 'ठीक है, ऊ ला मॉङग , मैं

सहज भाव से कर रहा हूं ।' मैंने उससे कहा, 'यह तो उस खरगोश और कछुए की कहानी की तरह है । तुम खरगोश की तरह अपने आप को बहुत तीव्र समझते हो । किन्तु कछुआ धीरे धीरे तथा स्थिरतापूर्वक पकड़ लेगा ।'

अगले दिन ऊ ला मॉङग का अनिच्च अनुभव समाप्त हो गया । वह लुप्त हो गया और उसे पता नहीं कि वह कहां ढूंढे । वह मुझसे कहने लगा, 'सया जी, मेरी सहायता कीजिये !' तो देखिये, ऊ मॉङग जी ने धीरे धीरे तथा स्थिरतापूर्वक काम किया और वे एक बहुत अच्छे स्तर तक पंहुचे । ऊ सं न्युं भी अच्छा कर रहे थे ।

मैं इन लोगों के बारे में आपको इसलिये बता रहा हूँ कि आप शक्तियों के स्वभाव के विषय में समझें । देखिये, ऐसी चीजें होती हैं । जब धम्म आप में परिपक्व होने लगे तब आप नम्र बन कर रहें । एक शांत और शालीन जीवन जीने के साथ अपनी स्वयं की साधना जारी रखें ।

मार का नौवां सैनिक प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि है । जब कोई आचार्य प्रसिद्ध हो जाता है तो उसे उपहार प्राप्त होने लगते हैं । मुझको भी काफी सम्मान तथा उपहार आदि मिलता है । मुझे इसे बहुत सीमित करना पड़ा, जिससे मुझमें गर्व न उत्पन्न हो । अच्छा, बताइए कि यहां हमारी उपलब्धियां तथा ज्ञान क्या गर्व के विषय नहीं हैं? किन्तु व्यक्ति को अपने आप पर नियंत्रण तथा गर्व का दमन करना चाहिये । जब मैंने प्रशिक्षण देना प्रारंभ किया था, तो केवल कुछ ही लोग यहां आये जो मेरे कार्यालय से सीधे संबद्ध थे । यह केंद्र कार्यालय के कर्मचारियों को उनके अवकाश के समय यहां ध्यान लगाने के लिए निर्मित किया गया था । इसको प्रारंभ करने के लिये, पहले मैंने पैसे के बारे में नहीं सोचा, किन्तु पहले धम्म दिया । कार्यालय के कर्मचारियों में से जिसने जिसने दस दिनों तक ध्यान साधना की वह हमारे संघ का सदस्य बन गया । प्रवेश शुल्क दस दिनों का ध्यान है । ऐसा अच्छा है न? प्रवेश पाने के लिए आपको एक भी पैसा देने की आवश्यकता नहीं है । बस नियमित रूप से ध्यान लगायें और अपना धम्म सुरक्षित रखें । अपने धम्म को पुन: क्षीण न होने दें । इसी प्रकार इस केंद्र की स्थापना की गई थी । आप पैसे मुद्रित नहीं कर सकते, किन्तु आप धम्म का अभ्यास कर सकते हैं । मैं इसी में विश्वास करता हूं । अत: इसी कारण, मेरे स्वयं के पास कोई पैसा नहीं है । यहां कोई भी समृद्ध नहीं है । आहा! यह ऊ बा ख़ीं साधना केंद्र कहलाता है, तब तो ऊ बा ख़ीं को अत्यंत गर्वित व्यक्ति होना चाहिए! खैर, मैं

आचार्य हूं, इसका स्वामी नहीं। यदि महालेखाकार कार्यालय का विपस्सना संघ मुझे निष्कासित कर देता है, तो मुझे यहां से जाना पड़ेगा। अब आप समझ सकते हैं कि मैं इस केंद्र का स्वामी नहीं हूं। वर्ष में एक बार मुझे इस पद का त्याग करना पड़ता है। यदि वे मुझे पुन: निर्वाचित करते हैं तो मैं पद संभालता हूं। यदि वे किसी अन्य को मुझ से श्रेयष्कर पाते हैं तथा उसे निर्वाचित करते हैं तो भी मेरे लिये अच्छी बात है। यदि समिति में कोई ऐसा है जो मुझे पसंद नहीं करता और कहता हैं, 'सया जी बहुत ज्यादा बातें करते हैं, बहुत ज्यादा चीखते हैं। हमें कोई और चाहिये,' तो मुझे जाना ही होगा। आखिरकार, यह मेरा नहीं है। तथा मैंने यह प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया था। मैं अमरीका या किसी अन्य स्थान पर भी जा सकता हूं तथा वहां धम्म की शिक्षा दे सकता हूं।

भौतिक लाभ के लिए शुद्ध धम्म के साथ अनुचित धम्म का मिश्रण करना मार का दसवां सैनिक है। जब धम्म की शिक्षा देने के कारण किसी आचार्य को उपहारों के माध्यम से भौतिक लाभ होता है, तब इस प्रकार का खतरा उत्पन्न होता है। अनुचित धम्म के माध्यम से लाभभोग होता है। वह स्वयं की प्रशंसा तथा दूसरों के विषय में निन्दा व्यक्त करते हुए वार्ता करता है। एक दिन एक विदेशी महिला मेरे पास आयी तथा उसने दूसरों के विषय में बातें करना शुरू कर दिया। मैंने उसे तुरंत चुप कराया। वे हमारे बारे में कुछ भी कह सकते हैं, किन्तु हम दूसरों के बारे में बात नहीं करते।

भेंट एवं उपहार मिलना प्रारंभ होने के पश्चात कुछ लोग शुद्ध तथा असली धम्म की शिक्षा जारी नहीं रख पाते। अनेक शिष्य पाने के लिये तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिये वे मिथ्या धम्म का उपदेश एवं प्रशिक्षण प्रारंभ कर देते हैं, जिसे बुद्ध ने नहीं दिया था। यह भौतिक लाभ के लिए लोभ के कारण होता है।

इन दस संकटों को याद रखें, जिन्हें हम मार के दस सैनिक कहते हैं। मार के दस सैनिकों की उत्पत्ति कैसे हुई? वे मार से निकलते हैं। मार विद्यमान है। प्रातिमोक्ष (पालि में पातिमोक्ख) में बुद्ध ने कहा है कि मार विद्यमान है और हम उन पर विश्वास करते हैं। अत: यहां इस केंद्र में भी एक नकारात्मक विघ्नकारी शक्ति है। यही कारण है कि हम उच्चार करते हैं, '**इमाहं भंते अत्तभावं जीवितं भगवतो परिच्छा जामि। भंते** (श्रद्धेय) **इमाहं** (यह मैं) **अत्तभावं** (शरीर)

जीवितं (तथा जीवन) **भगवतो** (बुद्ध को) **परिच्छा जामि** (समर्पित करता हूं)।**भंते** (श्रद्धेय) **इमाहं** (यह मैं) **अत्तभावं** (शरीर) **जीवितं** (तथा जीवन) **अचरियस्स** (आचार्य को) **परिच्छा जामि** (समर्पित करता हूं) ।'

आप को स्वयं को बुद्ध को समर्पित करना पड़ता है तथा उसी प्रकार अपने आप को आचार्य को सौंपना पड़ता है। यदि आप ऐसा करते हैं, तो आचार्य आपका स्वामी हो जाता है। यदि आप पूर्णरूप से स्वयं को आचार्य को समर्पित करते हैं तो आचार्य द्वारा दिया गया संरक्षण और अधिक प्रभावशाली होता है। ऐसे व्यक्ति को आचार्य कैसे संरक्षण प्रदान कर सकता है, जो उनका शिष्य होने के लिए बहुत उत्सुक न हो ?

संरक्षण देने का यहां यह अर्थ नहीं है कि आचार्य आपकी रक्षा के लिए आप को अपनी एक बड़ी बाहु से घेर लेते हैं। संरक्षण उन आर्य देवताओं से प्राप्त होता है जिनकी पारमी मेरे साथ मेरे दृढ़ संकल्प के माध्यम से विकसित हुई हैं तथा विकसित हो रही हैं। ये देवता जानते हैं कि कब कौन बेमन से साधना कर रहा है तब वे उसकी सहायता नहीं करते।

संदर्भ

[1]This talk is based on informal talks given by Sayagyi U Ba Khin during his ten-day courses at IMC-Yangon in the early 1960 is. The talks were transcribed from tape and then translated into English. The original talk was first published in the Vipassana Newsletter, Vol. 9, no. 4 (Nov. 1992).

[2]Based on K.R. Norman’s translation in *The Group of Discourses.*

नवम दिवस, प्रात: प्रवचन

समुचित श्रद्धा, समुचित संरक्षण, समुचित समाधि

अत्तदत्थं परत्थेन, बहुनापि न हापये ।

अत्तदत्थमभिञ्ञाय, सदत्थपसुतो सिया ।।

किसी व्यक्ति को दूसरे के कल्याण के लिये, चाहे वह कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो, अपने कल्याण की अनदेखी नहीं करनी चाहिये । अपना कल्याण कैसे होगा यह समझ कर उसके लिये उद्यमशील रहना चाहिये ।

धम्मपद, गाथा १६६

अत्तदत्थ की कथा[१]

यह गाथा बुद्ध द्वारा भिक्खु अत्तदर्थ (पालि में, अत्तदत्थ) के संबंध में दी गयी थी जिनके नाम का अर्थ 'स्वयं की भलाई' या स्वयं का कल्याण' है । अपने जीवन के अंत में बुद्ध ने भिक्खुओं को सूचित किया कि वे तीन महीनों में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे । सात सौ भिक्खु जो अभी तक पूरी तरह जागृत नहीं हो पाये थे, वे गंभीर रूप से विचलित हो गये । वे बुद्ध के समीप रुके तथा एक दूसरे से फुसफुसाए, 'अब हमारा क्या होगा?'

किन्तु अत्तदत्थ ने अपने मन में सोचा, 'मैं अभी तक आवेगों से मुक्त नहीं हो सका हूँ । मैं बुद्ध के जीवन काल में ही अर्हत्व प्राप्त करने के लिये अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रयास करूंगा ।' अन्य भिक्खुओं ने देखा कि अत्तदत्थ अब उनके संग नहीं होते, तो उनसे पूछा, 'आप हमारे साथ होने से क्यों कतराते हैं, तथा हमसे बात चीत नहीं करते?' और वे उन्हें बुद्ध के पास ले गये तथा सारी बात उनके सामने रखीं । बुद्ध ने अत्तदत्थ से पूछा कि वे इस प्रकार का व्यवहार क्यों कर रहे थे । जब अत्तदत्थ ने समझाया तो बुद्ध ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा, 'भिक्खुओं, जो भी सचमुच में मुझे प्यार करता है, उसे थेर अत्तदत्थ की तरह होना चाहिए । केवल वही जो उच्च और निम्न धम्मों का पालन करता है, वही मेरा आदर करता है, अपितु वह जो इत्र एवं हार से मेरा सम्मान करता है । आप को थेर अत्तदत्थ के उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए ।'

जब सयाजी ऊ बा ख़िन जीवित थे तो उनके घनिष्ठ शिष्य, वर्षावास के पूर्व एवं पश्चात तथा

अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर, जैसे उनके जन्मदिन पर उनकी वंदना के लिए जाया करते थे। तथा वे अपने साथ उनके लिये विभिन्न भेंट ले जाते थे। सयाजी ऊ बा ख़ीं को अत्तदत्थ की कथा कहना अच्छा लगता था तथा वे इंगित करते थे कि शिक्षण का अभ्यास करना वंदना करने का सबसे अच्छा तरीका था। वे कहते थे, 'मैं केवल अधिष्ठान (पालि में अधिट्ठान) के साथ एक घंटे बैठ कर ध्यान लगाने के संकल्प की ही प्रशंसा करता हूं।' अत: उनके घनिष्ठ शिष्य एक घंटे उनके साथ बैठ कर ध्यान लगाते, और केवल तभी वे अपना आशीर्वाद देते।

तित्तिर जातक[२]

तथापि, यह कहना उचित नहीं है कि आचार्यों एवं बड़ों के प्रति समुचित सम्मान अनावश्यक है। यदि हम सही ढंग से धम्म का अभ्यास कर रहे हैं, तो हमारे मन में स्वाभाविक रूप से अपने आचार्यों एवं ज्येष्ठों के प्रति सम्मान होगा तथा हम उनकी सलाह का अनुसरण करेंगे। जातक, अर्थात बुद्ध के अतीत के जन्मों की कथाओं में एक ऐसी कथा है, जो इस बात को दर्शाती है। तित्तिर जातक (सं० ३७) के संबंध में बुद्ध द्वारा दी गई गाथा इस प्रकार है:-

''ये वुड्ढमपचायन्ति, नरा धम्मस्स कोविदा।
दिट्ठे धम्मे च पासंसा, सम्पराये च सुग्गती''ति॥

वे जो आयु का आदर करते हैं, सत्य में निपुण होते हैं। उनकी इस जीवन में प्रशंसा होती है तथा वे भविष्य के लिये आनंद अर्जित करते हैं।।

[जा॰ १.१.३७]

बुद्ध ने यह प्रवचन अपने सर्वप्रमुख शिष्य सारिपुत्र की अध्यक्षता वाले भिक्खु समुदाय को दिया था। यह उस समय की बात है जब बुद्ध वैशाली में निवास के पश्चात कई चरणों में श्रावस्ती की ओर जा रहे थे। तब कोई छह के विशेष अनुयायियों (सबग्गी) का एक दल बुद्ध की अध्यक्षता वाले भिक्खु समुदाय के पहुंचने के पहले ही वहां पहुंच गया। और 'यह हमारे उपाध्याय के लिए, यह हमारे आचार्य के लिए, तथा यह हमारे लिए होगा' यह कहते हुए, उन्होंने आवास तथा शयनासन ले लिया।

बाद में जब आदरणीय सारिपुत्र वहां पहुंचे, तो उन्होंने पाया कि सभी आवास एवं शयनासन पहले ही ले लिये गये थे। चूंकि उनके अनुयायी उनके लिए कोई शयनासन नहीं प्राप्त कर सके, उन्होंने बुद्ध के आवास के समीप एक वृक्षमूल पर ही रात बिताई। बुद्ध भोर में ही जग गये, तथा वे बाहर आये और खांसे। आदरणीय सारिपुत्र ने भी खांसा। बुद्ध ने पूछा, 'कौन है

वहाँ?' उत्तर आया, 'भगवान, यह मैं हूं, सारिपुत्त।'

बुद्ध ने पूछा, 'यहां क्यों बैठे हैं सारिपुत्त?' तब सारिपुत्र ने बताया कि क्या हुआ था। अत: बुद्ध ने भिक्खुओं को एकत्रित किया तथा पूछा कि जो उन्होंने सुना, क्या वह सत्य था, और उन्होंने इसकी पुष्टि की। तो उन्होंने फटकार लगाते हुए कहा, 'भिक्खुओं, इससे श्रद्धाविहीन व्यक्तियों में श्रद्धा नहीं जागती या श्रद्धावान की श्रद्धा में वृद्धि नहीं होती; अपितु इससे श्रद्धाविहीन व्यक्तियों में उनकी श्रद्धा के अभाव की पुष्टि होती है तथा कुछ श्रद्धालुओं की हानि होती है।'

अनुशासन तथा धम्मोपदेश देने के बाद उन्होंने भिक्खुओं को पुन: संबोधित किया, 'भिक्खुओं, सर्वोत्तम आसन, सर्वोत्तम जल तथा सर्वोत्तम पिण्डपात के योग्य कौन होता है?' कुछ भिक्खुओं ने कहा कि वह जो एक योद्धा कुलीन परिवार से हो। दूसरों ने कहा कि वह जो किसी ब्राह्मण परिवार से हो, या वह जो किसी गृहस्थ परिवार से हो। अन्य ने कहा कि वह जो अभिधम्म में निपुण हो। और दूसरों ने कहा कि उसे समाधि पदों को प्राप्त करने वाला, या स्रोतापन्न, या सकृदागामी, या अनागामी, या अर्हत होना चाहिये।

सभी भिक्खुओं के मत प्रस्तुत करने के बाद, बुद्ध ने कहा कि इनमें से कुछ भी विचारणीय नहीं होना चाहिये। उन्होंने कहा कि मात्र वरिष्ठता द्वारा ही यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि किसे आदर एवं सर्वोत्तम आवास, जल, एवं भोजन का आनंद प्राप्त होना चाहिए। यह विधान बुद्ध द्वारा निर्धारित किया गया था, तथा आज भी संघ द्वारा सम्मानित है।

अपनी बात को स्पष्ट करने के लिये, बुद्ध ने बताया कि उनके प्रमुख शिष्यों में से एक, सारिपुत्त, जिन्होंने धम्म का लघु चक्र प्रवर्तित किया था, तथा जिनका आवास बुद्ध के आवास के समीप होना चाहिये था, उन्होंने बिना आवास के रात बिताई। तथा बुद्ध ने कहा कि अतीत के दिनों में जानवर भी ऐसे अनादर प्रदर्शन की तुलना में श्रेयस्कर व्यवहार करना जानते थे। एवं उन्होंने तीन मित्रों की कथा सुनाई।

हिमालय में एक विशाल निग्रोध या वटवृक्ष था जिसके नीचे तीन मित्र रहते थे। एक तीतर, एक बंदर, तथा एक हाथी। वे प्राय: अशिष्ट तथा अनादरपूर्ण थे, तथा एक दूसरे का विचार किए बिना रह रहे थे।

तब उन्होंने सोचा, 'यदि हम केवल इस बात का पता लगा लें कि हममें से कौन सबसे अधिक आयु का है तो हम उसका सम्मान, उसकी वंदना एवं पूजा कर सकते हैं, तथा उसकी सलाह का पालन कर सकते हैं।' अत: तीतर और बंदर ने हाथी से पूछा 'तुम्हें अतीत में कब तक

की बात याद है?' हाथी ने उत्तर दिया, 'जब मैं एक बछड़ा था, तो मैं इस वटवृक्ष के ऊपर से चला जाता था और इसकी शीर्षस्थ शाखा मेरे उदर को खरोंचती थी ।'

तब तीतर और हाथी ने बंदर से पूछा, 'तुम्हें क्या याद है?' बंदर ने उत्तर दिया, 'जब मैं एक बच्चा था, तो मैं भूमि पर बैठ कर इस वटवृक्ष की शीर्षस्थ टहनियों को कुतरता था '

अंत में, बंदर और हाथी ने तीतर से पूछा, 'तुम को कहां तक याद है?' तथा तीतर ने कहा, 'अमुक स्थान पर एक विशाल वटवृक्ष था । मैंने उसका एक बीज खाकर उसे इसी स्थान पर परित्याग किया था, तथा यह वटवृक्ष उसी बीज से हुआ है । अत: मैं तुम दोनों से बड़ा हूं ।'

तब बंदर और हाथी ने तीतर से कहा, 'आप हमसे बड़े हैं । हम आप का आदर, सम्मान, तथा आपको नमन करेंगे और आपके परामर्श का पालन करेंगे ।' तीतर ने बंदर और हाथी को शील सदाचार के पांच शिक्षापद दिलवाये एवं उन्हें स्वयं भी लिया । फिर, वे एक दूसरे के प्रति विनम्रता एवं सम्मान के साथ रहने लगे तथा एक दूसरे का पूरा खयाल रखने लगे । जब उनका निधन हुआ तो उनका पुनर्जन्म एक सुखमय गति में अर्थात स्वर्ग लोक में हुआ ।

कथा के अंत में, बुद्ध ने कहा कि यह 'तीतर के दैवी जीवन' के रूप में जाना जाने लगा तथा उन्होंने वह गाथा सुनाई जिससे हमने यह कथा प्रारंभ की है:-

''ये वुड्ढमपचायन्ति, नरा धम्मस्स कोविदा।
दिट्ठे धम्मे च पासंसा, सम्पराये च सुग्गती''ति॥

जातक १.१.३७

वे जो आयु का आदर करते हैं, सत्य में निपुण होते हैं । उनकी इस जीवन में प्रशंसा होती है तथा वे भविष्य के लिये आनंद अर्जित करते हैं ।।

बुद्ध ने निष्कर्ष बताया, 'तो भिक्खुओं, ये जानवर एक दूसरे के प्रति विनम्रता, आदर एवं आपसी सामंजस्य के साथ रह सकते हैं । उनका अनुसरण करने का प्रयास करो ।'

इस प्रकार की कहानियां बौद्ध देशों में प्राय: सुनाई जाती हैं । उदाहरण स्वरूप बर्मा में युवा इन्हें विद्यालयों में सीखते हैं, तथा उन के माध्यम से, वे सही आचरण सीखते हैं ।

इस कथा के समापन के पश्चात, बुद्ध ने तीनों मित्रों का परिचय दिया । बंदर अब सारिपुत्त थे, हाथी अब अन्य मुख्य शिष्य मोग्गल्लान थे, तीतर अब स्वयं बुद्ध थे ।

बुद्ध द्वारा दी गयी गाथा में, वे समुचित आचरण का व्यक्ति के लिए परिणाम के विषय में बताते हैं । किन्तु हमें यह बताया गया है कि जब सारिपुत्त ने उनको बताया कि क्यों उन्होंने बाहर रात बितायी तो बुद्ध ने सोचा, 'इस समय, जब कि मैं अभी जीवित हूँ, भिक्खुओं में

शिष्टाचार तथा अनुशासन का अभाव है। मेरे निधन के पश्चात ये क्या नहीं करेंगे?' अत: हम देख सकते हैं कि वे धम्म के विषय में भी सतर्क थे। जब नैतिक आचरण का अभाव होता है, तो यह न केवल व्यक्तियों के लिए हानिकारक होता है, अपितु यह धम्म शिक्षा के लिए भी हानिकारक होता है।

स्वयं की रक्षा तथा दूसरों की रक्षा[३]

अन्यत्र बुद्ध ने बताया कि यदि उचित व्यवहार का सम्मान न हो, तो उससे हमें क्या अपेक्षा हो सकती है। क्योंकि 'लोग अवैध काम वासनाओं से आसक्त होते हैं, भ्रष्ट लालसाओं से अभिभूत तथा अनुचित सिद्धांतों के वशीभूत होते हैं,' उनका तीन विध्वंसकों से समागम होता है: - युद्ध, अकाल, तथा महामारी[४]। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि हम इतिहास के किस भाग में रहते हैं, या किस प्रकार की सरकारी व्यवस्था के अन्तर्गत हैं, किन्तु यही बात सच होती है।

यदि हम आधुनिक जगत को देखें, तो हम पाते हैं कि इसने अनेक प्रकार के युद्ध देखे हैं, तथा प्रति वर्ष और भी इस सूची में जुड़ जाते हैं। वर्षा के अभाव, फसल नष्ट होने, जनसंख्या विस्फोट आदि के कारण, अकाल नियमितता के साथ पड़ता है। तथा महामारी नई बीमारियों के रूप में तथा प्राचीन रोगों के प्रतिरोध के रूप में देखी जा सकती हैं। ऐसा लगता है कि जैसे ही हम कुछ उपचार प्राप्त कर लेते हैं, हमारे स्वास्थ्य के लिये कोई न कोई नया संकट उत्पन्न हो जाता है।

इन समस्याओं के लिये बुद्ध द्वारा सिखाया गया सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम शील सदाचार, एकाग्रता, तथा अंतर्दृष्टि विकसित करें। इनमें चार ब्रह्म विहार का विकास सन्निहित हैं: मेत्ता, करुणा, मुदिता (सहानुभूतिपूर्ण आनन्द), तथा समभाव या उपेक्षा (पालि में उपेक्खा)। जैसा कि बुद्ध ने मेत्त सुत्त में कहा है, 'जिस प्रकार एक माँ अपने पुत्र, अपने इकलौते पुत्र की रक्षा अपने जीवन के साथ करेगी, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति एक असीमित मन, तथा समस्त संसार के प्रति मेत्ता उपजानी चाहिए।'[५]

यदि पर्याप्त लोग इस प्रकार के नि:स्वार्थ प्रेम का अनुभव करते हैं, तो हम कल्पना कर सकते हैं कि विश्व के धन एवं उसकी ऊर्जा का मानव जाति की आवश्यकताओं के लिये अच्छी तरह निवेश होगा। किन्तु जब अनेक लोगों के मन एवं हृदय परिवर्तित हो गये हों, तभी और प्रगति की आशा की जा सकती है। यदि हमने स्वयं को सही दिशा में विकसित नहीं किया है, तो हम दूसरों की उनके बदलने में सहायता करने में कैसे सक्षम होंगे?

हमें विकसित होना चाहिए, इस दृष्टिकोण के लिये बुद्ध ने एक और कथा से दृष्टान्त दिया।

बुद्ध ने यह कथा तब सुनाई जब कौशाम्बी के भिक्खुओं ने संघ में फूट डाल दी थी। .

एक भिक्खु पर किसी दूसरे भिक्खु ने आरोप लगाया कि उन्होंने कोई मामूली अपराध किया था। आरोपी भिक्खु ने जो किया था उसे वह कोई अपराध नहीं मानते थे। किन्तु अन्य भिक्खु अड़ गये कि वह अपराध था, तथा इस प्रकार अपने साथियों एवं सहवासियों का समर्थन पाकर उन्होंने उन भिक्खु को निलंबित करवा दिया। निलंबित भिक्खु के समर्थकों ने निलंबित भिक्खु का साथ दिया। इस फूट को रोकने के लिये दो बार बुद्ध ने दोनों गुटों को समझाने का प्रयास किया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। फिर उन्होंने दीघावु की कथा सुनाई।

दीघावु की कथा[६]

एक समय जब ब्रह्मदत्त वाराणसी के राजा थे, तो उन्होंने कौशल राज्य को अधिकृत कर उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया तथा कौशल के राजा एवं रानी को मौत के घाट उतार दिया। निष्पादन स्थान की ओर जाते समय, कौशल के राजा ने भीड़ में भेष बदले अपने पुत्र राजकुमार दीघावु को देखा। अपने बेटे को देखकर राजा ने कहा, 'प्रिय दीघावु, दृष्टि न तो लंबी अवधि तक और न तो थोड़ी अवधि तक डालो, क्योंकि क्रोध की भावना अक्रोध से दूर होती है।' लोगों ने सोचा कि वे विक्षिप्त हो गये हैं, तथा बकवास कर रहे हैं।

बाद में, राजकुमार दीघावु राजा ब्रह्मदत्त के सेवक का पद प्राप्त करने में सफल हो गए। एक दिन, वन में आखेट करते समय, राजा अपना मार्ग भूल गये। उनके साथ मात्र एक ही व्यक्ति अभी भी था, वह था राजकुमार दीघावु। थकान अनुभव करते हुए राजा, राजकुमार की गोंद में अपना सिर रखकर आराम से सो गये। राजकुमार ने अपने माता पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहा, तथा दो बार उन्होंने म्यान से अपनी तलवार खींची। किन्तु प्रत्येक बार अपने पिता के शब्द उन्हें याद आ गये, और उन्होंने अपनी तलवार दूर रख दी।

तब राजा ब्रह्मदत्त ने स्वप्न देखा कि कौशलपति के पुत्र ने उनपर तलवार से आक्रमण किया है, तथा वे भयभीत होकर हड़बड़ा कर जाग उठे। उन्हौंने अपने सेवक से अपने स्वप्न के विषय में बताया। तब राजकुमार ने उनसे कहा, 'मैं ही राजकुमार दीघावु, कौशल के राजा का पुत्र हूँ। आप ने हमारी अतिशय हानि की है। आप ने हमारा राज्य अधिकृत कर लिया। तथा मेरे माता पिता की हत्या कर दी। मैं अब आपको अपना क्रोध दिखा सकता हूं।' राजा ने कहा, ' प्रिय दीघावु, मुझे मेरे जीवन का अनुदान दे दो।' तथा युवराज ने राजा के अनुरोध का पालन किया। बदले में, राजा ने उसे क्षति न पहुंचाने का वचन दिया।

जब वे महल में वापस लौट आये, तो राजा ने युवराज से उसके पिता के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कहा। युवराज दीघावु ने कहा, "'लंबी अवधि तक दृष्टि न डालो' का अर्थ है शत्रुता को लम्बित न करो। 'अल्पावधि तक ही दृष्टि न डालो' का अर्थ है जल्दबाजी में किसी मित्र से संबंध न तोड़ दो। 'क्रोध की भावना अक्रोध से दूर होती है' का अर्थ है कि मेरे माता पिता एक राजा के हाथों मारे गए थे, किन्तु यदि मैं राजा को उसके जीवन से वंचित कर दूं, तो वे लोग जिन्हें उनका कल्याण वांछित है, मुझे मेरे जीवन से वंचित कर देंगे। किन्तु अब जब कि मैं आप को आपका जीवन देता हूं, तो आप बदले में मुझे मेरा जीवन अनुदान करते हैं। इस प्रकार क्रोध अक्रोध से शान्त होता है।"

राजा ब्रह्मदत्त इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने राजकुमार दीघावु को कौशल राज्य वापस दे दिया, तथा साथ में अपनी पुत्री का हाथ भी। कथा का समापन करते हुए बुद्ध ने कहा, 'यदि तलवार चलाने वाले तथा प्रभुत्व वाले राजाओं में ऐसा धैर्य एवं शालीनता है, तो भिक्खुओं, प्रकाशमय हो जिससे यह समुचित रूप से प्रशिक्षित शासन तथा अनुशासन भी उतना ही धैर्यवान एवं कोमल हो।' तथा तीसरी बार बुद्ध ने भिक्खुओं के गुटों को कहा, 'बहुत हो गया भिक्खुओं, अब कोई संघर्ष, कोई झगड़ा, कोई तर्क, कोई विवाद नहीं।' किन्तु भिक्खुओं ने बुद्ध की बात नहीं सुनी। तो बुद्ध ने अपने मन में सोचा, 'ऐसा लगता है कि जैसे ये मूर्ख सम्मोहित हो गये हैं; इन्हें मनाना सरल नहीं है।' तथा वे वहां से चले गये।

अगले दिन, बुद्ध ने भिक्खु समूह को अधोलिखित गाथाएं सुनाईं[७]

"पुथुसद्दो समजनो, न बालो कोचि मञ्ञथ।
सङ्घस्मिं भिज्जमानस्मिं, नाञ्ञं भिय्यो अमञ्ञरुं॥

सामान्य व्यक्तियों के विभिन्न मतों को कोई मूर्खतापूर्ण नहीं समझ रहा है। जब कि संघ विभाजित हो गया है फिर भी कोई इसे विभाजित नहीं समझ रहा है।

"परिमुट्ठा पण्डिताभासा, वाचागोचरभाणिनो।
याविच्छन्ति मुखायामं, येन नीता न तं विदू॥

पण्डितों के वचनों के माध्यम से भ्रमित करते हुए पाठक, उन शब्दों से अपनी जीविका चला रहे हैं। वे अपना मुंह खोल कर लालायित रहते हैं और यह नहीं जानते कि वे किधर ले जाये जा रहे हैं।

"अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति, वेरं तेसं न सम्मति॥

७

'उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे मारा, उसने मुझे परास्त किया, उसने मुझे लूट लिया।' इस प्रकार की शिकायतें जो वहन करते हैं उनका द्वेष शांत नहीं होता।

''अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।

ये च तं नुपनय्हन्ति, वेरं तेसूपसम्मति॥

'उसने मुझे गाली दी, उसने मुझे मारा, उसने मुझे परास्त किया, उसने मुझे लूट लिया।' इस प्रकार की शिकायतें जो वहन नहीं करते, उनका द्वेष शांत होता है।

''न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।

अवेरेन च सम्मन्ति, एसधम्मो सनन्तनो॥

क्योंकि इस संसार में घृणा के विचार, घृणा के माध्यम से कभी शांत नहीं होते। अपितु, उनकी शांति घृणा से मुक्ति के माध्यम से होती है। यही सदियों पुरानी शिक्षा है।

''परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।

ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा॥

हमारा यहीं अन्त है, यह ज्ञान अन्य लोगों को भी नहीं है, किन्तु जिनको इसका ज्ञान है, उनके झगड़े इससे समाप्त हो जाते हैं।

''अट्ठिच्छिन्ना पाणहरा, गवास्सधनहारिनो।

रट्ठं विलुम्पमानानं, तेसम्पि होति सङ्गति॥

''कस्मा तुम्हाक नो सिया।

वे जो दूसरों की हड्डियां तोड़ते हैं, जो जान ले लेते हैं, जो गाय, घोड़े, एवं धन चुराते हैं, राज्य लूटते हैं, -- वे भी एकजुट हो कर रहते हैं। क्यों, तुम इतना भी नहीं कर सकते?

''सचे लभेथ निपकं सहायं। सद्धिंचरं साधुविहारि धीरं।

अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि। चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा॥

यदि एक ऐसा साथी प्राप्त कर सको जो उत्साही हो, अच्छे स्वभाववाला सहयोगी हो, कृतसंकल्प हो, संकटों पर काबू पाने वाला हो, तो उसके साथ प्रसन्न चित्त से सतिपूर्वक विचरण करना चाहिए।

''नो चे लभेथ निपकं सहायं। सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।

राजाव रट्ठं विजितं पहाय। एको चरे मातङ्गरञ्ञेव नागो॥

यदि ऐसा साथी न प्राप्त कर सको जो उत्साही हो, अच्छे स्वभाववाला सहयोगी हो, कृतसंकल्प हो, तो एक राजा की तरह जो विजय प्राप्त किये हुए राज्य को छोड़ देता है, या हाथी के वन में किसी हाथी की तरह एकाकी विचरण करना चाहिए।

''एकस्स चरितं सेय्यो। नत्थि बाले सहायता।

एको चरे न च पापानि कयिरा। अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो''ति॥

एकाकी जीवन श्रेयष्कर है। मूर्ख के साथ कोई संगति नहीं है। एक हाथी के वन में किसी हाथी की तरह, अनासक्त, बुराईयों से परे, अकेले रहना चाहिए।

भिक्खु संघ को इन गाथाओं को सुनाने के बाद बुद्ध पालिलेय्यक वन में अकेले रहने के लिए चले गये, क्योंकि उन्हें लगा कि वे इन भिक्खुओं में सामंजस्य बनाने के लिए और कुछ नहीं कर सकते। भिक्खुओं के बीच का मतभेद पूरे कोशाम्बी को दो शिविरों में विभाजित करते हुए, उनके गृही अनुयायियों में भी फैल गया तथा जिसके कारण भिक्खुओं एवं गृहियों को अतीव कष्ट भोगना पड़ा। यद्यपि अंत में, दोनों दलों को अपनी मूर्खता का एहसास हुआ तथा उन्होंने अपने मतभेदों को सुलझाया और शांति एवं सद्भाव से रहने लगे। तब बुद्ध उनके पास वापस आ गये।

संसार आजकल कलही गुटों से भरा पड़ा है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि यह जगत दो शक्तिशाली गुटों में विभाजित हो गया है, तथा छोटे छोटे देश असहाय रूप से बीच में फंस गये हैं। बर्मी कहावत में इनकी तुलना दो लड़ाकू भैंसों के बीच फंसी हुई घास के गुच्छों के समान है।

हम इस जगत को रहने योग्य अच्छा स्थान बनाने में कैसे सहायक हो सकते हैं? यदि हम बुद्ध के उदाहरण को देखें, तो हम देख सकते हैं कि उन्होंने भरसक प्रयास किया कि भिक्खु अपने तरीकों में त्रुटियां देख सकें। किन्तु उन्होंने उन्हें बदलने पर मजबूर करने के लिए अपने पद का उपयोग नहीं किया। जब यह स्पष्ट हो गया कि अब वे इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकते, तो वे वहाँ नहीं रुके किन्तु अपने मार्ग पर चले गये, तथा तबतक प्रतीक्षा की जबतक उन्हें यह नहीं लगा कि अब वे उन्हें पुन: ध्यान से सुनेंगे।

हमें भी अपनी सीमाओं का एहसास होना चाहिए। और जब तक हम पूर्ण जागृति तक नहीं पहुँच जाते, हमें स्वार्थी विचारों से ऊपर उठकर प्रयास करना चाहिए। तथा जहाँ तक हमारी शक्ति में निहित है, हम युद्ध, अकाल, एवं महामारी, इन तीनों परंपरागत विनाशकों को, रोकने का प्रयास कर सकते हैं।

तो, हमारे लिये ऐसा करने का सबसे अच्छा तरीका क्या है? नि:संदेह, हम अपने दैनिक जीवन में बुद्ध की शिक्षाओं का उपयोग करना चाहेंगे। हम चाहेंगे कि हम उदारता का अभ्यास करें, नैतिक शिक्षापदों का पालन करें, तथा सभी मनुष्यों के प्रति भाईचारा बनाये रखें। किन्तु यह सब करने के लिये, हमें चित्त एकाग्रता तथा अंतर्दृष्टि में प्रगति करने की आवश्यकता होगी। यदि हम स्वयं अनभिज्ञ रहें, तो हम अपने साथी मनुष्यों की सहायता करने में सक्षम नहीं हो पायेंगे।

'सतिपट्ठान सुत्त' (स्मृति स्थापन सूत्र) में बुद्ध ने हमें इस के लिए एक दिशानिर्देश दिया है[८] । उनके परामर्श के सारांश को इस गाथा की दो पंक्तियों में दिया जा सकता है[९] :-

अत्तानं रक्खन्तो परं रक्खति, परं रक्खन्तो अत्तानं रक्खति ।

स्वयं की सुरक्षा द्वारा व्यक्ति दूसरों को सुरक्षित करता है । दूसरों की सुरक्षा द्वारा, व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित करता है ।

दो कलाबाज़ों की कथा[१०]

बुद्ध ने भिक्खुओं को अधोलिखित कथा सुनाई :- एक समय दो कलाबाज़ थे जो एक वेणु स्तंभ अर्थात बांस के खंभे का उपयोग कर अपनी कलाबाज़ी या अभिनय दिखाते थे । एक दिन स्वामी ने अपने शिष्य मेदकथालिक से कहा, 'अब मेरे कंधों पर होते हुए वेणु स्तंभ पर चढ़ जाओ ।' जब शिष्य ने, उससे जो कहा गया था कर लिया तो स्वामी ने कहा, 'अब तुम अच्छी तरह मेरी रक्षा करो और मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा । इस प्रकार एक दूसरे का ध्यान रखते हुए तथा रक्षा करते हुए, हम अपना कौशल दिखाने में तथा अच्छा लाभ प्राप्त करने में सक्षम होंगे, तथा तुम सुरक्षित रूप से वेणु स्तंभ से नीचे उतर जाओगे ।'

किन्तु मेदकथालिक ने कहा, 'स्वामी, ऐसे नहीं । आप को अपनी रक्षा स्वयं करनी चाहिए, तथा मैं भी अपनी रक्षा स्वयं करूंगा । अपने आप को सुरक्षित रखते हुए मैं आप की रक्षा करूंगा । इस प्रकार स्व-संरक्षित एवं स्वसुरक्षित होकर हम आत्म-रक्षा के माध्यम से एक दूसरे की रक्षा करेंगे तथा सुरक्षित रूप से अपने कौशल का प्रदर्शन करेंगे ।'

यह प्रवचन हमारे एवं अन्य व्यक्तियों या प्राणियों के बीच के संबंधों के विषय में तथा समाज एवं व्यक्ति के बीच के संबंधों के विषय में है । यह एक सराहनीय तरीके से व्यक्तिगत एवं सामाजिक तथा अहंभाव एवं परोपकारिता की समस्याओं के विषय में बौद्ध दृष्टिकोण का सारांश है । 'स्वयं की सुरक्षा द्वारा व्यक्ति दूसरों को सुरक्षित करता है । दूसरों की सुरक्षा द्वारा, व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित करता है ।' ये दो वाक्य जो शिक्षा का सारांश प्रस्तुत करते हैं वे एक दूसरे के पूरक हैं, और इन्हें अलग अलग नहीं देखना चाहिए ।

आजकल, सामाजिक गतिविधियों पर अधिक जोर दिया जाता है, अत: लोग अपने विचारों के समर्थन में केवल दूसरे वाक्यांश को ही उद्धृत करना चाहते हैं :- 'दूसरों की सुरक्षा द्वारा, व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित करता है' । किन्तु, इस प्रकार का एकतरफा उद्धरण बुद्ध की शिक्षा को गलत रूप से प्रस्तुत करेगा । बुद्ध ने स्पष्टरूप से शिष्य की पद्धति की प्रशंशा की है । यदि कोई

दूसरों को हानि से बचाना चाहता है तो उसे पहले अपने कदमों पर सावधानी से ध्यान देना चाहिये ।

'स्वयं की सुरक्षा द्वारा व्यक्ति दूसरों को सुरक्षित करता है ।' इस कथन का सत्य एक बहुत ही सरल एवं व्यावहारिक स्तर पर प्रारंभ होता है । भौतिक स्तर पर यह स्पष्ट है कि हमारे स्वास्थ्य की सुरक्षा से हमारे पर्यावरण के स्वास्थ्य की सुरक्षा भी बढ़ेगी । अपने सभी कार्यों एवं गतिविधियों में सतर्कता तथा सावधानी द्वारा दूसरों की हानि से रक्षा होगी, हानि जो हमारी लापरवाही या असावधानी के कारण हो सकती है ।

एक अन्य स्तर पर, नैतिक आत्म सुरक्षा, हमारे अपने अनियंत्रित भावावेश के विरुद्ध अन्य व्यक्तियों एवं समाज की रक्षा करेगी । यदि सभी अकुशल कृत्यों के तीन मूल - लालच (लोभ), घृणा (दोष), तथा भ्रम (मोह) हमारे हृदयों में पनपने लगें, तो जो कुछ इन जड़ों से उगेगा वह दूर दूर तक व्यापक रूप से फैल जाएगा, एवं एक जंगली लता की तरह आस - पास के स्वस्थ विकास को निगल जायेगा ।

दूसरी ओर, यदि हम अकुशल कृत्यों के इन तीन मूलों से अपनी रक्षा करें, तो हमारे साथी मानव हमारी संपत्ति या शक्ति मोह के लोभ, हमारी अनियंत्रित वासना, तथा ईर्ष्या एवं जलन से सुरक्षित होंगे; वे हमारी घृणा एवं शत्रुता के तथा हमारे क्रोधित विस्फोटों के विनाशकारी तथा हिंसक परिणामों से एवं आसपास के लोगों के लिए जीवन असहनीय बनाने वाले कलहपूर्ण तथा बदमिजाजी के वातावरण से सुरक्षित होंगे ।

लोभ एवं द्वेष में संक्रामक शक्ति भी होती है । यदि हम केवल अधिक पा लेने की ही सोचते हैं, तो हम इस प्रकार की स्वत्वबोधक प्रवृत्ति को दूसरों में भी जगायेंगे या सबल करेंगे । हमारा बुरा उदाहरण हमारे पर्यावरण के लिए तथा हमारे बच्चों एवं युवा पीढ़ी के लिए मानक बन सकता है । अपनी इच्छाओं को अधिकाधिक रूप से संतुष्ट करने में हम भी दूसरों को अपने साथ सम्मिलित करने के लिए राजी करने का प्रयास कर सकते हैं । यदि हम कामुक इच्छाओं से भरे हुए हैं, तो हम दूसरों में भी काम वासना की आग लगा सकते हैं । यदि हम घृणा के साथ कार्य करते हैं, तो बदले में, हम दूसरों में भी घृणा उत्पन्न करेंगे । लोभ एवं द्वेष संक्रामक रोगों की तरह हैं । यदि हम स्वयं को यथासंभव प्रतिरक्षित बना लें, तो हम अपनों की तथा दूसरों की उतनी ही रक्षा करेंगे ।

जहां तक अकुशल कृत्यों के तीसरे मूल का प्रश्न है, हम सब यह जानते हैं कि कैसे किसी एक व्यक्ति की मूर्खता, विचारशून्यता, भ्रम, अज्ञान तथा विभ्रम के माध्यम से दूसरों की अपार

क्षति हो सकती है ।

बुद्धि एवं ज्ञान के बिना, अपनी और दूसरों की रक्षा के प्रयास अधिकांशत: विफल ही होंगे । संकट स्पष्ट होने तक बहुत देर हो चुकी होगी । भविष्य के लिए प्रावधान नहीं कर सकेंगे । रक्षा तथा सहायता के लिए सही, एवं प्रभावी उपाय का पता नहीं होगा । अत:, विवेक और ज्ञान के माध्यम से आत्मरक्षा सबसे महत्वपूर्ण है ।

इतिहास से हमें पता चलता है कि बड़े बड़े विनाशकारी प्रकृति के जन विभ्रम प्राय: किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के एक छोटे से समूह द्वारा प्रारंभ या प्रज्ज्वलित होते हैं ।

यदि हम अपने भीतर की सामाजिक बुराईयों के वास्तविक या संभावित स्रोतों को अछूता छोड़ देते हैं, तो हमारी कोई भी बाह्य सामाजिक गतिविधि व्यर्थ या स्पष्टत: अधूरी ही रहेगी । अत: यदि हम सामाजिक दायित्व की भावना से प्रेरित हैं तो, हम आत्म रक्षा के कठिन कार्य से नहीं मुकर सकते, तथा इसका तात्पर्य है कि हमें नैतिक और आध्यात्मिक आत्म विकास के लिए काम करना चाहिए ।

अब हम अपने उद्धरण की व्याख्या के अगले स्तर पर आते हैं । यह सुत्त के इन शब्दों में व्यक्त किया है :- 'तो कैसे कोई अपनी रक्षा द्वारा दूसरों की रक्षा करता है? लगातार अभ्यास से, ध्यान के विकास से, तथा नैतिक आत्म सुरक्षा के बार बार अभ्यास से ।'

जब नैतिक आत्म सुरक्षा केवल उद्देश्यों के साथ लंबे समय तक संघर्ष के बाद ही कार्यरत होती है अथवा परस्पर विरोधी आदतों के विरुद्ध पुष्ट होती है तो, उसकी विश्वसनीयता में कमी होगी । संघर्ष के परिणाम कभी कभी हमारे अच्छे इरादों के विरुद्ध जा सकते हैं, या हम उन्हें अपने भीतर आदतों की गहरी जड़ों पर लागू करने में विफल हो सकते हैं । केवल जब यह नैतिक आत्म सुरक्षा एक सहज रूप से कार्यान्वित होती है, तभी यह स्वयं को तथा अन्य को असली सुरक्षा प्रदान करेगी । यह सहजता स्वर्ग से एक उपहार स्वरूप नहीं मिलती । इसे इस जीवन में या पिछले अस्तित्त्व में, बार बार अभ्यास के द्वारा अर्जित किया जाया है । अत: सुत्त के अनुसार यह बारंबार का अभ्यास है जो आत्म सुरक्षा को प्रबल बनाता है, तथा पर्याप्त प्रबलता से दूसरों की रक्षा करने में हम सक्षम होते हैं ।

किन्तु, व्यावहारिक, भावनात्मक और बौद्धिक स्तर पर अभ्यास पर्याप्त नहीं होगा । जब तक अभ्यास में ध्यान भी सम्मिलित न हो, तब तक जड़ें पर्याप्त रूप से गहरी एवं सुदृढ़ नहीं होंगी । ध्यान के माध्यम से, आत्म - सुरक्षा की व्यावहारिक, भावनात्मक और बौद्धिक प्रेरणाएं एक मानसिक संपत्ति बन जाएंगी, जो आसानी से फिर खो नहीं पायेंगी ।

अब हम दूसरे वाक्यांश पर विचार करते हैं 'दूसरों की रक्षा द्वारा व्यक्ति स्वयं की रक्षा करता है ।' बुद्ध ने इसका अर्थ स्पष्ट किया :- '**खन्तिया, अविहिंसाय, मेत्तचित्तताय, अनुदयताय अर्थात** धैर्य के माध्यम से, एक अहिंसक और हानिरहित जीवन के माध्यम से, तथा मेत्ता एवं करुणा के माध्यम से ।'

जो व्यक्ति इन चार सिद्धांतों से दूसरों के साथ अपने संबंधों को नियंत्रित रखता है, वह शस्त्र तथा शारीरिक शक्ति की तुलना में अपनी रक्षा बेहतर करेगा । धैर्य या सहिष्णुता उसे अनेक संघर्षों तथा विवादों से बचने में सहायता करेंगे । उसके लिये अनेक मित्र बनाना सरल हो जायेगा, जिनके प्रति उसने धैर्यपूर्ण दृष्टिकोण प्रदर्शित किया है । बल या दबाव का प्रयोग न करने के कारण वह शायद ही कभी स्वयं हिंसा का पात्र बनेगा, क्योंकि वह किसी को भड़काता नहीं ।

अत: नैतिक आत्म सुरक्षा आधार है । किन्तु यह तभी संभव है यदि इससे दूसरों की सुरक्षा के साथ टकराव न हो । अन्यथा, यह व्यक्ति में विकार लाने के साथ उसे संकट में भी डालेगा । तथा दूसरों की सुरक्षा का टकराव धैर्य, अहिंसा, मेत्ता एवं करुणा के चार सिद्धांतों के साथ नहीं होना चाहिए । उसे व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

आत्म सुरक्षा तथा दूसरों की सुरक्षा के ये दो सिद्धांत व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता में समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, तथा उन दोनों के बीच सामंजस्य प्रदान करते हैं । वे धम्म की भरपूर अनुभूति के लिये व्यक्ति को आगे बढ़ाते हैं, तथा साथ ही समाज के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं ।

सति के चार अनुप्रयोग (प्रस्थान)

आदरणीय लेदी सयादॉ ने अपनी 'बोधिपक्खीय दीपनी'[११] में सति के चार प्रकार बताए हैं । उनके अनुसार सतिप्रस्थान (पालि में, सतिपट्ठान) का अर्थ है सति (स्मृति) या जागरूकता का दृढ़ता से प्रतिष्ठापन । सति की स्थापना के चार प्रकार हैं :-

१. **कायानुपस्सना सतिपट्ठान** का तात्पर्य है, सति जो वास्तविक भौतिक घटनाओं में दृढ़ता से स्थापित हो :- 'सति के साथ उसे श्वास लेना चाहिये, सति के साथ उसे श्वास छोड़ना चाहिये । यदि वह लंबी सांस ले तो, उसे इसका संज्ञान होना चाहिये; या यदि वह लंबी सांस छोड़ता है, तो उसे इसका बोध होना चाहिये, इत्यादि ।' आप पिछले दस दिनों से इसका अभ्यास कर रहे हैं ।

२. **वेदनानुपस्सना सतिपट्ठान** का तात्पर्य है, सति जो संवेदनाओं में दृढ़ता से स्थापित हो । इसके अंतर्गत प्रिय संवेदनाएं, अप्रिय संवेदनाएं अथवा उदासीन संवेदनाएं सम्मिलित हैं; समूचे शरीर में

- सिर से पैर तक और पैर से सिर तक, एक भाग से दूसरे भाग में जाते हुए, जिससे कि व्यक्ति प्रत्येक भाग को समझने में सक्षम हो। यह भी जब से आपने विपस्सना साधना सीखी है, कर रहे हैं।

३. **चित्तानुपस्सना सतिपट्ठान** का तात्पर्य है, सति जो चित्त में या मानसिक प्रकृयायों में दृढ़ता से स्थापित हो, जैसे संवेगयुक्त चित्त या संवेगरहित चित्त में। सयाजी ऊ बा ख़ीं ने बताया है कि विपस्सना साधना में यह कैसे किया जाता है[१२] :- 'विपस्सना साधना में व्यक्ति न केवल रूप की बदलती प्रकृति का निरीक्षण करता है, अपितु, ध्यान के विचार-तत्व को रूप में परिवर्तन की प्रकृया पर प्रक्षेपित कर नाम के परिवर्तनशील स्वरूप का भी मनन करता है। कभी कभी ध्यान विचार तत्वों (नाम) की अनित्यता पर हो सकता है। जब व्यक्ति रूप की अनित्यता पर विचार करता है तो, उसे पता चलता है कि रूप या पदार्थ की अनित्यता की जागरूकता के साथ उत्पन्न होने वाले विचार तत्व भी परिवर्तनशील हैं। उस स्थिति में आप रूप एवं नाम दोनों की अनित्यता को जान रहे हैं।' अत: आप इसका भी अभ्यास करते रहे हैं, तथा जब भी आप साधना कर रहे हों, इसका सदैव ध्यान रखें, चाहे यहां अथवा अपने निवास पर।

४. **धम्मानुपस्सना सतिपट्ठान** का तात्पर्य है, सति जो धम्मों में, जैसे नीवरण इत्यादि में, दृढ़ता से स्थापित हो। ये पिछ्ले प्रवचनों में विस्तार से समझाये गये हैं। जहां तक मनोदशाओं के अवलोकन का प्रश्न है , तो आपको पता होना चाहिए कि कब पांच बाधाओं में से कोई वाधा विद्यमान है और कब नहीं। आपको पता होना चाहिये कि वे कैसे उदय होती हैं, उन्हें कैसे दूर किया जाता है, तथा भविष्य में वे कैसे अब उदय नहीं होंगी। आप दिन भर इस का भी अभ्यास कर रहे हैं।

अत: हमने सही श्रद्धा, सही संरक्षण, और सही सति के महत्व को देखा, और समझा कि ये तीनों कैसे एक साथ मिलकर काम करते हैं। आइए, हम सति की स्थापना के माध्यम से अपनी सुरक्षा तथा पुन: सति की स्थापना के माध्यम से ही दूसरों की सुरक्षा का, संकल्प लें।

संदर्भ सूची

[1]See *Buddhist Legends*, II 366.

[2]This story is also given in *The Book of the Discipline*, V 224-227.

[3]This discussion is from “What Leads Them On They Know Not” by Myanaung U Tin (*Light of the Dhamma*, VI 3, pp. 14-16).

[4]*The Gradual Sayings*, I 141-143.

[5]*The Group of Discourses*, verses 149f.

[6]*The Book of the Discipline*, IV 489-498. Cf. Jataka Nos. 371, 428, and *Buddhist Legends*, I 177.

[7]*The Book of the Discipline*, IV 499f.; Jataka Stories, III 290; *The Middle Length Sayings*, III 198f.

[8]The Middle Length Sayings, I 70-82.

[9]Based on the Buddha's concluding words in the discourse about the two acrobats (*The Kindred Sayings*, V 148f.).

[10]This section is based on "The Story of Two Acrobats" by Venerable Nyanaponika Thera (*Light of the Dhamma*, II 1, pp. 15-18).

[11]*The Manuals of Buddhism*, pp. 176-180; *The Wheel* Nos. 171174, pp. 28-40.

[12]*Dhamma Texts*, pp. 93f.

नवम दिवस, सायं प्रवचन

सभी बुद्धों का संदेश

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं ।।

सभी पापकर्मों को न करना, पुण्यकर्मों की संपदा संचित करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना - यही बुद्धों की शिक्षा है ।

खन्ती परमं तपो तितिक्खा, निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा ।
न हि पब्बजितो परूपघाती, न समणो होति परं विहेठयन्तो ।।

सहनशीलता तथा क्षमाशीलता परम तप हैं । बुद्धजन निर्वाण को सर्वोच्च बतलाते हैं । दूसरे का घात करने वाला प्रव्रजित नहीं होता और दूसरों को सताने वाला श्रमण नहीं हो सकता ।

अनूपवादो अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं, पन्तञ्च सयनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो, एतं बुद्धान सासनं ।।

निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष (भिक्षु आचार संहिता) द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, (अपने) आहार की मात्रा का जानकार होना, एकांत में सोना-बैठना और चित्त को एकाग्र करने में प्रयत्न जुटाना - यह (सभी) बुद्धों की शिक्षा है ।

धम्मपद, गाथायें १८३-१८५

ये गाथाएं हमें सिखाती हैं कि हमें अच्छा करना चाहिये और अच्छा होना चाहिए, कि अहिंसा सच्चे तपस्वी की विशेषता है, तथा हमें एक शुद्ध एवं उदात्त जीवन व्यतीत करना चाहिए ।

ये गाथाएं भगवान बुद्ध द्वारा आदरणीय आनंद को सुनाई गईं थीं, जब उन्होंने पूछा था कि पिछले बुद्ध उपोसथ दिवसों को, अर्थात चंद्रमा के चार चरणों से संबंधित दिवसों को, जब विशेष प्रयास, जैसे अतिरिक्त शिक्षापदों का पालन करना होता है, कैसे मनाते थे ।[१] बुद्ध ने उत्तर दिया कि सभी बुद्धों ने उपोसथ दिवसों के संदर्भ में ये तीन गाथाएं सुनाईं थीं ।

हमने देखा कि, हम अत्यंत भाग्यशाली हैं, जो बुद्ध की इन शिक्षाओं को व्यवहार में लाने में सक्षम हो रहे हैं । सर्वप्रथम तो, हम इसलिये भाग्यशाली हैं कि हमें मनुष्य लोक में जन्म मिला है । अस्तित्व के सभी इकत्तीस लोकों में से मनुष्य लोक, सभी अनुबंधित अवस्थाओं में परिवर्तनशीलता को, तथा सभी अनुबंधित अस्तित्वों में दु:ख अथवा कुण्ठा को सराहने के लिये

सर्वोत्तम है। यदि हमने अधोलोकों में जन्म लिया होता, तो हमारे भीतर इतनी बुद्धि नहीं होती कि हम तथ्यों को समझ सकें, अथवा हम इतना अधिक तथा इतनी निरंतरता से दुख भोगते रहते कि कुशल विचार तथा कुशल कर्म करना असंभव होता। यदि हम उच्च लोकों में जन्मे होते तो, या तो हम वहां सुखों में इतने व्यस्त होते कि यह विश्वास नहीं होता कि दुख भी हो सकता है, अथवा हम इतनी लंबी आयु तक जीते कि मृत्यु के तथ्य से विमुख हो जाते। तथा कुछ ब्रह्म लोकों में तो सोचना भी असंभव हो जाएगा।

पारमिताएं (पालि में, पारमी)

हमने यह भी देखा कि आवश्यक पारमी विकसित करने के लिए, एक असाधारण लंबी अवधि, अर्थात अविश्वसनीय संख्या के जन्मों के जीवन लग जाते हैं। ये पारमी तीन स्तरों पर विकसित की जा सकती हैं। प्रथम, सामान्य स्तर की जिससे सुखद लोकों में पुनर्जन्म हो सकेगा। अगले स्तर पर, इनका और अधिक विकास किया जाता है, जिससे हम किसी बुद्ध की शिक्षा को प्राप्त करने का अवसर पा सकते हैं, तथा उसके परिणामस्वरूप सच्चा सुख, अर्थात अर्हत्व प्राप्त कर सकते हैं। अथवा, हम बुद्ध के अस्सी प्रमुख शिष्यों में से एक या उनके दो सर्वप्रमुख शिष्यों में से एक बन सकते हैं। पारमी पूरा करने में उच्चतम स्तर स्वयं जागृत होने की ओर जाता है, अर्थात प्रत्येक बुद्ध, यानी कि ऐसे बुद्ध होना जो दूसरों को प्रशिक्षित नहीं करते, या तीन प्रकार के प्रशिक्षक बुद्धों में से एक होना।

जैसा कि हमने कहा, ये पारमितायें या पारमी दस हैं :- उदारता (दान), नैतिकता (शील, पालि में, सील), त्याग (अर्थात निष्कामता, निष्क्रमण, या नैष्क्रम्य, पालि में नेक्खाम), प्रज्ञा (पालि में, पञ्ञा), प्रयास या दृढ़ता (वीर्य, पालि में विरिय), धैर्य या सहिष्णुता (क्षान्ति, पालि में खान्ति), सत्यवादिता (सत्य, पालि में सच्च), दृढ़ संकल्प (अधिष्ठान, पालि में अधिट्ठान), मैत्री (मेत्ता), और समभाव या उपेक्षा (उपेक्खा)।

जैसा कि हम देख सकते हैं कि हम जो यहाँ कर रहे हैं, इनमें से अधिकांश का सीधा संबंध है। हम शिक्षापदों के पालन के द्वारा नैतिकता का अभ्यास कर रहे हैं, तथा एकाग्रता एवं अंतर्दृष्टि विकसित करने में, हमें वीर्य, क्षान्ति, अधिष्ठान तथा उपेक्षा का अत्यधिक उपयोग करना पड़ा है। जब हम अपने पुण्य सभी प्राणियों में बांटते हैं, तो हम मेत्ता तथा दान का अभ्यास करते हैं। जीवन में हमारे सभी कुशल कार्य इन पारमिताओं में से दो या अधिक के संयोजन से होते हैं। जितना ही अधिक हम उन्हें विकसित करेंगे, उतना ही बेहतर हमारा ध्यान लगेगा।

जितना ही अच्छा हमारा ध्यान लगेगा, उतना ही बेहतर हम इन पारमिताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे।

यदि हमारा ध्यान केंद्रित हो, तो हम लोभ, क्रोध, और अज्ञान से संलग्न पीड़ा को और अधिक स्पष्ट रूप से देखेंगे। जब हम क्रोध में चीख रहे होते हैं, तो उस क्रोध के साथ अप्रिय संवेदनाएं होती हैं। अब हम इसे और अधिक स्पष्ट रूप से देखेंगे। और हम इस प्रकार की नकारात्मक भावनाओं से बचना चाहेंगे। तथा ऐसे दुखदायी विचारों, कार्यों एवं व्यवहार से विरत होकर, हम ऐसे विचार, शब्द, एवं कार्य विकसित करने का प्रयास करेंगे जिनसे हमें तथा दूसरों को भी सुख मिले।

क्रमिक शिक्षण

यद्यपि हम मुख्य रूप से सांसारिक सुखों में रुचि रखते हों, तो भी हम इन पारमिताओं को विकसित करने का प्रयास करना चाहेंगे। जब भगवान बुद्ध कोई प्रवचन देते थे, तो वह एक क्रमिक शिक्षण होता था। वे पारमिताओं में से सर्वप्रथम पारमिता, दान से प्रारंभ करते थे। क्योंकि हम नैतिकता के क्षेत्र में कुशल कार्यों को दान शब्द में निचोड़ सकते हैं। तथा यह दान या उदारता ही है जो उच्चतर लोकों में पुनर्जन्म दिलाती है। आप ने इस तरह की अनेक कथाएं सुनी हैं जिनमें पुक्कुसाति तथा बाहिय दारुचीरिय जैसे व्यक्तियों के उदाहरण की चर्चा है। जब ये दोनों बुद्ध के सान्निध्य में आये तो भिक्षु बनने के लिये आठ आवश्यक वस्तुएँ अपने लिये नहीं प्राप्त कर सके, क्योंकि उन्हौंने अपने पिछले जन्मों में चीवर, भिक्षापात्र इत्यादि भिक्खुओं की आठ आवश्यक वस्तुओं का दान नहीं दिया था, अथवा उन्होंने साथी भिक्खुओं की सहायता नहीं की थी, या किसी प्रत्येक बुद्ध को क्षति पहुंचायी थी; अतः वे भिक्खु नहीं बन सके। इसके विपरीत, वे दोनों एक पागल गाय द्वारा मारे गये, कहा जाता है कि एक ही गाय ने इन दोनों आर्यों को मार डाला।[२] इस प्रकार, बुद्ध लोगों की उदारता या दान में स्थापना के साथ प्रारंभ करते थे। इस आधारशिला के बिना, आगे असंभव होगाबढ़ना।

इसके बाद, वे अपने दर्शकों को नैतिकता के विषय में सिखाते थे, क्योंकि जब हम उदार होते हैं तो मन अधिक लचीला हो जाता है। हम गलत कार्यों को करने से बचने में तथा सही कार्यों के संवर्धन में ही बुद्धिमत्ता समझने में अच्छी तरह प्रवृत्त हो जाते हैं।

तब बुद्ध अपने श्रोताओं को चार ब्रह्म विहारों में स्थापित करते थे। अंत में, यदि वे यह देखते थे कि सामर्थ्य विद्यमान है तो वे एकाग्रता तथा अंतर्दृष्टि सिखाते थे। इसी कारण बौद्ध

देशों में अपने शिष्यों को भिक्खु दान, शील, एवं भावना सिखाते हैं। शील द्वारा लंबी आयु प्राप्त होगी, तथा दान से भौतिक लाभ। अनुरुद्ध, विशाखा, अनाथपिण्डिक, तथा कई अन्य लोगों के उदाहरण के रूप में आप देखेंगे कि किस प्रकार दान ने उनके भव चक्र में एक बड़ी भूमिका निभाई थी।

वेलुद्वार के ग्रामीणों को प्रवचन[3]

किस प्रकार भगवान अपना शिक्षण अपने श्रोताओं के अनुकूल दिया करते थे, इसका एक दृष्टान्त वेलुद्वार के ग्रामीणों को बुद्ध द्वारा दिए गये प्रवचन में मिलता है। इसे ' धम्म के मार्ग पर अन्य लोगों की अपने से तुलना करने का प्रवचन' कहा जा सकता है। ग्रामीणों ने बुद्ध को बताया कि इस जीवन में वे अनेक संतानें तथा सुखद वस्तुएं जैसे इत्र, पुष्प, रजत, एवं स्वर्ण चाहते थे तथा मृत्यु के पश्चात देवलोक में पुनर्जन्म। यह सब वे कैसे प्राप्त करें?

बुद्ध ने उनसे यह नहीं कहा कि उन्हें ऐसे क्षणिक सुखों की इच्छा नहीं करनी चाहिए। उन्हें पता था कि मनुष्य अपने स्वयं के स्वार्थ से प्रेरित होकर कार्य करते हैं, तथा किसी व्यक्ति से यह कहना निरर्थक है कि उसे पूरी तरह उदासीन होकर काम करना चाहिये। अर्हत बनने के पहले यह असंभव है। हमारे कार्यों में सदैव कुछ न कुछ अहंभाव लगा ही रहेगा।

अत: उन्होंने उन्हें सिखाया कि स्वयं से दूसरों की तुलना कैसे करनी चाहिए। उन्होंने उनसे कहा कि वे निम्नलिखित तरीके से चिंतन मनन करें :- 'मैं जीना चाहता हूँ। मैं मरना नहीं चाहता। मुझे सुख अच्छा लगता है तथा दुख एवं पीड़ा नापसंद है। यदि कोई मेरी हत्या कर दे, तो यह सुखद एवं आनंदमय नहीं होगा। इसी प्रकार, यदि मैं किसी की हत्या करता हूं, तो वह उसके लिए सुखद एवं आनन्दमय नहीं होगा। जो स्थिति मेरे लिये सुखद एवं आनन्दमय नहीं है, वह दूसरों के लिये भी सुखद एवं आनन्दमय नहीं है। अत: वह स्थिति जो मेरे लिये सुखद एवं आनन्दमय नहीं है, उसे मैं दूसरों पर कैसे थोपूं?'

उसी तरह, व्यक्ति को चोरी, यौन दुर्व्यवहार, झूठ जो हमारा सौभाग्य नष्ट कर सकता है, मित्रों के बीच कलह, कठोर शब्दों, मूर्खतापूर्ण एवं फालतू बातों के विषय में चिंतन मनन करना चाहिए। यह समझ कर कि ये सभी अप्रिय करते हैं, व्यक्ति ऐसे कार्यों को करने से बचेगा, व्यक्ति दूसरों को इनसे बचने के लिये प्रोत्साहित करेगा, तथा व्यक्ति ऐसे अनैतिक कार्यों से परहेज़ की प्रशंसा करेगा।

अंत में, व्यक्ति बुद्ध, धम्म, एवं संघ में, उनकी गुणवत्ताओं को समझते हुए, श्रद्धा एवं दृढ़

विश्वास विकसित करेगा। हम पहले ही इन गुणों को बता चुके हैं, तथा श्रद्धा के गहनतर स्तर के अर्थ का स्पष्टीकरण भी दे चुके हैं।

बुद्ध ने वेलुद्वार के लोगों को अपना प्रवचन यह कह कर समाप्त किया कि नैतिकता के माध्यम से वे समाधि प्राप्त करने योग्य हो जायेंगे, जो उन्हें सोतापन्न पद की ओर ले जायेगी। तथा जो जागृति के पहले चरण में स्थापित हो जाता है, उसका अधोगति में कोई पुनर्जन्म नहीं होता।

तो यह प्रवचन उन लोगों के लिए होगा, जो पारमिताओं को दूसरे स्तर पर विकसित कर रहे हों। बुद्ध स्वयं ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने इन्हें सर्वोच्च स्तर तक विकसित किया था। पालि ग्रंथों में, जातक नामक एक संग्रह है, जिसमें बुद्ध के पिछले जन्मों की, जब वे बोधिसत्व थे, लगभग ५५ 0 कहानियां हैं, तथा उनको कितनी सारी तैयारियां करनी पड़ी थीं, उसे सराहने में वे हमारी सहायता करती हैं। नि:संदेह, वे उनके अनेक जन्मों में से केवल कुछ ही जन्मों के विषय में हैं।

वैशान्तर की कथा

बौद्ध देशों में, इन जातक कहानियों में से बुद्ध बनने के पहले की, इस मनुष्य लोक में उनके पूर्व जन्म की कथा सबसे अच्छी जानी जाती है।[४] उस जीवन में उनका नाम वैशान्तर था, और उस जीवनकाल में उन्होंने दानशीलता की पारमी भरपूर विकसित की। वे एक राजकुमार थे, किन्तु उनकी उदारता इतनी थी कि यथासंभव अपना सबकुछ, जो दान कर सकते थे, उसे दान कर दिया। राजसी हाथी जिसमें यह शक्ति थी कि वह जिस देश में रहे उसमें अच्छी वर्षा हो, उसे भी उन्होंने दे दिया। इस कारण, वे अपने राज्य से निर्वासित कर दिये गये। उनकी पत्नी और बच्चों ने उनके साथ जाने पर जोर दिया, और चूंकि वे किसी की याचना अस्वीकार नहीं कर सकते थे, उन्होंने अंत में अपने बच्चों तथा पत्नी को भी दे दिया। देवताओं के राजा इन्द्र या शक्र (पालि में, सक्क) ने एक मनुष्य के रूप में स्वयं को प्रच्छन्न कर उनकी पत्नी को मांग लिया, क्योंकि वे बोधिसत्व की पारमिताओं के विकास में सहायता करना चाहते थे, तथा उन्होंने सुनिश्चित किया कि उनकी पत्नी को कोई क्षति न पहुंचे। बच्चे एक ब्राह्मण द्वारा मांग लिये गये जिसे अपनी पत्नी के लिए सेवकों की आवश्यकता थी। किन्तु वैशान्तर के पिता, अर्थात राजा ने, ब्राह्मण को उनके बदले धन देकर बच्चों को वापस ले लिया।

तो, हो सकता है कि हम उस उच्च स्तर तक पारमिताओं को विकसित करने के लिये काम

न कर रहे हों, अतः हमें इस बात के लिये बाध्य नहीं महसूस करना चाहिये कि हम अपनी सभी वस्तुओं को तथा अपने सभी निकट एवं प्रिय लोगों को दान में दे दें। किन्तु हम और अधिक सहज उदारता का प्रयास कर सकते हैं, यह स्मरण करते हुये कि बुद्ध ने गृहस्थों को बुद्धिमानी के साथ अपने धन का उपयोग करने की सलाह दी थी, न केवल अपने परिवार के बाहर के लोगों को देकर, अपितु उत्तरदायी पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, पिता तथा माता बनकर।

बुद्ध का अंतिम जीवन

अपने अंतिम जीवन के पूर्व में बोधिसत्व तुषित स्वर्ग लोक में सेतकेतु देवता थे।[५] वहां वे सभी समुचित परिस्थितियों के एकत्र होने की प्रतीक्षा करते हैं। जब मनुष्य लोक में उनके कार्य के लिये अनुकूल सही परिस्थितियां प्रबल होती हैं, तो वे यह देखते हैं कि विश्व के किस भाग में कौन उनके लिये सही माता - पिता होंगे, तथा वे तब मां की कोख में प्रवेश करते हैं।

गौतम बुद्ध के लिये माता पिता, भारत में, आधुनिक नेपाल के निकट कपिलवस्तु में, महारानी मायादेवी तथा महाराज शुद्धोधन थे। उनके जन्म के समय, बत्तीस चमत्कार हुए, क्योंकि ब्रह्मांड की प्राकृतिक व्यवस्था में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हो गए। जब ऐसा हुआ तो उस समय, महाराज शुद्धोधन के राज दरबार के एक तपस्वी, कालदेवल (असित), तवतिंस देवलोक के देवताओं से वार्तालाप कर रहे थे। जब उन्हें बताया गया कि महाराज को एक पुत्र हुआ है, तथा विश्व में जश्न मनाया जा रहा है, तो वे राजमहल गये, एवं शिशु को उनके पास लाने के लिये कहा। जैसे ही महाराजा शिशु को अपने गुरु के समक्ष रखने वाले थे कि, शिशु ने उछल कर अपने पैर तपस्वी के सिर पर रख दिया। तपस्वी तत्काल समझ गये कि शिशु भावी बुद्ध थे। इस विचार से वे मुस्कुराये। फिर, अपनी अलौकिक शक्तियों द्वारा उन्होंने देखा कि वे भावी बुद्ध के उपदेशों को सुनने के लिये जीवित नहीं रह सकेंगे, और उनका पुनर्जन्म अरूपावचर ब्रह्मलोक में होगा। उन लोकों का, रूपावचर लोकों से किसी भी प्रकार का संपर्क संभव नहीं है, और इसलिए वे रो पड़े।

पांच दिन बाद, शिशु का नामकरण सिद्धार्थ हुआ, तथा राज ज्योतिषी ने उनके शरीर के चिह्नों को पढ़ कर यह भविष्यवाणी की कि वे या तो एक चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे या एक बुद्ध। तथापि, एक अन्य ज्योतिषी ने, यह इंगित करने के लिए कि केवल एक ही संभावना है, और वह है उनके बुद्ध बनने की, केवल एक उंगली ही उठाई। और उनका नाम कोण्डञ्ञ था।

महाराज चाहते थे कि उनका पुत्र एक चक्रवर्ती सम्राट हो तथा पूरे संसार पर राज्य करे,

अत: उन्होंने उसे विलासिता का जीवन प्रदान किया। वर्ष के तीन मौसमों के अनुरूप तीन महल बनाये गये। वह सब किया गया जिससे राजकुमार वासनाओं में ओतप्रोत हो जांय। महाराज ने आदेश दिया कि राजकुमार का कोई भी सेवक या सहयोगी कभी भी वृद्धावस्था, रूग्णता, तथा मृत्यु के विषय में एक शब्द भी न बोले। वे अपना व्यवहार ऐसा रखें जिससे यह लगे कि संसार में कोई अप्रिय बात होती ही नहीं। परिचारक एवं सेवक जिनमें रंचमात्र भी वृद्ध, कमजोर, या बीमार होने का संकेत मिलता था, उन्हें बदल दिया जाता था। इसके अतिरिक्त, नृत्य, संगीत, तथा आनन्दमय समारोह होते रहते थे।

तथापि, समय के साथ, एकरसता के कारण कामुक परिवेश की पकड़ शनै: शनै: राजकुमार सिद्धार्थ के मन पर ढीली पड़ने लगी। अपने असंख्य जन्मों में बुद्धत्व के महान लक्ष्य के लिए संरक्षित पुण्य की सारी मानसिक ऊर्जा स्वचालित रूप से जागी। समय समय पर, जब वासना के संसार का नियंत्रण उनके मानस पर से ढीला पड़ता, तो उनके आंतरिक व्यक्तित्व की उदीरणा होती, तथा उनका मानस समाधि की शक्ति के साथ शांत एवं पवित्र हो जाता, जैसे कि उनके शैशव में उन्हें तपस्वी कालदेवल के सिर के ऊपर उठाया था।

महान त्याग

साहस की परीक्षा प्रारंभ हुई। वे जानना चाहते थे कि राजमहल की दीवारों के बाहर क्या है? अपनी पहली बाहर की यात्रा के लिए उन्होंने राजसी उपवन में जाने का निर्णय लिया, यथाभूत प्रकृति न कि मानव रचित को देखने का यह उनका पहला प्रयास था। मार्ग में कोई भी अप्रिय दृश्य न हो, इसके लिये महाराज द्वारा ली गई सभी सावधानियों के उपरांत भी, उपवन जाते समय सिद्धार्थ ने एक वृद्ध व्यक्ति को देखा। इसके बाद, उन्होंने किसी घातक रोग से ग्रसित एक रोगी को देखा। फिर उन्हें एक शव का सामना करना पड़ा। अंत में, उन्हौंने एक भिक्खु को देखा। अत: वे सोचने लगे। उनका मानसिक दृष्टिकोण बदल गया था। उनका मानस दोष मुक्त हो गया तथा संस्कार लोक में, अर्थात मानसिक शक्तियों की भूमि में संरक्षित उनके स्वयं के पुण्य की शक्तियों के साथ गूंजने लगा। तब तक, उनका चित्त नीवरणों से मुक्त, प्रशांत, शुद्ध, एवं सुदृढ़ हो गया था। उन्होंने बुढ़ापा, बीमारी, और मृत्यु की वास्तविकता को देखा लिया था, तथा भिक्खु के चेहरे पर शांत अभिव्यक्ति के माध्यम से उन्हें एक संकेत मिला कि इन सभी दुखों का कोई विकल्प भी हो सकता है।

उनके दृष्टिकोण में यह परिवर्तन उस रात को हुआ जब उनकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म

दिया। किन्तु मन को डांवाडोल करने वाली किसी भी बात से वे प्रतिरक्षित थे। उनके भीतर के अधिष्ठान के सद्गुण बाहर उभर कर आये, जिसके माध्यम से वे दृढ़ संकल्प के लिए सक्षम हुए, तथा उन्होंने जन्म, जरा, दुख, तथा मृत्यु से बचने के लिये मार्ग का अन्वेषण करने का अपना मन बना लिया।

यह पवित्र दृढ़ संकल्प उन्होंने आधी रात को लिया। उन्होंने अपने परिचर छन्ना से अपने घोड़े खण्डिक को तैयार करने के लिये कहा। वे अपने पुत्र की एक झलक देखने के लिये गये। उन्होंने पुत्र का नाम राहुल अर्थात बाधक रखा था, क्योंकि वे समझते थे कि पुत्र उनके राजकुमार के रूप में बने रहने के लिए एक प्रलोभन होगा। जब वे अपनी पत्नी के कक्ष में गये, तो देखा कि उनकी पत्नी की बाहु से शिशु छिपा है, किन्तु वे फिर बाहर आ गये, यह सोचते हुए कि यदि वे अपने पुत्र को देखने के लिये अपनी पत्नी को छूते हैं, तो वह जाग सकती है, और उनसे बात कर के उनका संकल्प विचलित कर सकती है। अत: उन्होंने पारिवारिक जीवन तथा संसार से सभी संबंध तोड़ दिये और एक महान त्याग किया। वे नगर से बाहर अनोमा नदी पर गये। उन्हौंने वह नदी पार की, यह ठान कर कि जब तक उनको अपना लक्ष्य नहीं प्राप्त होता, वे वापस नहीं लौटेंगे।

वे अपने हाथ में एक भिक्षापात्र लेकर तपस्वी के रूप में रहने लगे। तथा उनका पहला कदम अपने आप को दो प्रसिद्ध ब्राह्मण शिक्षकों, आलार एवं उद्दक के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में प्रस्तुत करना था। आलार आत्मा में विश्वास पर जोर देते थे तथा यह सिखाते थे कि भौतिक सीमाओं से मुक्त होने पर ही आत्मा पूरी तरह से मुक्त होती है। इससे बोधिसत्व संतुष्ट नहीं हुए। इसके बाद वे उद्दक के यहां गये, जो कर्म के परिणामों पर तथा आत्मा के आवागमन पर अधिक जोर देते थे। उनमें से कोई भी 'आत्मा' की अवधारणा से परे नहीं जा सका, तथा बोधिसत्व को लगा कि जानने के लिए कुछ और भी है। जब उनके दोनों गुरुओं में से प्रत्येक ने अपने पद के स्तर पर उन्हें भी रखने का प्रस्ताव दिया तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया तथा वे स्वयं ही मुक्ति का मार्ग ढूंढ निकालने निकल पड़े।

अब तक, वे रूपावचर एवं अरूपावचर के आठ ध्यानों (समापत्ति) में पारंगत हो गये थे तथा अलौकिक शक्तियों में निपुण भी, जिसके कारण वे अतीत और भविष्य के कई विश्व चक्रों की घटनाओं को जानने में सक्षम भी हो गये। किन्तु यह सब सांसारिक क्षेत्र के अंतर्गत ही था तथा इनसे बोधिसत्व संतुष्ट नहीं थे, उनकी महत्वाकांक्षा जन्म, दुख, और मृत्यु के इस भवचक्र से बाहर निकलने की थी।

तपस्या

बोधिसत्त के साथ पांच तपस्वी भी जुड़ गये, और उनमें से एक कोण्डञ्ञ थे, जिन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि सिद्धार्थ जागृति प्राप्त करेंगे। छ वर्षों तक, बोधिसत्व ने दुख की समाप्ति के अन्वेषण के लिये अनेक तपस्याओं का प्रयास किया। उस समूची अवधि में पांच तपस्वियों ने उनकी अच्छी तरह सेवा की। उन्होंने उपवास किया तथा विभिन्न अनुशासनों के साथ घोर तपस्या की, जबतक वे दुबले होकर लगभग एक कंकाल मात्र नहीं हो गये। वास्तव में, एक दिन वे थकावट के कारण मूर्छित होकर नीचे गिर गये। जब उन्हें होश आया तब उन्हें एहसास हुआ कि चरम तपस्या सही मार्ग नहीं है। उन्होंने अपनी पद्धति बदल दी और वे एक मध्यम मार्ग का अनुसरण करने लगे, तथा उन्होंने पाया कि अब उनकी जागृति का पथ स्पष्ट हो गया है। पाँचो तपस्वियों ने, जो ऐसा मानते थे कि कठोर तपस्या ही श्रेयष्कर है, यह निर्णय लिया कि अब सिद्धार्थ ने गंभीरता से काम करना छोड़ दिया है। अत: वे निराश होकर, उन्हें वहीं छोड़ कर चले गये।

जागृति

ढाई हजार से अधिक वर्षों पूर्व वैशाख पूर्णिमा (बर्मी पंचांग में, कासों की पूर्णिमा) की संध्या को, बोधिसत्व सिद्धार्थ उरुवेला वन में, निरंजरा नदी के तट पर, वर्तमान बोधगया में, एक बोधि वृक्ष के नीचे पर्यंक बद्ध (पालथी मार कर) बैठ गये। उन्होंने कठोरतम संकल्प लिया - कि वे उस आसन से किसी भी कारणवश तबतक नहीं उठेंगे जब तक उन्हें जागृति का सत्य, बुद्धत्व न प्राप्त हो जाय, भले ही इस प्रयास में उनका जीवन ही न चला जाय।

सत्य के अन्वेषण के लिए अत्यंत आवश्यक, चित्त एकाग्रता सुरक्षित करने के लिए, जैसे ही उन्होंने अपनी सारी मानसिक शक्तियों को एकत्र करने का प्रयास किया, तो उन्होंने पाया कि पहले की अपेक्षा इस अवसर पर मन को संतुलित करना उतना सरल नहीं था। उनके चारों ओर निम्न लोकों एवं उर्ध्व लोकों की शक्तियों के संयोजन के अतिरिक्त, उनके मन के संतुलन को विचलित करने में सक्षम अन्य शक्तियां भी सबल थीं। उनके द्वारा सामान्यतया सुरक्षित प्रकाश विकिरण के विरुद्ध अभेद्य शक्ति पुञ्जों द्वारा असामान्य प्रतिरोध था। संभवत: इस कारण कि यह बुद्धत्व प्राप्ति के लिए उनका अंतिम प्रयास था, अत: अशुभ शक्तियों का सर्वोच्च नियंत्रक मार, इस दृश्य के पीछे था। यहां ध्यान देने योग्य रोचक बात यह है कि मार उस देव लोक में है, जहां दूसरों की रचनाओं में आनंद लिया जाता है – उसकी यह गलत धारणा है कि सभी

अनुबंधित वस्तुएं उसी की हैं। तथापि, बोधिसत्व ने शनैः शनैः किन्तु निश्चित रूप से प्रगति की और इसमें उनके पुण्यों के मानसिक बलों से सहायता प्राप्त हुई, जिन्हें सही समय पर अनिवार्य रूप से सहायक होना ही था। उन्होंने एक प्रण लिया तथा अपने वर्चस्व के लिए संघर्ष में हाथ बंटाने हेतु उन सभी देवताओं एवं ब्रह्माओं का आह्वान किया, जिन्होंने उनको दस महान पारमिताओं की पूर्ति करते देखा था। आप ने देखा होगा कि बर्मा की बुद्ध की प्रतिमाओं में बुद्ध एक हाथ से पृथ्वी का स्पर्श करते दिखाई देते हैं। पारमिताओं की आपूर्ति के लिये किये गये, उनके सभी पिछले कर्मों के साक्षी के रूप में, पृथ्वी को आमंत्रित करने का यह एक प्रतीक है।

ऐसा करने से, ब्रह्माओं तथा देवताओं की विशुद्ध एवं उत्कृष्ट मानसिक शक्तियों के संयोजन का प्रभाव अच्छा पड़ा। कुछ समय के लिए अभेद्य लग रहे सबल शक्ति पुञ्ज विघटित होने लगे, तथा मन पर नियंत्रण में निरंतर सुधार के साथ, उनका सदैव के लिये उन्मूलन हो गया। सभी नीवरण अभिभूत हो गये, तत्पश्चात वे अपनी चित्त एकाग्रता की शक्ति का संवर्धन करने में सक्षम तथा अपने चित्त को संपूर्ण पवित्रता, शांति, एवं समभाव की स्थिति में ले जाने में सफल हुए। धीरे धीरे, उनकी चेतना सच्ची अंतर्दृष्टि से अभिभूत हो गई। एक प्रेरणा स्वरूप उनकी चेतना में उनकी महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान प्रकट हुए।

अंतर्मुखी साधना के माध्यम से स्वयं के भीतर की वास्तविकताओं की प्रकृति का अध्ययन करने पर उन्हें स्पष्ट हुआ कि मानव शरीर में कोई सार नहीं है जैसा कि प्रतीत होता है। यह एक असंख्य कोटि कलापों के संयोजन के अतिरक्त और कुछ भी नहीं है। कलाप जिनको हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, अस्तित्व की न्यूनतम इकाई हैं। और अधिक विस्तार से अध्ययन करने पर उन्हें पता चला कि ये कलाप भी निरंतर परिवर्तनशील या प्रवाहमय हैं। यही बात मानस के विषय में भी सत्य है। मन तो बहिर्गामी मानसिक शक्तियों, सृजनात्मक शक्तियों, तथा अंतर्गामी शक्तियों अर्थात भवचक्र के असंख्य जन्मों में किसी व्यक्ति की प्रणाली में निरंतर प्रवेश करती हुई सृजित शक्तियों का प्रतीक मात्र है।

तो, बुद्ध ने घोषित किया कि उनमें प्रज्ञा चक्षु का उदय तब हुआ जब उन्होंने अहं की सारतत्व संबंधी मिथ्या दृष्टि को दूर किया; क्योंकि उन्होंने कलापों को एकाग्रता (समाधि) के सूक्ष्मदर्शी से देखा और उन्हें नश्वरता (अनित्यता) के विधान से सत्वहीन, तुच्छ या मात्र व्यवहार के रूप में पाया। बौद्ध धर्म में, जिसे हम पञ्ञति कहते हैं, अर्थात अवधारणा, विचार, या पदवीकरण, उसका उन्होंने परित्याग कर दिया। जब उन्होंने इस अवधारणा प्रक्रिया या पदवीकरण का परित्याग कर दिया तब उन्होंने सत्य की स्थिति (परमर्थ, पालि में, परमत्थ) अर्थात शक्तियों के स्वभाव के सत्य या परम सत्य को प्राप्त किया।

स्वयं के भीतर सतत मानसिक एवं भौतिक परिवर्तन (अनित्यता, पालि में अनिच्च) का अनुभव करते हुए, उन्होंने अगली कड़ी, दु:ख के सत्य को आत्मसात किया। तत्पश्चात उनका अहंभाव विघटित हो गया, शून्य ही शेष रहा, तथा वे दुख से परे के पद (दु:ख-निरोध) में पहुंचे जहां आत्म या स्वयं से किसी प्रकार के लगाव का भाव शेष नहीं बचता। उनके लिये मानस एवं भौतिकता, निरंतर आवर्ती तथा प्रतीत्य समुत्पाद या कारण कार्य विधान के अंतर्गत शून्य प्रकृयायें मात्र थीं। सत्य का साक्षात्कार हो गया। भ्रूण बुद्ध के अंतर्निहित गुण तब विकसित हुए, तथा वैशाख पूर्णिमा दिवस के उषाकाल में उन्हें पूर्ण जागृति प्राप्त हुई।

सिद्धार्थ ने सही अर्थ में पूर्ण जागृति या सम्यक संबोधि प्राप्त कर ली, तथा एक जागृत, एक प्रबुद्ध, एक सर्वज्ञ बुद्ध हो गये। वे ऐसे जागृत थे जिसकी तुलना में अन्य सभी मनुष्य नींद में थे तथा स्वप्न देख रहे थे। वे ऐसे प्रबुद्ध थे जिनकी तुलना में अन्य सभी मनुष्य अंधेरे में भटक एवं टटोल रहे थे। वे ऐसे ज्ञान के साथ सब कुछ जानते थे जिसकी तुलना में अन्य सभी मनुष्यों का ज्ञान अज्ञानता मात्र था।

हमने बुद्ध की जीवनी का यह विवरण सयाजी ऊबा ख़ीं की पुस्तिका 'बौद्ध धर्म क्या है'[६] से लिया है। बुद्धत्व के महत्व को तथा बुद्धत्व प्राप्त करने में कठिनाइयों को समझाने में सहायता के लिए, इसके पहले उन्होंने बौद्ध अवधारणा के अनुसार ब्रह्मांड का विवरण दिया है। चूंकि हमने इन प्रवचनों में बहुधा अस्तित्व की इकत्तीस भूमियों या लोकों का उल्लेख किया है, आइए हम थोड़ी और सूक्ष्मता से उन पर दृष्टिपात करते हैं।

अस्तित्व के इकत्तीस लोक

सयाजी ऊ बा ख़ीं ने स्पष्ट किया कि तीन सृष्टियां या लोक हैं जो आपस में गुंथे हुए एवं एक दूसरे में व्याप्त हैं।[७] वे हैं अवकाश लोक (पालि में, ओकास लोक), संस्कार लोक (पालि में, संखार लोक), तथा सत्व लोक (पालि में सत्ता लोक)। लौकिक संसार अवकाश लोक में समाहित है। मानसिक शक्तियों का उत्पाद, जो दृश्य या अदृश्य प्राणियों का क्षेत्र है, वह संवेदनशील प्राणियों की सृष्टि अर्थात सत्व लोक है। बदले में, ये मानसिक शक्तियां संस्कार लोक में रचित या सृजनात्मक होती हैं। मानस एवं पदार्थ (नाम-रूप) कार्य कारण विधान के प्रभाव में होते हैं। इन तीन सृष्टियों या लोकों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

इस 'तीन में एक' ब्रह्मांड के भीतर कोटि कोटि विश्वव्यवस्थायें या चक्रवाल (पालि में, चक्कवाल) हैं। उनकी गणना असंभव है। हम इनमें से केवल एक विश्वव्यवस्था या विश्वप्रणाली

में रहते हैं। हमारी निकटतम दस हजार विश्व प्रणालियां जाति क्षेत्र (पालि में, जाति खेत्त) कहलाती हैं, क्योंकि वे किसी बुद्ध की उत्पत्ति का क्षेत्र हैं। जब बुद्ध ने कपिलवस्तु के निकटवर्ती वन में महासमय नाम का प्रवचन दिया था, तो उस सभा में हमारी अपनी विश्वप्रणाली के ब्रह्माओं एवं देवताओं के अतिरिक्त, उन सभी दस हजार विश्व प्रणालियों के ब्रह्मा एवं देवता भी विद्यमान थे।

भगवान बुद्ध इतने अत्यधिक विकसित हैं कि वे अपनी असीम मेत्ता एवं करुणा से युक्त विचार तरंगों को अरबों विश्व प्रणालियों के प्राणियों को भेज सकते हैं, क्योंकि वे उनके प्रभाव क्षेत्र (अञ्ञा खेत्त) के अंतर्गत हैं। शेष असंख्य विश्व प्रणालियां जो बुद्ध के प्रभावी विचार तरंगों की पहुंच से बाहर हैं, वे अनंत अंतरिक्ष (विषय खेत्त) कहे जाते हैं।

इस ब्रह्मांड में हमारे विश्व की तुच्छता भयावह मात्र है। समूचा मानव लोक इस ब्रह्मांड में एक कण मात्र है।

आइए, अब हम अपनी विश्व व्यवस्था या चक्रवाल में, अस्तित्व की इकत्तीस भूमियों या लोकों की बात करते हैं। नि:संदेह, अन्य सभी विश्व प्रणालियों में भी, वैसे ही है। इन्हें तीन श्रेणियों में इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :- उच्चतम श्रेणी में ब्रह्माओं के अरूप-लोक हैं, उसके नीचे सूक्ष्म भौतिकी वाले ब्रह्माओं के रुपलोक तथा सबसे नीचे कामावचर लोक जिनमें देवलोक, मनुष्य लोक, तथा निम्न लोक समाहित हैं। ब्रह्माओं के चार अरुप लोक हैं तथा इन लोकों के प्राणी निम्न लोकों के प्राणियों के संपर्क में नहीं आ सकते। इसी कारण जब साधु शिक्षक असित को पता चला कि वे बुद्ध के उपदेशों को नहीं सुन सकेंगे, क्योंकि उनकी गति इन्हीं लोकों की है, तो वे चिंतित हो गये। उन लोकों में, वे सर्वोत्तम चित्त एकाग्रता में होंगे, किन्तु वे जन्म एवं मृत्यु के चक्र से परे जाने का अवसर नहीं पा सकेंगे।

सूक्ष्म भौतिकी ब्रह्माओं की सोलह भूमियां अर्थात रुप लोक हैं। यहां पर पुनर्जन्म लेने वाले ब्रह्मा इतने लंबे समय तक जीवित रहते हैं कि वे स्वयं को अमर समझते हैं, तथा जब वे चाहते हैं कि उनके लोक में अन्य प्राणी भी हों तो तत्क्षण अन्य ब्रह्मा वहीं पुनर्जन्म लेते हैं, अत: वे स्वयं को सृजनकर्ता समझते हैं।

इन ब्रह्मलोकों में समाधियों के माध्यम से पहुँचा जाता है; जैसे कि ये अंतरिक्ष में हों। अकामावचर लोकों में कामुकता या अशुद्धता का कोई दोष नहीं होता। ऐसा कहें कि ये दीप्तिमान होते हैं। वहाँ, कोई भी प्राणी एक परिपूर्ण, अतीन्द्रिय शांति का आनन्द प्राप्त करता है। अत: जब हम अपने चित्त को शुद्धता की आदर्श स्थिति तक विकसित करने का प्रयास करते

हैं, तो हम अपने चित्त को प्रथम ध्यान की प्रकृति के अनुरूप लाने का प्रयास करते हैं। हमारा प्रयास होता है कि कम से कम अधोगतियों के निम्न चुंबकीय क्षेत्र तथा कामावचर लोकों के ऊर्ध्व चुंबकीय क्षेत्र से बाहर निकलें।

ब्रह्म लोकों के नीचे, सभी प्राणी कामावचर लोकों में हैं। छह देव लोकों में दिव्य प्राणी रहते हैं, जो वासनाओं का सर्वोत्तम आनन्द लेते हैं। व्यक्ति एक नैतिक जीवन जीने तथा पुण्य कार्य करने के माध्यम से इन लोकों में जाता है। वहाँ जीवन का आनंद लेते लेते, जब पुण्य कर्मों का अवशेष समाप्त हो जाता है, तथा जीवन की अवधि का अंत, तो पुनर्जन्म किसी भी लोक में हो सकता है।

हम देव लोकों तथा अधो लोकों के बीच में, मनुष्य लोक में रहते हैं। चार अधो लोक हैं :- भूमिगत दानवों का असुर लोक, भूतों का प्रेत लोक (पालि में, पेत लोक), जानवरों का तिरिच्छन लोक, तथा नारकीय नीरय लोक।

मानस से उत्पन्न मानसिक शक्तियों के, एवं विचार, शब्द तथा कृत्य रूपी संस्कारों के, चरित्र पर निर्भर करते हुए, ये सभी इकत्तीस लोक, शुद्ध या अशुद्ध, शीत या उष्ण, उज्वल या अंधकारपूर्ण, हल्के या भारी, सुखद या अतिदुखद होते हैं। इस बात के आधार पर कि, हमारे द्वारा उत्पन्न मानसिक शक्तियां कुशल हैं या अकुशळ, वे इन लोकों में स्थापित हो जाती हैं, जैसे कि हमारे भविष्य के जीवन के लिये एक स्थान आरक्षित किया जा रहा हो। यदि हम अपने वर्तमान स्थान का सर्वोत्तम उपयोग करते हैं, यदि हमें जैसा प्रयास करना चाहिये हम वैसा करते हैं, आवश्यक पृष्ठभूमि में हैं, तथा इस एक में तीन विश्व प्रणाली को भेद कर निर्वाण (पालि में, निब्बाण) प्राप्त कर लेते हैं, तो कोई भी अच्छी या बुरी मानसिक शक्ति हमें जन्म और मृत्यु के चक्र में बांधने में सक्षम नहीं हो सकेगी।

संदर्भ सूची

[1]*Buddhist Legends*, III 60f.

[2]*Buddhist Legends*, II 120.

[3]*The Kindred Sayings*, V 307-311. संयुत्त निकाय, ५. महावग्ग; ११. सोतापत्ति संयुत्तं;

१. बेलुद्वार वग्गो; **वेलुद्वारेय्य सुत्तं**

[4]Jataka No. 547.

[5]See Samantapasadika, I 161.

[6]See *Dhamma Texts*, pp 5-12.

[7]See *Dhamma Texts*, pp. 3-5, and *The Path of Purification*, Chapter VII, ¶¶ 37-45.

दशम दिवस, प्रात: प्रवचन

विपक्ष को अभिभूत करना

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा ।

योधेथ मारं पञ्ञावुधेन, जितञ्च रक्खे अनिवेसनोसिया ।।

इस शरीर को मिट्टी के घड़े के समान (भंगुर) जान, और इस चित्त को गढ़ के समान (रक्षित तथा दृढ़) बना, प्रज्ञारूपी शस्त्र के साथ मार से युद्ध करे। (उसे) जीत लेने पर भी (चित्त की) रक्षा करे और अनासक्त बना रहे।

धम्मपद, गा० ४०

मेत्ता भावना

बुद्ध जब श्रावस्ती (पालि में सावत्थी) में विहार कर रहे थे, तब उन्होंने पांच सौ भिक्खुओं के संदर्भ में, जो वन में साधना के लिए गये थे, यह गाथा दी थी, ।[१]

बुद्ध ने उन पांच सौ भिक्खुओं को एक कर्मस्थान अर्थात ध्यान का विषय दिया, जिससे कि वे अर्हत्व के लिए काम कर सकें, तथा भिक्खु एक सौ लीग चलकर एक बड़े गांव में पहुंचे। ग्राम वासियों ने उन्हें भोजन कराया और तब पूछा, 'भन्ते, आप लोग कहां जा रहे हैं?'

भिक्खुओं ने कहा 'किसी सुखद स्थान पर।' तब ग्रामीणों ने कहा, 'भन्ते, आप सभी इन तीन महीनों तक यहीं निवास करें। आपके निर्देशन में हम त्रिशरणों का तथा सदाचार के शिक्षापदों का दृढ़ता से पालन करेंगे। जब भिक्खुओं ने सहमति प्रकट की, तो ग्रामीणों ने समीपवर्ती वन के विषय में बताया और उनसे कहा, 'वहीं अपना आवास बनाइये।'

उस वन में पुण्यवान भूमिगत देवता निवास करते थे, तथा भिक्खुओं को आता देखकर, उन्होंने सोचा, 'एक भिक्खु समुदाय हमारे वन में आया है। यदि वे यहां रहते हैं, तो हमारे लिये अपनी संतान एवं पत्नी को लेकर पहले की तरह वृक्षों पर चढ़ कर वहां रहना अनुचित होगा।' अत: 'भिक्खु तो केवल रात भर रुकेंगे। कल प्रात: वे निश्चित रूप से चले जायेंगे।' यह विचार करते हुए वे वृक्षों से नीचे आ गये तथा धरती पर बैठ गये, किन्तु अगले दिन, भिक्खु गांव में भिक्षाटन के लिये गये और पुन: वन में लौट आए। तो देवताओं ने सोचा, 'इस भिक्खु समुदाय को किसी ने कल के लिए आमंत्रित किया होगा। इसी कारण वे लौट आए हैं। वे आज नहीं

जायेंगे, परन्तु कल वे निश्चित रूप से चले जायेंगे ।' और ऐसा ही दो सप्ताह तक चलता रहा ।

अंत में, देवताओं ने यह निष्कर्ष निकाला, 'इन भिक्खुओं का यहां तीन महीने तक रहने का इरादा है । तथा हम अपने परिवारों के साथ वृक्षों में ऊपर नहीं जा सकेंगे । यहां भूमि पर रहना अधिक कष्टकर होगा । हम इन भिक्खुओं को कैसे दूर भगायें?'

तत्पश्चात भिक्खुओं ने शरीर रहित सिर तथा सिर रहित धड़ देखे, एवं शयन कक्षों और दिवा कक्षों में राक्षसी ध्वनियां सुनीं । ये दृश्य देवों द्वारा भेजे गये थे । इसके अतिरिक्त, भिक्खु छींक, खांसी तथा अन्य रोगों से ग्रसित हो गये । इन सब कारणों से उन्होंने बुद्ध के पास जाने का निर्णय लिया । अत: वे वन त्याग कर वापस श्रावस्ती आये, तथा बुद्ध की वन्दना कर एक ओर बैठ गए ।

तो बुद्ध ने उन से पूछा कि जहां वे गए थे, क्या वे वहां रह सके थे । उन्होंने उत्तर दिया, 'भन्ते, जब हम वहाँ रह रहे थे, तब भयभीत दृष्य हमारे समक्ष प्रस्तुत हुए । वह इतना अप्रिय था कि हमने उस स्थान को छोड़ देने का निर्णय लिया । अत: हमने उस स्थान को छोड़ दिया, और आप के पास लौट आए हैं ।' तब बुद्ध ने उनसे कहा, 'भिक्खुओं, आपको उस स्थान पर लौट जाना चाहिए ।' किन्तु उन्होंने उनसे कहा, 'भन्ते, हम ऐसा नहीं कर सकते ।'

बुद्ध ने कहा, 'भिक्खुओं, जब आप वहाँ पहली बार गये थे, तब आप बिना किसी शस्त्र के गये थे । अब जब आप जायें तो साथ में एक शस्त्र भी लेकर जायें ।' तथा भिक्खुओं ने पूछा, 'किस प्रकार का शस्त्र, भन्ते?'

बुद्ध ने उत्तर दिया, 'मैं आपको एक शस्त्र दूंगा, तथा जो श्स्त्र मैं आपको दूंगा, जब आप वहां जांय तो आप उसे अपने साथ लेकर जांय ।' तथा बुद्ध ने उन्हें मेत्त सुत्त का प्रवचन दिया ।[२]

करणीयमत्थ कुसलेन, यन्तं सन्तं पदं अभिसमेच्च ।

सक्को उजू च सूजू च, सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ।।१।।

शान्ति पद (निर्वाण) की प्राप्ति चाहने वाले, कल्याण-साधन में निपुण व्यक्ति को चाहिये कि वह

योग्य, सरल व अत्यंत सरल बने । उसकी बात सुन्दर, मधुर और विनीत हो ।।१।।

सन्तुस्सको च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति ।

सन्तिन्द्रियो च निपको च, अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ।।२।।

वह संतोषी हो, सहज ही पोष्य हो और सादा जीवन व्यतीत करने वाला हो । उसकी

इन्द्रियां शान्त हों, वह चतुर हो, अल्प भाषी हो और कुलों में आसक्ति रहित हो ।।२।।

न च खुद्दं समाचरे किञ्चि, येन विञ्ञू परें उपवदेय्युं ।

सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ।।३।।

ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करें, जिसके लिये दूसरे जानकार लोग उसे दोष दें । (और इस प्रकार मैत्री करें कि) सभी प्राणी सुखी हों, क्षेमी हों और सुखितात्मा हों ।।३।।

ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा व अनवसेसा ।

दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमा रस्सका'णुकथूला ।।४।।

दिट्ठा वा ये वा अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे ।

भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ।।५।।

जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दिखाई देने वाले या न दिखाई देने वाले, निकट के या दूर के, उत्पन्न हुए या भविष्य में उत्पन्न होने वाले, जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुखपूर्वक रहें ।।४-५।।

न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञे थ कत्थचि नं कञ्चि ।

ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ।।६।।

कोई दूसरे की बुराई या वंचना न करे । कभी किसी का अपमान न करे । वैमनस्य या विरोध के कारण एक दूसरे के दुख की इच्छा न करे ।।६।।

माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्त मनुरक्खे ।

एवम्पि सब्ब-भूतेसु, मानसं भावये अपरिमाणं ।।७।।

जिस प्रकार एक माँ अपनी जान की परवाह किये बिना अपनी इकलौती संतान की रक्षा करती है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति अपार प्रेम-भाव बढ़ावें ।।७।।

मेत्तञ्च सब्ब-लोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं ।

उद्धं अधो च तिरियञ्च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं ।।८।।

बिना बाधा, बिना वैर व बिना शत्रुता के, ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे, सारे संसार के प्रति असीम प्रेम-भाव व मैत्री बढ़ावें ।।८।।

तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतस्स बिगतमिद्धो ।

एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ।।९।।

खड़े रहते हुए, चलते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, जबतक जागृत रहें, तब तक इसी प्रकार की स्मृति बनाए रहें । इसी को ब्रह्म-विहार कहते हैं ।।९।।

दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा, दस्सनेन सम्पन्नो ।

कामेसु विनेय्य गेधं, न हि जातु गब्भ सेय्यं पुनरेती'ति ।।१०।।

ऐसा नर कभी मिथ्या दृष्टि में न पड़ कर, शीलवान हो, विशुद्ध-दर्शन से युक्त हो, काम-तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ।।१०।।

सुत्त निपात, गाथा १४३-१५२

यह प्रवचन देने के बाद, बुद्ध ने भिक्खुओं से कहा, 'वन में अपने आवासों के चारों ओर इस सुत्त का पाठ कीजिये, और तब आप अपने आवासों में वापस जा सकते हैं ।' तथा उन्होंने उन्हें वापस भेज दिया ।

उन्होंने बुद्ध को नमन किया तथा वापस वन में चले गये । अब जब कि वे मेत्त सुत्त से सशस्त्र थे, उनके प्रति पृथ्वी देवों का दृष्टिकोण बहुत भिन्न हो गया । उनके इसका पाठ करने के बाद, पृथ्वी देवों के मन में भिक्खुओं के प्रति मैत्री भावना अनुभूत होने लगी । वे उनसे मिलने के लिए बाहर आते, उनके चीवर एवं पात्र लेकर रखते, उनके हाथ पांव की मालिश करने के लिये प्रस्तुत होते, चारों ओर सबल रक्षक तैनात करते, तथा भिक्खुओं के साथ मिलजुल कर बैठते । एक भी दानवी ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती । भिक्खुओं का चित्त शांत हो गया, तथा वे रात दिन विपस्सना के प्रयास में सक्षम हो गये । वे एक ऐसी तकनीक का उपयोग कर रहे थे जो विशेष रूप से भिक्षुओं के लिये अनुकूल है, जिसमें उनकी काया में निहित क्षय एवं मृत्यु का प्रत्यवेक्षण सम्मिलित है । भगवान बुद्ध ने देखा कि उन्होंने अंतर्दृष्टि विकसित करना प्रारंभ कर दिया था, अत: उन्होंने स्वयं का एक तेजस्वी प्रतिरूप भेजा और ऐसा प्रतीत हुए जैसे वे स्वयं छह रंगों की प्रकाश किरणों का विकिरण करते हुए उनके समक्ष बैठे हों । तथा उन्होंने वह गाथा उद्घोषित की जिसको हमने प्रारंभ में उद्धृत किया है :-

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा ।

योधेथ मारं पञ्ञावुधेन, जितञ्च रक्खे अनिवेसनोसिया ।।

इस शरीर को मिट्टी के घड़े के समान (भंगुर) जान, और इस चित्त को गढ़ के समान (रक्षित तथा दृढ़) बना, प्रज्ञारूपी शस्त्र के साथ मार से युद्ध करे । (उसे) जीत लेने पर भी (चित्त की) रक्षा करे और अनासक्त बना रहे ।

धम्मपद, गा० ४०

यह कथा हमें दर्शाती है कि मेत्ता की सर्व प्रथम शिक्षा दूसरों की भलाई मात्र के लिए ही नहीं दी गई थी, अपितु आत्म-सुरक्षा के लिये भी । तथा, इसके पहले कि हम मेत्ता भाव के विचार भेज सकें, हमें नैतिक जीवन के माध्यम से एवं सरलता से संतोष प्राप्त करने के माध्यम से अपने आप को तैयार करना होगा । आप ने ध्यान दिया होगा कि प्रारंभ में, जिस व्यक्ति ने पूर्ण जागृति नहीं प्राप्त की है, उसके लिये मेत्ता भाव का अभिप्राय निर्वाण प्राप्त करना है । पूर्ण जागृति प्राप्त करने के बाद ही, मेत्ता को पूरी तरह नि:स्वार्थ भेजा जा सकता है ।

बुद्ध जो कि स्वजागृत थे, सभी को मेत्ता, किसी भी अन्य से श्रेष्ठतर रूप में, भेजने में, सक्षम थे । तथा जो हम तक पहुंची हैं, उनके जीवन की सारी कथाओं में, हम देख सकते हैं कि उनके प्रत्येक विचार, शब्द, और कृत्य मेत्ता, धैर्य, करुणा, और समभाव से किस प्रकार ओत प्रोत थे । हम दो उदाहरण देखते हैं ।

बुनकर की बेटी की कथा

अन्धभूतो अयं लोको, तनुकेत्थ विपस्सति ।

सकुणो जालमुत्तोव, अप्पो सग्गाय गच्छति ।।

(प्रज्ञा चक्षु के अभाव में) यह लोक अंधे जैसा है, यहां विपस्सना करने वाले थोड़े ही हैं । जाल से मुक्त हुए पक्षी की भांति विरले ही सुगति अथवा निर्वाण को जाते हैं । (बाकी तो जाल में ही फंसे रहते हैं ।)

धम्मपद, गाथा १७४

यह गाथा बुद्ध ने एक बुनकर की बेटी के संदर्भ में कही थी, जब वे अग्गालव पुण्यस्थली में निवास कर रहे थे ।[३] एक दिन, भगवान बुद्ध को भोजन के लिए आलवि निवासियों ने आमंत्रित किया । भोजन के अंत में अनुमोदन के समय, उन्होंने उन्हें यह कह कर निर्देश दिया :-

मरण अनुस्मृति अर्थात मृत्यु पर ध्यान की साधना करें । अपने आप से कहें, 'मेरा जीवन अनिश्चित है । मेरी मृत्यु निश्चित है । मैं निश्चित रूप से मरूंगा । मौत मेरे जीवन की समाप्ति होगी । जीवन अस्थिर है । मौत सुनिश्चित है ।' जिन्होंने मृत्यु पर ध्यान का अभ्यास नहीं किया है, वे अपना अंतिम समय आने पर भय से कांप उठेंगे, तथा वे आतंकित हो चीत्कार करते मरेंगे, जैसे कोई व्यक्ति एक साँप देखे, किन्तु उसके पास स्वयं को बचाने के लिये कोई छड़ी न

हो, वह भय से त्रस्त होगा। किन्तु वे जो मरण अनुस्मृति का अभ्यास करते हैं, मृत्यु आने पर भयभीत नहीं होंगे। वे एक सुदृढ़ व्यक्ति की तरह होंगे, जो दूर से कोई साँप देखता है, तो अपनी छड़ी लेता है, तथा साँप को एक तरफ उछाल कर फेंक देता है। अत: मरण अनुस्मृति का अभ्यास करें।

एक को छोड़कर, आलवि के सभी लोग पहले की तरह, अपने सांसारिक कार्यों में लिप्त हो गये। केवल एक जुलाहे या बुनकर की सोलह साल की पुत्री ने स्वयं से कहा, 'बुद्ध का प्रवचन वास्तव में अद्भुत है। मुझे मरण अनुस्मृति की साधना करनी चाहिए।' तथा तीन वर्षों तक रात-दिन वह इस भावना का अभ्यास करती रही। बुद्ध ने आलवि से विदा ली तथा वे श्रावस्ती के जेतवन में निवास करने चले गये।

एक दिन जब बुद्ध ने उषाकाल के प्रारंभ में विश्व का सर्वेक्षण किया, तो उन्होंने पाया कि वह बालिका उनके ज्ञान जाल में प्रवेश कर चुकी थी। उन्होंने देखा कि वह मृत्यु पर तीन वर्षों तक ध्यान लगा चुकी है, तथा वह उन चार प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम हो सकेगी, जिन्हें वे उससे पूछेंगे। वे उसको उसके उत्तरों पर बधाई देंगे तथा वह गाथा जो 'अन्धभूतो अयं लोको... ' से प्रारंभ होती है, उसे उद्घोषित करेंगे; और इस गाथा के समापन पर, वह बालिका जागृति के पहले चरण में स्थापित हो जाएगी। तथा अन्य कई लोग इस प्रवचन से लाभान्वित होंगे।

अत:, भगवान बुद्ध पांच सौ भिक्खुओं के साथ तीस लीग की दूरी चलकर पुन: अग्गालव विहार पहुंचे। तथा आलवि निवासियों ने उन्हें पुन: आमंत्रित किया। जब बालिका ने सुना कि भगवान बुद्ध आये हैं तो उसका हृदय हर्षोल्लास से भर गया। 'लोग कह रहे हैं कि गौतम बुद्ध महान आ गये हैं, वे जो मेरे पिता, मेरे स्वामी, मेरे गुरु हैं, जिनका मुख मण्डल पूर्णिमा के चांद जैसा है।' तब उसने मन में विचार किया, 'तो, मैं तीन वर्षों में पहली बार शास्ता को देखूंगी और धम्म पर उनके शिक्षण को सुनूंगी, जो उदात्त है और माधुर्य से पूर्ण है।'

किन्तु उसके पिता ने, अपनी कार्यशाला की ओर जाते हुए उससे कहा, 'बेटी, एक ग्राहक के लिए एक परिधान करघे पर है, तथा अभी अपूर्ण है। मुझे आज ही उसे पूरा करना होगा। तुम ढरकी याने शटल को भर कर मेरे पास ले आओ।' बालिका झिझकी, किन्तु उसने सोचा, 'यदि मैं अपने पिता के पास ढरकी भर कर नहीं ले जाती, तो वे मुझ पर प्रहार करेंगे और मुझे प्रताड़ित करेंगे। अत: मैं वही करूंगी जो उन्होंने कहा है, और बाद में धम्म सुनने की प्रतीक्षा करूंगी।'

आलवि के लोगों ने भगवान बुद्ध एवं उनके भिक्खु समुदाय को भोजन कराया, तत्पश्चात उनका पात्र लेकर उनके अनुमोदन की प्रतीक्षा में वे एक ओर खड़े हो गये।

किन्तु बुद्ध ने उनसे कहा, 'मैं तीस लीग की यात्रा करके यहाँ एक बुनकर की अमुक पुत्री के लिये आया हूं । मैं उसके आने की प्रतीक्षा करूंगा, और जब उसे यहां उपस्थित होने का अवकाश मिलेगा, तब मैं अनुमोदन करूंगा ।”

जब बालिका ने ढरकी भर ली, तो वह उसे अपनी टोकरी में रख कर अपने पिता की कार्यशाला की ओर चल पड़ी । मार्ग में, वह जनसमूह की बाह्य परिधि पर रुकी तथा शास्ता को निहारने लगी । उन्होंने अपना सिर ऊपर उठाया और उसकी ओर देखा । उसने सोचा, 'वे चाहते हैं कि मैं उनके पास जाऊं,' और उनके निकट चली गई ।

बुद्ध ने उसकी ओर देखा क्योंकि वे जानते थे कि अन्यथा वह पास नहीं आयेगी । उसके उसी दिन मृत्यु से किसी भी प्रकार बचने का कोई उपाय नहीं था, किन्तु यदि वह उन्हें शिक्षा देते हुए सुन लेती है, तो वह एक स्रोतापन्न के रूप में स्थापित हो जाएगी तथा उसका तुषित देव लोक में पुनर्जन्म होगा ।

उनके मात्र दृष्टिपात के संकेत से वह बालिका उनके निकट आ गई, उनको नमन किया, तथा आदरपूर्वक एक ओर खड़ी हो गई । तब बुद्ध ने उसे चार प्रश्नों द्वारा संबोधित किया :-

उन्होंने पूछा, 'कुमारी, तुम कहाँ से आई हो?'

उसने कहा, 'भन्ते, मुझे पता नहीं'

उन्होंने पूछा, 'तुम कहाँ जा रही हो?'

उसने कहा, 'मैं नहीं जानती ।'

उन्होंने पूछा, 'तुम नहीं जानती?'

'मैं जानती हूं, भन्ते' उसने उत्तर दिया ।

'तुम जानती हो?' उन्होंने पूछा ।

'भन्ते, मैं नहीं जानती' उसने उत्तर दिया.

इससे लोग आहत हो गये और बोले, "देखो, यह बुनकर की बेटी जो जी चाहे तथागत से बोल देती है । जब उन्होंने पूछा, 'तुम कहां से आयी हो?' तो उसे उत्तर देना चाहिए था 'बुनकर के घर से' जब उन्होंने पूछा, 'तुम कहां जा रही हो?' तो उसे कहना चाहिए था, 'बुनकर की कार्यशाला को ।' "

तब बुद्ध ने उससे पूछा, "कुमारी, जब मैंने तुमसे पूछा, 'तुम कहां से आयी हो?' तो तुमने क्यों कहा, 'मैं नहीं जानती'?” तो बालिका ने कहा, 'भन्ते, आप जानते हैं कि मैं अपने पिता के

घर से आयी हूं ।अत: जब आपने मुझसे पूछा कि मैं कहां से आई हूं, तो मैं जान गई कि आप का अर्थ है कि मेरा यहां जब जन्म हुआ था तो मैं कहां से आयी थी । मुझे उसका उत्तर पता नहीं ।'

बुद्ध ने उनके प्रश्न को सही ढंग से समझने के लिये उसे बधाई दी और पूछा, 'जब मैंने तुम से पूछा कि तुम कहाँ जा रही हो, तो तुमने क्यों उत्तर दिया कि तुम नहीं जानती?' तब बालिका ने कहा, 'भन्ते, आप जानते हैं कि मैं हाथ में ढरकी से भरी मंजूषा याने टोकरी लेकर बुनकर कार्यशाला में जा रही थी । अत: जब आप ने मुझसे पूछा कि मैं कहां जा रही थी तो, मैं भली भांति समझ गई कि इसका आशय है कि जब मेरा पुनर्जन्म होगा तब मैं कहाँ जाऊंगी । किन्तु मैं यह नहीं जानती कि इस अस्तित्व के बाद जब पुनर्जन्म होगा तो मैं कहां जन्मूंगी ।'

बुद्ध ने उसे पुन: बधाई दी और प्रश्न किया, "जब मैंने तुमसे पूछा था, 'क्या तुम जानती हो?' तो तुमने क्यों उत्तर दिया था 'मैं जानती हूं'?" तब उसने प्रतिवचन दिया, 'भन्ते, इतना तो मैं जानती हूं कि मेरी मृत्यु निश्चित होगी, अत: मैंने ऐसा कहा ।'

बुद्ध ने उसे तीसरी बार बधाई दी । फिर उन्होंने पूछा, "जब मैंने तुम से पूछा था, 'जानती हो?' तो तुमने क्यों कहा था, 'मैं नहीं जानती'?" और वह बोली, 'भन्ते, मुझे केवल इतना ही पता है कि मेरी मृत्यु होगी । मेरी मृत्यु कब होगी, रात में होगी, दिन में होगी, प्रात:काल या किसी अन्य समय में होगी, वह मैं नहीं जानती । अत: मैंने ऐसा कहा ।" और फिर बुद्ध ने प्रश्न को सही तरह समझने के लिए उसे बधाई दी ।

तब बुद्ध ने उपस्थित लोगों से कहा, 'आप में से अनेक लोग इसके उत्तरों को समझने में विफल हुए थे । आप अप्रसन्न थे । क्योंकि, जिनके पास प्रज्ञा चक्षु नहीं है, वे अंधे हैं । केवल वही, जिनके पास प्रज्ञा चक्षु है, वे देख सकते हैं ।" और उन्होंने वह गाथा उद्घोषित की जिसे हमने कथा के प्रारंभ में उद्धृत किया है :-

अन्धभूतो अयं लोको, तनुकेत्थ विपस्सति ।

सकुणो जालमुत्तोव, अप्पो सग्गाय गच्छति ।।

(प्रज्ञा चक्षु के अभाव में) यह लोक अंधे जैसा है, यहां विपस्सना करने वाले थोड़े ही हैं । जाल से मुक्त हुए पक्षी की भांति विरले ही सुगति अथवा निर्वाण को जाते हैं । (बाकी तो जाल में ही फंसे रहते हैं ।)

धम्मपद, गाथा १७४

गाथा के अंत में, बालिका जागृति के पहले चरण में स्थापित हो गई; वह एक सोतापन्न हो

गई ।

तब वह मंजूषा में ढरकी लेकर अपने पिता के पास गई । वे अपने करघे पर बैठे, सो रहे थे । उसने यह ध्यान नहीं दिया कि वे सो रहे हैं, और उन्हें टोकरी दे दी । टोकरी करघे की छोर से टकराई और खटपट करती नीचे गिर पड़ी । उसके पिता जाग उठे, और उन्होंने करघे को पकड़ कर झटके से खींचा । करघे का एक छोर अकस्मात झूल कर बालिका के वक्षस्थल में जा लगा । उसकी तत्क्षण मृत्यु हो गई तथा तुषित देव लोक में उसका पुनर्जन्म हुआ । जब पिता को पता चला कि क्या हो गया, तो वे शोकग्रस्त हो गये । वे बुद्ध के पास गये तथा अपनी बेटी की मृत्यु के विषय में उन्हें बताया । उन्होंने अनुरोध किया, 'भन्ते, मेरे दु:ख का अंत कीजिये ।'

बुद्ध ने उनसे कहा, 'शोक मत करो । इस अज्ञात आदि के भवचक्र में, अपनी बेटी की मृत्यु के दु:ख में, जितना जल चार महासागरों में है, तुमने उससे भी अधिक आँसू बहाए हैं ।' तब उनका दु:ख समाप्त हो गया, और उन्होंने भिक्खु संघ में सम्मिलित होने का अनुरोध किया । तथा कालोपरान्त उन्होंने अर्हत्व प्राप्त किया ।

भूखे किसान की कहानी

जिगच्छापरमा रोगा, सङखारपरमा दुखा ।
एतं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं ।।

भूख सबसे बड़ा रोग है । संस्कार सबसे बड़ा दु:ख । इसे यथाभूत जानकर व्यक्ति सबसे बड़ा सुख, निर्वाण प्राप्त करता है ।

धम्मपद, गाथा २०३

बुद्ध जब आलवि में थे, तो यह गाथा उनके द्वारा एक गृहस्थ शिष्य, गरीब किसान के संदर्भ में कही गयी थी ।[४]

एक दिन, जेतवन की गंधकुटी में बैठे, बुद्ध ने प्रभात में विश्व का सर्वेक्षण किया, तथा पाया कि आलवि में एक गरीब किसान है जो अब सोतापन्न होने के लिये उपनिश्रय अर्थात अपेक्षित गुणों से संपन्न है । अत: बुद्ध पांच सौ भिक्खुओं के एक समूह के साथ वहां गये, तथा आलवि के लोगों ने उन्हें भोजन के लिए आमंत्रित किया । जब गरीब व्यक्ति ने सुना कि भगवान बुद्ध आये हैं, तो उसने बुद्ध का उपदेश सुनने जाने का निर्णय लिया । किन्तु उसी दिन उसका एक वृषभ याने बैल भटक गया । उसने अपने मन में सोचा, 'अब मैं क्या करूँ? बैल को ढूंढने जाऊं या धम्म

सुनने?' तथा उसने निर्णय लिया, 'पहले मैं बैल ढूढूंगा तब फिर धम्म सुनने जाऊंगा ।' तथा वह अपने वृषभ को खोजने निकल पड़ा ।

आलवि निवासियों ने बुद्ध एवं पांच सौ भिक्खुओं के लिए आसन तैयार किये तथा उन्हें भोजन परोसा । भोजनोपरान्त, उन्होंने बुद्ध का पात्र लिया, ताकि वे अनुमोदन कर सकें । किन्तु उन्होंने कहा, 'जिस व्यक्ति को शिक्षा देने मैं तीस लीग आया हूं, वह अपने खोये हुए को ढूंढने वन में गया है । जब वह लौटेगा, तब मैं प्रवचन दूंगा ।'

रात होने से पहले, उस व्यक्ति को उसका बैल मिल गया, और उसे हाँक कर वापस झुंड में मिलाने ले आया । और तब उसने सोचा, 'यदि मैं और कुछ नहीं कर सकता, तो कम से कम शास्ता की वन्दना ही कर सकता हूं ।' तथा यद्यपि वह बहुत भूखा था, उसने घर न लौटने का अपितु सीधे बुद्ध के पास जाने का निर्णय लिया । जब वह आया, तो उसने वन्दना की तथा एक ओर बैठ गया । तब बुद्ध ने भोजन के लिए उत्तरदायी व्यक्ति से पूछा, 'भिक्खु संघ को परोसे गये भोजन में से क्या कुछ बचा है?'

उत्तर था, 'भन्ते, उन खाद्य पदार्थों को तो अभी किसी ने छुआ भी नहीं है ।'

बुद्ध ने निर्देश दिया, 'तो ठीक है, इस गरीब व्यक्ति को कुछ भोजन परोसा जाय ।'

अत: प्रबन्धक ने गरीब किसान को भोजन परोसा, और जैसे ही वह शारीरिक पीड़ा से मुक्त हुआ, उसका चित्त शांत हो गया । तब बुद्ध ने क्रमिक प्रवचन द्वारा, एक के बाद एक सभी चार आर्य सत्यों की व्याख्या करते हुए, धर्मोपदेश दिया । प्रवचन के समापन पर, व्यक्ति सोतापन्न फल पद में स्थापित हो गया । तब बुद्ध ने अनुमोदन के शब्द कहे तथा आसन से उठ कर विदा ली ।

ऐसा कहा जाता है कि, केवल यही एक अवसर था जब बुद्ध ने कभी भी भोजन के विषय में पूछा था । और जब वे भिक्खुओं के साथ वापस लौट रहे थे, तो कुछ भिक्खु अत्यधिक रुष्ट थे । वे बोले, 'देखिये, शास्ता ने क्या किया! ऐसा कुछ पहले कभी नहीं हुआ है । एक गरीब आदमी को देखकर उन्होंने आहार की आपूर्ति के विषय में पूछा, और उसे भोजन परोसने का आदेश दिया ।'

बुद्ध रुके, पलटे और उन्होंने भिक्खुओं से पूछा कि वे क्या वार्तालाप कर रहे थे । जब उन्होंने बताया तो बुद्ध ने स्पष्ट किया, "जब मैं तीस लीग की एक लंबी और दुर्गम यात्रा करके यहाँ आया, तो मेरा एकमात्र उद्देश्य इस व्यक्ति को सोतापन्न पद में स्थापित करना था । अति प्रात: वह व्यक्ति भूखे पेट, जंगल में गया तथा अपने खोये हुए बैल की तलाश में उसने पूरा दिन बिताया । अत: मैंने सोचा, 'इस समय जब कि वह भूखा है, यदि मैं उसे शिक्षा दूं, तो वह समझने

में सक्षम नहीं हो सकेगा।' इसी कारण मैंने जो किया, वह किया। भिक्खुओं, भूख की पीड़ा जैसी कोई पीड़ा नहीं है।" तथा बुद्ध ने वह गाथा सुनाई जिसे हमने इस कथा के प्रारंभ में उद्धृत किया है :-

जिगच्छापरमा रोगा, सङ्खारपरमा दुखा।

एतं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं ।।

भूख सबसे बड़ा रोग है। संस्कार सबसे बड़ा दु:ख। इसे यथाभूत जानकर व्यक्ति सबसे बड़ा सुख, निर्वाण प्राप्त करता है।

धम्मपद, गाथा २०३

ब्रह्म विहार भावना या विकास[५]

इन कथाओं से हम मेत्ता विकसित करने की आवश्यकता का अनुभव कर सकते हैं और देख सकते हैं कि बुद्ध एक आदर्श उदाहरण थे। उन्होंने अपनी शिक्षा दूसरों पर थोपी नहीं, किन्तु जब वे देखते थे कि कोई व्यक्ति इसके लिए तैयार है तो उस व्यक्ति की सहायता के लिए वे चरम सीमा तक का प्रयास करते थे। जैसे कि उस गरीब किसान के संदर्भ में, हम यह भी देख सकते हैं कि नियमों या परंपराओं का अंधानुकरण करने से अधिक महत्वपूर्ण और भी बातें हैं। बुद्ध ने भोजन के विषय में पूछा तथा किसी के लिये भोजन परोसने को कहा। जैसा कि आप भिक्खुओं की प्रतिक्रिया से अनुमान लगा सकते हैं, उसके लिये जो गृहस्थ नहीं है, यह तथ्य अत्यंत असाधारण था। भिक्खुओं ने संसार का त्याग कर दिया था और वे कभी भी भोजन नहीं मांगते। आज भी बौद्ध भिक्षु भिक्षाटन पर जाते हैं तथा गृहस्थों को उन्हें भोजन देने का अवसर देते हैं, किन्तु वे कभी भी भोजन मांगते नहीं और न वे यह इंगित करते हैं कि उन्हें क्या चाहिये। नि:संदेह बुद्ध यह जानते थे कि किसी भूखे व्यक्ति को यह बताना व्यर्थ है कि आठ शिक्षापदों का पालन करना तथा दोपहर के बाद भोजन न करना कितना पुण्य का कार्य है। उसके इतने परिश्रम के बाद, किसान को आहार की आवश्यकता थी। अन्यथा, उसका मन इतना उत्तेजित रहता कि वह बुद्ध के प्रवचन को न तो सुन पाता और न समझ पाता।

तो, हमें मेत्ता, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा जैसे गुण विकसित करने के लिए कैसे काम करना चाहिये? इन्हें ब्रह्म विहार के रूप में जाना जाता है। इन्हें चार असीमित मनोदशायें या चार अप्रमाण (पालि में, अप्पमञ्ञ) भी कहा जाता है। बुद्ध ने भिक्खुओं को अधोलिखित करना सिखाया :--

भिक्खुओं, तो भिक्खु अपने चित्त को मेत्ता से भर कर पहले एक दिशा में, फिर दूसरी, तब तीसरी, तब चौथी दिशा में विस्तार करता है। जैसे ऊपर, वैसे ही नीचे और चारों ओर। तथा सर्वत्र, वह स्वयं को सब के समान समझता है। वह अपने चित्त को मेत्ता से भर कर तथा उसे विस्तृत, विकसित एवं असीम कर, द्वेष दौर्मनष्य से मुक्त समूचे विश्व में व्याप्त करता है।[६] इसी प्रकार वह करुणा, मुदिता एवं समभाव या उपेक्षा के साथ चित्त को विकसित करता है।

विशुद्धि मार्ग[७] में, आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि व्यक्ति को किसी शांत स्थान पर जाना चाहिए, जहां वह एक आरामदायक आसन में बैठ सके। फिर उसे पहले द्वेष से उत्पन्न होने वाले संकट पर एवं सहिष्णुता से लाभ पर विचार करना चाहिए। इस का उद्देश्य द्वेष को सहिष्णुता से विस्थापित करना है। क्योंकि हम उन संकटों से बच नहीं सकते जिन्हें हमने देखा नहीं, न ही हम उन लाभों को उगा सकते हैं जिनका अभी तक हमें पता नहीं।

कुछ ऐसी श्रेणी के व्यक्ति हैं, जिनके प्रति प्रारंभ में हमें मेत्ता नहीं विकसित करनी चाहिए। किसी अप्रिय व्यक्ति को ऐसे समझना जैसे वह हमारा प्रिय हो, मानसिक थकावट से भरा है। जो हमें प्रिय हैं, उनके प्रति तटस्थ रहना कठिन है। तथा जब किसी मित्र पर रंचमात्र भी विपदा पड़ती है, तो रोना आ जाता है। यदि हम किसी शत्रु के विषय में सोचते हैं, तो आक्रोश उत्पन्न होता है। किसी प्रिय व्यक्ति की स्थिति में किसी ऐसे व्यक्ति को रखना जिसके प्रति तटस्थ हैं, मानसिक थकावट से भरा है। यदि हम अपने विचारों को विपरीत लिंगीय किसी व्यक्ति विशेष की ओर प्रेषित करें तो वासना उत्पन्न हो सकती है। तथा यदि हम मृत व्यक्ति के प्रति मेत्ता विकसित करने का प्रयास करें, तो हम न तो अर्पणा और न उपचार समाधि तक पहुँचने में सक्षम हो सकेंगे।

अतः, प्रारंभ में, मेत्ता भावना हमें स्वयं के प्रति बार बार 'मैं स्वयं शत्रुता एवं कठिनाइयों से मुक्त, सुख पूर्वक रहूं।' यह कहते हुए करनी चाहिये।

जब व्यक्ति स्वयं को उदाहरण बना कर 'मैं प्रसन्न रहूं', ऐसे विचार की भावना करता है, तब दूसरों के कल्याण और सुख में भी रुचि लेना प्रारंभ कर सकता है। कुछ सीमा तक हम यह अनुभव करने लगते हैं कि उनकी प्रसन्नता हमारी अपनी की तरह है। हम सोचते हैं, 'जैसे मैं सुखपूर्वक जीना चाहता हूं और मरना नहीं, उसी प्रकार दूसरे भी सुख पूर्वक जीना चाहते हैं और मरना नहीं।' जब हम मेत्ता के विचारों से स्वयं में परिव्याप्त होने का अभ्यास कर लेते हैं, तब हम किसी ऐसे व्यक्ति का चयन कर सकते हैं जो हमारा प्रिय, प्रशंसनीय एवं आदरणीय हो। हम उनके गुणों का स्मरण करते हुये इस विचार से प्रारंभ कर सकते हैं, 'वे सुखी हों।'

जब इस प्रकार के विचार किसी सम्मानित व्यक्ति के प्रति सुपरिचित हो जांय, तब हम

अपने किसी प्रिय व्यक्ति के प्रति मेत्ता भाव का अभ्यास कर सकते हैं। आगे हम अपने विचारों को प्रिय के रूप में किसी तटस्थ व्यक्ति के प्रति प्रेषित कर सकते हैं जैसे वह प्रिय हो। अन्त में, हम तटस्थ व्यक्ति के स्थान पर किसी शत्रु को रख कर, उसके प्रति अपने मेत्ता युक्त विचारों को प्रेषित कर सकते हैं।

करुणा विकसित करने के लिए, हमें करुणा के अभाव में होने वाले संकटों का तथा करुणा से होने वाले लाभ का प्रत्यवेक्षण अर्थात समीक्षा से प्रारंभ करना चाहिए। जैसा कि मैत्री भावना के साथ करते हैं, वैसे ही हमें किसी ऐसे व्यक्ति जिसके प्रति हम तटस्थता का, वैर या द्वेष का अनुभव करते हैं, विपरीत लिंगीय व्यक्ति विशेष या मृत व्यक्ति के प्रति करुणा प्रेषित करने से नहीं प्रारंभ करना चाहिये।

जैसा कि विभंग में कहा गया है,[८] 'करुणायुक्त चित्त को कैसे कोई एक दिशा में विस्तार कर विहार करता है? जिस प्रकार किसी अशुभ, दुर्भाग्यपूर्ण व्यक्ति को देख कर कोई करुणा का अनुभव करता है, उसी प्रकार वह करुणा के साथ सभी प्राणियों में अपने चित्त को व्याप्त करता है।'

प्रारंभ से ही, करुणा भावना का विकास किसी दयनीय व्यक्ति को ध्यान का विषय बना कर, किया जाना चाहिए। हम किसी अभागे, दुर्भाग्यपूर्ण, कुरूप, अत्यंत दुखी, सभी प्रकार से दया के पात्र जैसे व्यक्ति के विषय में सोचते हैं। हमें इस प्रकार विचार करना चाहिये, 'यह व्यक्ति वास्तव में दुखी हो गया है। कितना अच्छा होता कि वह इस दुख से मुक्त हो जाता।'

बुद्ध ने नगरवधू आम्रपालि एवं हत्यारे अंगुलिमाल जैसे व्यक्तियों के प्रति अपार करुणा दिखाई। दोनों उनके शिष्य बन गये तथा उनके चरित्र में संपूर्ण सुधार हुआ।

मुदिता अर्थात सहानुभूतिशील हर्ष विकसित करने के लिये हमें किसी अति प्रिय मित्र, जिसे टीकाओं में 'शौण्ड सहायक' अर्थात 'जिगरी दोस्त' या 'लंगोटिया यार' कहा गया है, से प्रारंभ करना चाहिये। वह ऐसा होगा जो सदैव प्रसन्न रहता हो, जो पहले हंसता है, और बाद में बोलता है। विभंग में लिखा है[९] 'कैसे कोई साधक मुदितायुक्त चित्त को एक दिशा में विस्तार कर विहार करता है? जैसे कोई किसी सुंदर, मनोरम व्यक्ति को देखकर मुदिता से भर जाता है, उसी प्रकार वह सभी प्राणियों में मुदिता युक्त चित्त व्याप्त करता है।'

हमारा प्रिय व्यक्ति, वर्तमान समय में भले ही अभागा एवं दुर्भाग्यपूर्ण हो, फिर भी उसकी अतीत की खुशियों का स्मरण कर, मुदिता जगाई जा सकती है। हमें अपने मन में सोचना चाहिये, 'अतीत में वह अतुल संपत्ति वाला, शिष्यों वाला था, तथा सदैव प्रसन्न रहता था।' तथा भविष्य

के विषय में भी इस प्रकार विचार कर मुदिता जगाई जा सकती है, 'भविष्य में यह व्यक्ति जो मेरा प्रिय है, पुन: सोने और चांदी के साथ वैसी ही सफलता प्राप्त करेगा, एवं सोने की पालकी में अनेक शिष्यों के साथ भ्रमण करेगा, इत्यादि इत्यादि ।'

तब हम किसी तटस्थ व्यक्ति के प्रति मुदिता प्रेषित कर सकते हैं, तथा अंत में किसी शत्रु के प्रति । किन्तु यदि शत्रु के विषय में मुदिता जगाते हुए रोष जागृत हो जाय तो हमें इसका विष्कम्भन (दमन) करना चाहिये, जैसे हमने मेत्ता के विषय में किया था । मुदिता प्रसन्नता मात्र नहीं है, अपितु सहानुभूतिशीळ हर्ष है, जो अपनी प्रमुख शत्रु ईर्ष्या का नाश करती है । यह सभी समृद्ध व्यक्तियों को अंगीकार करती है । यह व्यक्ति का अभिनन्दनकारी दृष्टिकोण है, तथा इसकी प्रवृत्ति सफल व्यक्तियों के प्रति किसी भी प्रकार की अरुचि को समाप्त करना है ।

चारों ब्रह्मविहारों में सबसे कठिन एवं सबसे आवश्यक उपेक्षा (पालि में उपेक्खा) अर्थात निष्पक्षता का विकास है । अपने बौद्ध शब्दकोश (*Buddhist Dictionary)* में, ज्ञानतिलोक (ञ्आनतिलोक) कहते हैं, 'उपेक्खा, संस्कार स्कंध (पालि में संखार खंध) अर्थात पचास मानसिक धर्मों के समूह से संबंधित, एक नैतिक गुणवत्ता है, एवं इसे 'उदासीन भावना' से संभ्रमित नहीं होना चाहिए । तथा समय समय पर, एक ही शब्द (उपेक्खा) दोनों अर्थों में भी प्रयोग किया जाता है । यहाँ, उपेक्खा में हमारी रुचि चेतना की एक शोभन (पालि में सोभन) अर्थात शुद्ध दशा से है । इसी अर्थ में यह चार ब्रह्म विहारों में से एक है, तथा बोधि के अंगों या बोध्यांगों में से एक है । इसका अर्थ है 'निष्पक्षतापूर्वक' या 'उचित' । व्यक्ति को चाहिये कि वह सही तरीके से समझे, ठीक से या निष्पक्ष भाव से - बिना आसक्ति या घृणा के, बिना पक्षपात या अरुचि के - देखे ।

उपेक्खा विकसित करने के लिये, पहले हमें अपने विचार ऐसे व्यक्ति की ओर ले जाना चाहिये जिसके प्रति हम सामान्यतया तटस्थ होते हैं । फिर, अपने किसी प्रिय व्यक्ति की ओर, उसके बाद किसी वैरी व्यक्ति की ओर, और तब शेष व्यक्तियों की ओर । जैसा कि विभंग में कहा गया है,[१०] 'कैसे कोई साधक उपेक्खायुक्त चित्त को एक दिशा में व्याप्त कर विहरता है? जैसे कोई ऐसे व्यक्ति को देखकर जो न प्रिय हो और न ही अप्रिय हो, उपेक्खा का अनुभव करता है, उसी प्रकार वह सभी प्राणियों में उपेक्खायुक्त चित्त से व्याप्त होता है ।'

प्रिय व्यक्ति, शत्रु, या स्वयं के बीच जो अवरोध विद्यमान होते हैं, उन्हें किसी तटस्थ व्यक्ति के विषय में सोच कर, ध्वस्त किया जा सकता है । अवरोध कैसे ध्वस्त होते हैं? मान लीजिए कि कोई मानव एक प्रिय व्यक्ति, एक ऐसा व्यक्ति जिसके प्रति वह तटस्थ अनुभव करता है, तथा एक वैरी व्यक्ति के साथ है । अब मान लीजिये कि लुटेरे उन्हें पकड़ लेते हैं तथा कहते हैं कि उसे

किसी ऐसे व्यक्ति को चुनना है, जिसका गला काट दिया जाएगा, क्योंकि लुटेरे उस खून की बलि देना चाहते हैं। यदि वह अन्य तीनों में से किसी एक की ओर इंगित करता है, तो उसने अवरोधों को ध्वस्त नहीं किया है। यदि वह स्वयं को प्रस्तुत करता है, तो भी उसने अवरोधों का अतिक्रमण नहीं किया है। क्यों? क्योंकि उस स्थिति में वह स्वयं की क्षति तथा दूसरों का कल्याण चाहता है। केवल तभी जब वह चारों में से किसी को भी उन डाकुओं को देने के लिए उपयुक्त नहीं पाता, तथा अपने चित्त को स्वयं के प्रति एवं दूसरों के प्रति निष्पक्ष भाव से लगाता है, तभी उसने अवरोधों का अतिक्रमण किया है।

ये चार ब्रह्म विहार हैं। हम अपने दैनिक जीवन में उन्हें सहायक पायेंगे। तथा जितना अधिक हम उनको विकसित करेंगे, उतनी ही अच्छी तरह हम अपनी साधना में सक्षम होंगे। विपस्सना साधना के समय उपेक्खा का विकास विशेष रूप से उपयोगी होगा।

यदि हम प्रत्येक सद्गुणों का बारंबार अभ्यास करें, जिससे कि हम स्वयं के प्रति, उनके प्रति जो हमारे प्रिय हैं, जिनके प्रति हम तटस्थ हैं, तथा अपने शत्रुओं के प्रति, मानसिक निष्पक्षता में प्रवीण हों, तो चार ब्रह्म विहारों की भावना का विकास हमारी सहायता करेगा।

मेत्ता समस्त संवेदनशील प्राणियों को अंगीकार करती है। करुणा सभी अभागों को अंगीकार करती है। मुदिता सुखी एवं समृद्ध लोगों को अंगीकार करती है। उपेक्खा अच्छे-बुरे, प्रिय-अप्रिय तथा सुखद-दुखद, सभी को अंगीकार करती है।

आप सभी की मेत्ता, करुणा, मुदिता, एवं उपेक्खा में प्रगति हो।

आप का सील, समाधि, एवं पञ्ञा में संवर्धन हो।

आप लोभ एवं आसक्ति से मुक्त हों, द्वेष व घृणा से मुक्त हों, अज्ञानता तथा मिथ्या दृष्टि से मुक्त हों।

आप सभी पूर्णतया जागृत हो जांय!

संदर्भ सूची

[1]See *Buddhist Legends*, II 17-19, (DpA 3,6) and *The Illustrator of Ultimate Meaning*, pp. 265-294.

[2]This translation is based on K.R. Norman's in *The Group of Discourses*, p. 24.

[3]See *Buddhist Legends*, III 14-18. (DpA 13,7)

[4]See *Buddhist Legends*, III 74-76.

[5]This discussion's mainly based on Ashin Buddhaghosa's description in *The Path of Purification*, Chapter IX.

[6]*The Kindred Sayings*, IV 227; *The Gradual Sayings*, II 132, V 193.

[7]Chapter IX, ¶¶ 1ff.

[8]*The Book of Analysis*, p. 359.

[9]*The Book of Analysis*, p. 360.

[10]*The Book of Analysis*, p. 362.